अंक - 2

स्वनिम

सृजन और शोध की संदर्भित एवं पूर्व-समीक्षित त्रैमासिक पत्रिका

कहानी केन्द्रित अंक

हिन्दी विभाग, गुरु घासीदास विश्वविद्यालय, बिलासपुर
कोनी, बिलासपुर, छत्तीसगढ़

स्वनिम

सृजन और शोध की संदर्भित एवं पूर्व-समीक्षित त्रैमासिक पत्रिका

अंक : 2-3 (सयुक्तांक) अक्टूबर 2022 - मार्च 2023

संरक्षक

प्रो. आलोक कुमार चक्रवाल

कुलपति, गुरु घासीदास विश्वविद्यालय, बिलासपुर

समन्वयक

प्रो. मनीष श्रीवास्तव

कुलसचिव (कार्यवाहक), गुरु घासीदास विश्वविद्यालय, बिलासपुर

संपादक

डॉ. गौरी त्रिपाठी

सह-संपादक

डॉ. रमेश कुमार गोहे

श्री मुरली मनोहर सिंह

डॉ. अनीश कुमार

संपादक मण्डल

डॉ. राजेश मिश्र

डॉ. अखिलेश गुप्ता

डॉ. लोकेश कुमार

डॉ. अतुल कुमार

डॉ. अनुपमा कुमारी

परामर्श मण्डल

प्रो. ब्रजेश तिवारी

डॉ. धीरज शुक्ला

डॉ. अनुराग चौहान

हिन्दी विभाग

गुरु घासीदास विश्वविद्यालय (केंद्रीय विश्वविद्यालय)

कोनी, बिलासपुर (छ. ग.), पिनकोड - 495009

वेबसाइट - www.ggu.ac.in

स्वनिम

अंक : 2-3 (सयुक्तांक), अक्टूबर 2022- मार्च 2023
सृजन और शोध की संदर्भित एवं पूर्व-समीक्षित त्रैमासिक पत्रिका

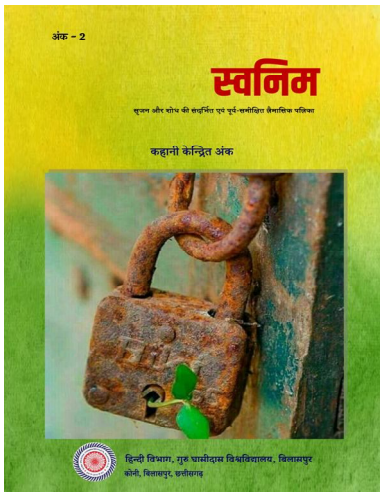

Refereed and Peer-Reviewed Magazine
© सर्वाधिकार सुरक्षित
वैधानिक चेतावनी - स्वनिम में प्रकाशित रचनाओं के साथ हिन्दी विभाग, गुरु घासीदास विश्वविद्यालय, बिलासपुर या संपादकों की सहमति होना आवश्यक नहीं है। समस्त कानूनी विवादों का न्यायक्षेत्र बिलासपुर, छत्तीसगढ़ होगा। सभी रेखाचित्र इन्टरनेट से साभार लिए गए हैं।
संपादन : अवैतनिक
आवरण और साज-सज्जा : डॉ. अनीश कुमार

प्रकाशक व संपादकीय पता

डॉ. गौरी त्रिपाठी

सह-प्राध्यापक व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
गुरु घासीदास विश्वविद्यालय (केंद्रीय विश्वविद्यालय)
कोनी, बिलासपुर (छ. ग.), पिनकोड - 495009
वेबसाइट - www.ggu.ac.in
ई-मेल - gauri.tripathi@ggu.ac.in
swanimhindiggv@gmail.com

अनुक्रम

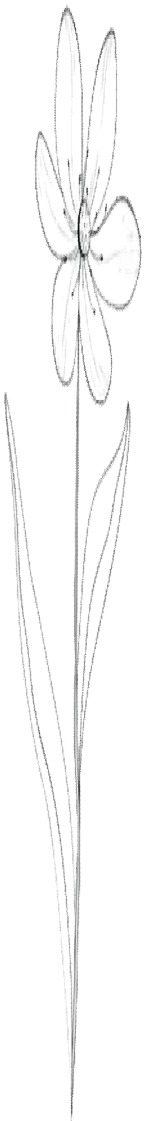

संपादकीय

समय की शिला पर... / **डॉ. गौरी त्रिपाठी** 4

विरासत

मुक्ति-मार्ग / **प्रेमचन्द** 6

विशेष

कविता का सारा वैभव भाषा पर है – त्रिलोचन : **आशुतोष तिवारी** 12

हुए हम जिनके लिए बर्बाद : **अल्पना सिंह** 21

कहानियां

महामारी में बुधिराम : **महेश सिंह** 24

बाथरूम वाली लड़की / **बलराज सिहमार** 35

मैं जिंदा हूँ : **रमेश कुमार राज** 39

मोची / **सारिका ठाकुर** 45

ब्राह्मणो मम दैवतम् ! : **डॉ. शक्तिराज** 47

सरस्वती : **रमेश चन्द्र** 51

नगरमोथा : **डॉ. मृत्युंजय कोईरी** 59

वह निशानेबाज : **श्याम सिंह** 65

रिश्ते का पंचनामा / **श्यामल बिहारी महतो** 69

जलकुंभी / **नज़्म सुभाष** 72

वनग्राम की लड़कियां / **रमेश गोहे** 77

समय, समाज और संस्कृति

एक ख़त मैकॉले के नाम / **प्रियंवद** 93

फ़िलहाल तो कोई मुक्तिमार्ग नहीं है! / **देवेंद्र** 97

फिर तेरा फ़साना याद आया / **महेश कटारे** 101

जिजीविषन

एकांत : **सुष्मिता बारीक** 106

अँधेरे में रौशनी की तलाश / **गायत्री पटेल** 109

संपादकीय

समय की शिला पर...

डॉ. गौरी त्रिपाठी

डॉ. गौरी त्रिपाठी स्वनिम की संपादक हैं तथा इनका प्रिय क्षेत्र आलोचना और समीक्षा हैं। वर्तमान में हिन्दी विभाग, गुरु घासीदास विश्वविद्यालय, बिलासपुर में एसोसिएट प्रोफ़ेसर के पद पर कार्यरत हैं।

सर्जनात्मक वैविध्य का लघु फलक!

कतिपय अकादमिक व दस्तावेजी व्यस्तताओं की वजह से थोड़े बिलंब से "स्वनिम' का यह दूसरा अंक अब आपके लिए प्रस्तुत है। दूसरे अंक के तैयार होने में निर्धारित अवधि में विलंब हो गया। हमारी पूरी कोशिश होगी कि आगे से यह पत्रिका समय से निकलती रहे। बरहाल इस बात का संतोष है कि पत्रिका का यह अंक पाठकों के लिए संग्रहणीय होगा। पत्रिका के सारे स्थायी स्तम्भ पूर्ववत रखे गए हैं। कुछ नए स्तम्भ भी जोड़े गए हैं। विरासत में प्रेमचंद की अपेक्षाकृत कम चर्चित लेकिन अत्यधिक महत्त्वपूर्ण कहानी "मुक्तिमार्ग" को हमने शामिल किया है। इस कहानी को शामिल करने के पीछे हमार उद्देश्य यह है कि एक तो यह कहानी हमारे हिन्दी विभाग के पाठ्यक्रम में भी शामिल है दूसरा इस कहानी पर अपेक्षाकृत चर्चा कम हिन्दी साहित्य में हुई है। हमारे विभाग के सेवानिवृत्त प्रोफेसर और वरिष्ठ कथाकार डॉ. देवेन्द्र की पाठकीय टिप्पणी इस कहानी पर अलग से प्रकाशित की जा रही है, जो न सिर्फ हमारे छात्रों के लिए अपितु हम सबके लिए एक दृष्टि प्रदान करेगी।

औपनिवेशिक दौर में मैकाले ने हम भारतीयों के लिए जो शिक्षा व्यवस्था दी थी, आजादी के लंबे समय तक हम उससे मुक्त न हो सके। एक लंबे समय तक हम नयी शिक्षा नीति के नाम पर हम कई बार मैकाले के उसी ढांचे के नये-नये संस्करण प्रस्तुत करते रहे। "राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020" इस दिशा में एक निर्णायक प्रस्थान बिन्दु के तौर पर दिखाई देता है। क्या था मैकाले की शिक्षा व्यवस्था का सच ? इसने कैसे हमें अपनी जड़ों से काट दिया था ? इसे बहुत बारीकी से प्रियंवद का लेख "एक खत मैकाले के नाम" स्पष्ट करता है। प्रियंवद हिन्दी के एक ऐसे लेखक हैं जिन्होंने कहानियों, उपन्यासों के अलावा इतिहास की भी महत्त्वपूर्ण पुस्तकें लिखी हैं। उनका यह लेख पत्रिका के बौद्धिक स्तर को एक निश्चित ऊंचाई प्रदान कर सकेगा।

छायावादोत्तर हिन्दी कविता जिन कुछेक कवियों से अपनी पहचान मुकम्मल करती है उनमें त्रिलोचन का नाम अग्रणी है। हिन्दी के सुधी पाठक जानते हैं कि भाषा को लेकर त्रिलोचन कितने सावधान रहा करते थे। उसकी एक बानगी या यूं कहें कि स्वयं उन्हीं के शब्दों में उनका साक्षात्कार उनकी मृत्यु के बहुत दिन बाद "स्वनिम" में पहली बार प्रकाशित किया जा रहा है। त्रिलोचन का यह साक्षात्कार हिंदी के युवा आलोचक आशुतोष ने लिया था। यह दु:खद संयोग ही है कि आज न ही त्रिलोचन हमारे बीच हैं, न ही आशुतोष। उन दोनों के प्रति विनम्र श्रद्धांजलि स्वरूप हम इसे प्रकाशित करके गौरवान्वित हो रहे हैं। अम्बिकापुर के युवा कथाकार श्री राजेश मिश्र ने स्वनिम के लिए यह महत्त्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध करायी है जिसके लिए हम उनके सदा आभारी रहेंगे।

इफको सम्मान प्राप्त हमारे वरिष्ठ कथाकार श्री महेश कटारे की रचना "फिर तेरा फसाना याद आया" इस अंक की श्रेष्ठतम उपलब्धि है। "जिजीवीयन" के लिए हमने अपने विश्वविद्यालय के जिन दो रचनाकारों- सुष्मिता पारीक और गायत्री पटेल की कहानियों का चयन किया है वे आने वाले समय की पदचाप हैं। हमारे विभागीय सहकर्मी डॉ. रमेश गोहे के कवि रूप से तो सभी परिचित हैं यहां उनके कथाकार रूप से भी सब परिचित होंगे। एक दर्जन से ज्यादा ताजातरीन कहानियों के साथ "स्वनिम" के इस दूसरे अंक के साथ हम पुनः उपस्थित हो रहे हैं। हमें विश्वास है कि यह पत्रिका देश भर के हिंदी विभागों में गुरु घासीदास विश्वविद्यालय की रचनात्मकता का उदाहरण प्रस्तुत करेगी।

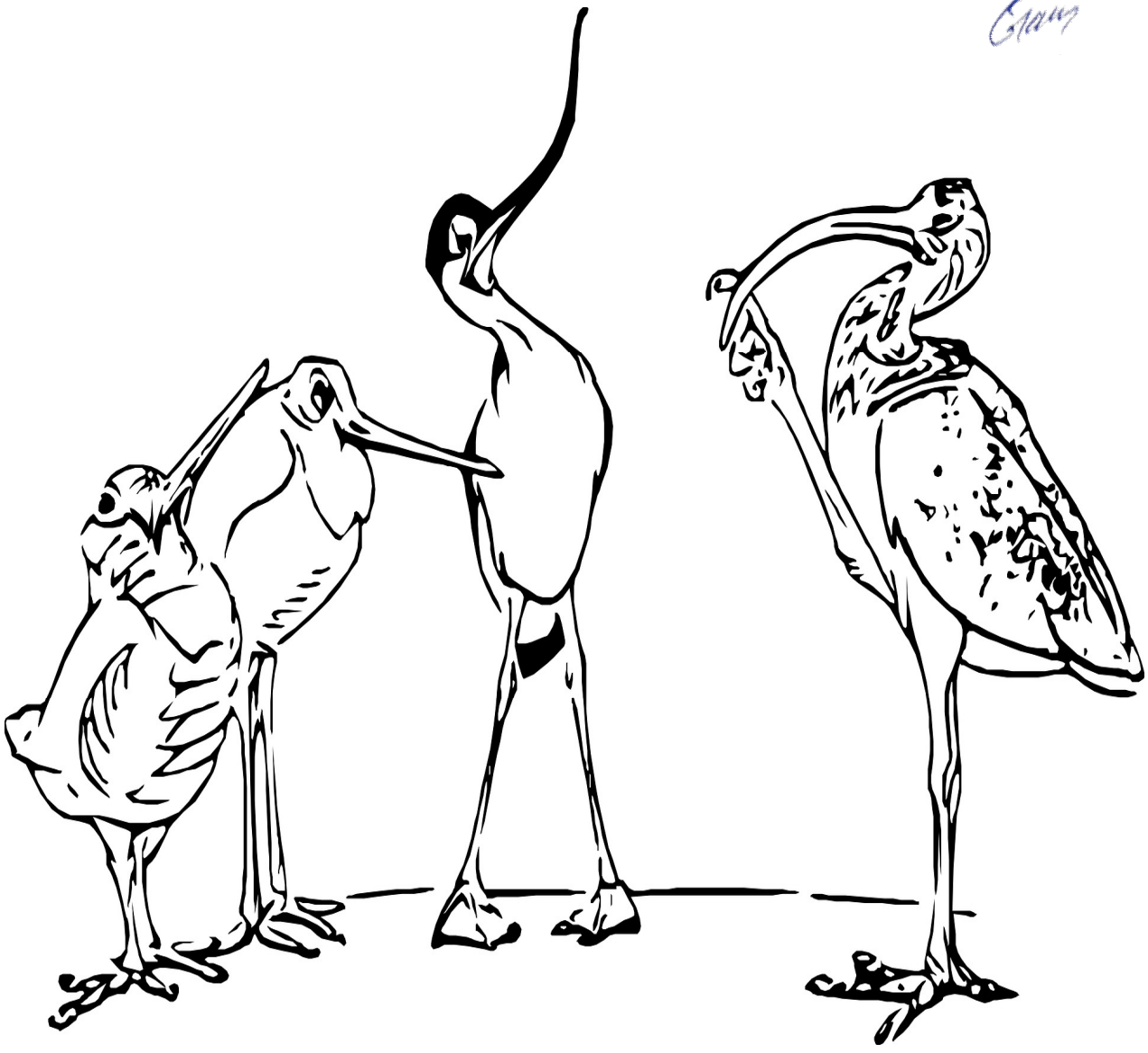

विरासत

मुक्ति-मार्ग

प्रेमचन्द

प्रेमचंद हिन्दी के सुप्रसिद्ध कथाकार हैं। इन्हें हिन्दी साहित्य में उपन्यास सम्राट कहा जाता है।

सिपाही को अपनी लाल पगड़ी पर, सुन्दरी को अपने गहनों पर और वैद्य को अपने सामने बैठे हुए रोगियों पर जो घमंड होता है, वही किसान को अपने खेतों को लहराते हुए देखकर होता है। झींगुर अपने ऊख के खेतों को देखता, तो उस पर नशा-सा छा जाता। तीन बीघे ऊख थी। इसके छः सौ रुपये तो अनायास ही मिल जायेंगे और जो कहीं भगवान ने डाड़ी तेज कर दी तो फिर क्या पूछना ! दोनों बैल बुड्ढे हो गये। अबकी नयी गोई बटेसर के मेले से ले आयेगा। कहीं दो बीघे खेत और मिल गये, तो लिखा लेगा। रुपये की क्या चिंता। बनिये अभी से उसकी खुशामद करने लगे थे। ऐसा कोई न था जिससे उसने गाँव में लड़ाई न की हो। वह अपने आगे किसी को कुछ समझता ही न था।

एक दिन संध्या के समय वह अपने बेटे को गोद में लिए मटर की फलियाँ तोड़ रहा था। इतने में उसे भेड़ों का एक झुंड अपनी तरफ आता दिखायी दिया। वह अपने मन में कहने लगा- इधर से भेड़ों के निकलने का रास्ता न था। क्या खेत की मेंड़ पर से भेड़ों का झुंड नहीं जा सकता था? भेड़ों को इधर से लाने की क्या जरूरत? ये खेत को कुचलेंगी, चरेंगी। इसका डाँड़ कौन देगा? मालूम होता है, बुद्धू गडेरिया है। बचा को घमंड हो गया है, तभी तो खेतों के बीच से भेड़ें लिये चला आता है। जरा इसकी ढिठाई तो देखो। देख रहा है कि मैं खड़ा हूँ, फिर भी भेड़ों को लौटाता नहीं। कौन मेरे साथ कभी रिआयत की है कि मैं इसकी मुरौव्वत करूँ? अभी एक भेड़ा मोल माँगूँ तो पाँच ही रुपये सुनावेगा। सारी दुनिया में चार रुपये के कम्बल बिकते हैं, पर यह पाँच रुपये से नीचे की बात नहीं करता। इतने में भेड़ें खेत के पास आ गयीं। झींगुर ने ललकारकर कहा- अरे, ये भेड़ कहाँ लिये आते हो?

बुद्धू नम्र भाव से बोला- महतो, डाँड़ पर से निकल जायेंगी। घूमकर जाऊँगा तो कोस-भर का चक्कर पड़ेगा।

झींगुर- तो तुम्हारा चक्कर बचाने के लिए मैं अपने खेत क्यों कुचलवाऊँ? डाँड़ ही पर से ले जाना है, तो और खेतों के डाँड़ से क्यों नहीं ले गये? क्या मुझे कोई चूहड़-चमार समझ लिया है? या धन का घमंड हो गया है? लौटाओ इनको !

बुद्धू- महतो, आज निकल जाने दो। फिर कभी इधर से आऊँ तो जो सजा चाहे देना।

झींगुर- कह दिया कि लौटाओ इन्हें ! अगर एक भेड़ भी मेंड़ पर आयी तो समझ लो, तुम्हारी खैर नहीं।

बुद्धू- महतो, अगर तुम्हारी एक बेल भी किसी भेड़ के पैरों-तले आ जाय, तो मुझे बैठाकर सौ गालियाँ देना।

बुद्धू बातें तो बड़ी नम्रता से कर रहा था, किंतु लौटाने में अपनी हेठी समझता था। उसने मन में सोचा, इसी तरह जरा-जरा धमकियों पर भेड़ों को लौटाने लगा, तो फिर मैं भेड़ें चरा चुका। आज लौट जाऊँ, तो कल को कहीं निकलने का रास्ता ही न मिलेगा। सभी रोब जमाने लगेंगे।

बुद्धू भी पोढ़ा आदमी था। 12 कोड़ी भेड़ें थीं। उन्हें खेतों में बिठाने के लिए फ़ीरात आठ आने कोड़ी मजदूरी मिलती थी, इसके उपरान्त दूध बेचता था, ऊन के कम्बल बनाता था। सोचने लगा- इतने गरम हो रहे हैं, मेरा कर ही क्या लेंगे? कुछ इनका दबैल तो हूँ नहीं। भेड़ों ने जो हरी-हरी पत्तियाँ देखीं, तो अधीर हो गयीं। खेत में घुस पड़ीं। बुद्धू उन्हें डंडों से मार-मारकर खेत के किनारे हटाता था और वे इधर-उधर से निकलकर खेत में जा पड़ती थीं। झींगुर ने आग होकर कहा- तुम मुझसे हेकड़ी जताने चले हो, तुम्हारी सारी हेकड़ी निकाल दूँगा !

भलाइयों में जितना द्वेष होता है, बुराइयों में उतना ही प्रेम। विद्वान् विद्वान् को देखकर, साधु साधु को देखकर और कवि कवि को देखकर जलता है। एक दूसरे की सूरत नहीं देखना चाहता। पर जुआरी जुआरी को देखकर, शराबी शराबी को देखकर, चोर चोर को देखकर सहानुभूति दिखाता है, सहायता करता है।

बुद्धू- तुम्हें देखकर चौंकती हैं। तुम हट जाओ, तो मैं सबको निकाल ले जाऊँ।

झींगुर ने लड़के को तो गोद से उतार दिया और अपना डंडा सँभाल कर भेड़ों पर पिल पड़ा। धोबी भी इतनी निर्दयता से अपने गधे को न पीटता होगा। किसी भेड़ की टाँग टूटी, किसी की कमर टूटी। सबने बें-बें का शोर मचाना शुरू किया। बुद्धू चुपचाप खड़ा अपनी सेना का विध्वंस अपनी आँखों से देखता रहा। वह न भेड़ों को हाँकता था, न झींगुर से कुछ कहता था, बस खड़ा तमाशा देखता रहा। दो मिनट में झींगुर ने इस सेना को अपने अमानुषिक पराक्रम से मार भगाया। मेंष-दल का संहार करके विजय-गर्व से बोला- अब सीधे चले जाओ ! फिर इधर से आने का नाम न लेना।

बुद्धू ने आहत भेड़ों की ओर देखते हुए कहा- झींगुर, तुमने यह अच्छा काम नहीं किया। पछताओगे।

केले को काटना भी इतना आसान नहीं, जितना किसान से बदला लेना ! उसकी सारी कमाई खेतों में रहती है, या खलिहानों में। कितनी ही दैविक और भौतिक आपदाओं के बाद कहीं अनाज घर में आता है और जो कहीं इन आपदाओं के साथ विद्रोह ने भी संधि कर ली तो बेचारा किसान कहीं का नहीं रहता। झींगुर ने घर आकर दूसरों से इस संग्राम का वृत्तांत कहा, तो लोग समझाने लगे- झींगुर, तुमने बड़ा अनर्थ किया। जानकर अनजान बनते हो। बुद्धू को जानते नहीं, कितना झगड़ालू आदमी है। अब भी कुछ नहीं बिगड़ा। जाकर उसे मना लो। नहीं तो तुम्हारे साथ सारे गाँव पर आफत आ जायगी। झींगुर की समझ में बात आयी। पछताने लगा कि मैंने कहाँ से-कहाँ उसे रोका। अगर भेड़ें थोड़ा-बहुत चर ही जातीं, तो कौन मैं उजड़ा जाता था। वास्तव में हम किसानों का कल्याण दबे रहने में ही है। ईश्वर को भी हमारा सिर उठाकर चलना अच्छा नहीं लगता। जी तो बुद्धू के घर जाने को न चाहता था, किंतु दूसरों के आग्रह से मजबूर होकर चला। अगहन का महीना था, कुहरा पड़ रहा था, चारों ओर अंधकार छाया हुआ था। गाँव से बाहर निकला ही था कि सहसा अपने ऊख के खेत की ओर अग्नि की ज्वाला देखकर चौंक पड़ा। छाती धड़कने लगी। खेत में आग लगी हुई थी। बेतहाशा दौड़ा। मनाता जाता था कि मेरे खेत में न हो। पर ज्यों-ज्यों समीप पहुँचता था, यह आशामय भ्रम शांत होता जाता था। वह अनर्थ हो ही गया, जिसके निवारण के लिए वह घर से चला था। हत्यारे ने आग लगा ही दी और मेरे पीछे सारे गाँव को चौपट किया। उसे ऐसा जान पड़ता था कि वह खेत आज बहुत समीप आ गया है, मानो बीच के परती खेतों का अस्तित्व ही नहीं रहा ! अंत में जब वह खेत पर पहुँचा, तो आग प्रचंड रूप धारण कर चुकी थी। झींगुर ने 'हाय-हाय' मचाना शुरू किया। गाँव के लोग दौड़ पड़े और खेतों से अरहर के पौधे उखाड़कर आग को पीटने लगे। अग्नि-मानव-संग्राम का भीषण दृश्य उपस्थित हो गया। एक पहर तक हाहाकार मचा रहा। कभी एक प्रबल होता था, कभी दूसरा। अग्नि-पक्ष के योद्धा मर-मरकर

जी उठते थे और द्विगुण शक्ति से, रणोन्मत्त होकर शस्त्रग-प्रहार करने लगते थे। मानव-पक्ष में जिस योद्धा की कीर्ति सबसे उज्ज्वल थी, वह बुद्धू था। बुद्धू कमर तक धोती चढ़ाये, प्राण हथेली पर लिये, अग्निराशि में कूद पड़ता था और शत्रुओं को परास्त करके, बाल-बाल बचकर, निकल आता था। अन्त में मानव-दल की विजय हुई; किन्तु ऐसी विजय जिस पर हार भी हँसती। गाँव-भर की ऊख जलकर भस्म हो गयी और ऊख के साथ सारी अभिलाषाएँ भी भस्म हो गयीं।

आग किसने लगायी यह खुला हुआ भेद था; पर किसी को कहने का साहस न था। कोई सबूत नहीं। प्रमाणहीन तर्क का मूल्य ही क्या? झींगुर को घर से निकलना मुश्किल हो गया। जिधर जाता, ताने सुनने पड़ते। लोग प्रत्यक्ष कहते थे- यह आग तुमने लगवायी। तुम्हीं ने हमारा सर्वनाश किया। तुम्हीं मारे घमंड के धरती पर पैर न रखते थे। आप-के-आप गये, अपने साथ गाँव-भर को डुबो दिया। बुद्धू को न छेड़ते तो आज क्यों यह दिन देखना पड़ता? झींगुर को अपनी बरबादी का इतना दुःख न था, जितना इन जली-कटी बातों का? दिन-भर घर में बैठा रहता। पूस का महीना आया। जहाँ सारी रात कोल्हू चला करते थे, गुड़ की सुगंध उड़ती रहती थी, भट्ठियाँ जलती रहती थीं और लोग भट्ठियों के सामने बैठे हुक्का पिया करते थे, वहाँ सन्नाटा छाया हुआ था। ठंड के मारे लोग साँझ ही से किवाड़ें बंद करके पड़ रहते और झींगुर को कोसते। माघ और भी कष्टदायक था। ऊख केवल धनदाता ही नहीं, किसानों का जीवनदाता भी है। उसी के सहारे किसानों का जाड़ा कटता है। गरम रस पीते हैं, ऊख की पत्तियाँ तापते हैं, उसके अगोड़े पशुओं को खिलाते हैं। गाँव के सारे कुत्ते जो रात को भट्ठियों की राख में सोया करते थे ठंड से मर गये। कितने ही जानवर चारे के अभाव से चल बसे। शीत का प्रकोप हुआ और सारा गाँव खाँसी-बुखार में ग्रस्त हो गया। और यह सारी विपत्ति झींगुर की करनी थी- अभागे, हत्यारे झींगुर की !

एक पंडितजी अगर अँधेरे में ठोकर खाकर गिर पड़ें, तो दूसरे पंडितजी उन्हें उठाने के बदले दो ठोकरें और लगायेंगे कि वह फिर उठ ही न सकें। पर एक चोर पर आफत आयी देख दूसरा चोर उसकी मदद करता है। बुराई से सब घृणा करते हैं, इसलिए बुरों में परस्पर प्रेम होता है। भलाई की सारा संसार प्रशंसा करता है, इसलिए भलों से विरोध होता है।

झींगुर ने सोचते-सोचते निश्चय किया कि बुद्धू की दशा भी अपनी ही सी बनाऊँगा। उसके कारण मेरा सर्वनाश हो गया और चैन की बंशी बजा रहा है! मैं भी उसका सर्वनाश करूँगा।

जिस दिन इस घातक कलह का बीजारोपण हुआ, उसी दिन से बुद्धू ने इधर आना छोड़ दिया था। झींगुर ने उससे रब्त-जब्त बढ़ाना शुरू किया। वह बुद्धू को दिखाना चाहता था कि तुम्हारे ऊपर मुझे बिलकुल सन्देह नहीं है। एक दिन कम्बल लेने के बहाने गया। फिर दूध लेने के बहाने गया। बुद्धू उसका खूब आदर-सत्कार करता। चिलम तो आदमी दुश्मन को भी पिला देता है, वह उसे बिना दूध और शरबत पिलाये न आने देता। झींगुर आजकल एक सन लपेटनेवाली कल में मजदूरी करने जाया करता था। बहुधा कई-कई दिनों की मजदूरी इकट्ठी मिलती थी। बुद्धू ही की तत्परता से झींगुर का रोजाना खर्च चलता था। अतएव झींगुर ने खूब रब्त-जब्त बढ़ा लिया। एक दिन बुद्धू ने पूछा- क्यों झींगुर, अगर अपनी ऊख जलानेवाले को पा जाओ, तो क्या करो? सच कहना।

झींगुर ने गम्भीर भाव से कहा- मैं उससे कहूँ, भैया तुमने जो कुछ किया, बहुत अच्छा किया। मेरा घमंड तोड़ दिया, मुझे आदमी बना दिया।

बूद्धू- मैं जो तुम्हारी जगह होता, तो बिना उसका घर जलाये न मानता।

झींगुर- चार दिन की जिंदगानी में बैर-बिरोध बढ़ाने से क्या फायदा है? मैं तो बरबाद हुआ ही, अब उसे बरबाद करके क्या पा ऊँगा?

बुद्धू- बस, यही आदमी का धर्म है। पर भाई क्रोध के बस में होकर बुद्धि उलटी हो जाती है।

फागुन का महीना था। किसान ऊख बोने के लिए खेतों को तैयार कर रहे थे। बुद्धू का बाजार गरम था। भेड़ों की लूट मची हुई थी। दो-चार आदमी नित्य द्वार पर खड़े खुशामदें किया करते। बुद्धू किसी से सीधे मुँह बात न करता। भेड़ रखने की फीस दूनी कर दी थी। अगर कोई एतराज करता तो बेलाग कहता- तो भैया, भेड़ें तुम्हारे गले तो नहीं लगाता हूँ। जी न चाहे, मत रखो। लेकिन मैंने जो कह दिया है, उससे एक कौड़ी भी कम नहीं हो सकती ! गरज थी, लोग इस रुखाई पर भी उसे घेरे ही रहते थे, मानो पंडे किसी यात्री के पीछे हों।

लक्ष्मी का आकार तो बहुत बड़ा नहीं, और वह भी समयानुसार छोटा-बड़ा होता रहता है। यहाँ तक कि कभी वह अपना विराट आकार समेंट कर उसे कागज के चंद अक्षरों में छिपा लेती है। कभी-कभी मनुष्य की जिह्वा पर जा बैठती है, आकार का लोप हो जाता है। किंतु उनके रहने को बहुत स्थान की जरूरत होती है। वह आयी, और घर बढ़ने लगा। छोटे घर में उनसे नहीं रहा जाता। बुद्धू का घर भी बढ़ने लगा। द्वार पर

बरामदा डाला गया, दो की जगह छः कोठरियाँ बनवायी गयीं। यों कहिए कि मकान नये सिरे से बनने लगा। किसी किसान से लकड़ी माँगी, किसी से खपरों का आँवा लगाने के लिए उपले, किसी से बाँस और किसी से सरकंडे। दीवार की उठवायी देनी पड़ी। वह भी नकद नहीं; भेड़ों के बच्चों के रूप में। लक्ष्मी का यह प्रताप है। सारा काम बेगार में हो गया। मुफ्त में अच्छा-खासा घर तैयार हो गया। गृह-प्रवेश के उत्सव की तैयारियाँ होने लगीं।

इधर झींगुर दिन-भर मजदूरी करता, तो कहीं आधा पेट अन्न मिलता। बुद्धू के घर कंचन बरस रहा था। झींगुर जलता था, तो क्या बुरा करता था! यह अन्याय किससे सहा जायगा?

एक दिन वह टहलता हुआ चमारों के टोले की तरफ चला गया। हरिहर को पुकारा। हरिहर ने आकर 'राम-राम' की और चिलम भरी। दोनों पीने लगे। यह चमारों का मुखिया बड़ा दुष्ट आदमी था। सब किसान इससे थर-थर काँपते थे।

झींगुर ने चिलम पीते-पीते कहा- आजकल फाग-वाग नहीं होता क्या? सुनायी नहीं देता।

हरिहर- फाग क्या हो, पेट के धंधे से छुट्टी ही नहीं मिलती। कहो, तुम्हारी आजकल कैसी निभती है?

झींगुर- क्या निभती है। नकटा जिया बुरे हवाल! दिन-भर कल में मजदूरी करते हैं, तो चूल्हा जलता है। चाँदी तो आजकल बुद्धू की है। रखने को ठौर नहीं मिलता। नया घर बना, भेड़ें और ली हैं! अब गृहपरबेस की धूम है। सातों गाँव में सुपारी जायगी!

हरिहर- लच्छिमी मैया आती है, तो आदमी की आँखों में सील आ जाता है। पर उसको देखो, धरती पर पैर नहीं रखता। बोलता है, तो ऐंठ ही कर बोलता है।

झींगुर- क्यों न ऐंठे, इस गाँव में कौन है उसकी टक्कर का! पर यार, यह अनीति तो नहीं देखी जाती। भगवान् दे, तो सिर झुकाकर चलना चाहिए। यह नहीं कि अपने बराबर किसी को समझे ही नहीं। उसकी डींग सुनता हूँ, तो बदन में आग लग जाती है। कल का बानी आज का सेठ। चला है हमीं से अकड़ने। अभी कल लँगोटी लगाये खेतों में कौए हँकाया करता था, आज उसका आसमान में दिया जलता है।

हरिहर- कहो, तो कुछ उतजोग करूँ?

झींगुर- क्या करोगे! इसी डर से तो वह गाय-भैंस नहीं पालता।

हरिहर- भेड़ें तो हैं।

झींगुर- क्या, बगला मारे पखना हाथ।

हरिहर- फिर तुम्हीं सोचो।

झींगुर- ऐसी जुगुत निकालो कि फिर पनपने न पावे।

इसके बाद फुस-फुस करके बातें होने लगीं। वह एक रहस्य है कि भलाइयों में जितना द्वेष होता है, बुराइयों में उतना ही प्रेम। विद्वान् विद्वान् को देखकर, साधु साधु को देखकर और कवि कवि को देखकर जलता है। एक दूसरे की सूरत नहीं देखना चाहता। पर जुआरी जुआरी को देखकर, शराबी शराबी को देखकर, चोर चोर को देखकर सहानुभूति दिखाता है, सहायता करता है। एक पंडितजी अगर अँधेरे में ठोकर खाकर गिर पड़ें, तो दूसरे पंडितजी उन्हें उठाने के बदले दो ठोकरें और लगायेंगे कि वह फिर उठ ही न सकें। पर एक चोर पर आफत आयी देख दूसरा चोर उसकी मदद करता है। बुराई से सब घृणा करते हैं, इसलिए बुरों में परस्पर प्रेम होता है। भलाई की सारा संसार प्रशंसा करता है, इसलिए भलों से विरोध होता है। चोर को मारकर चोर क्या पायेगा? घृणा। विद्वान् का अपमान करके विद्वान् क्या पायेगा? यश।

झींगुर और हरिहर ने सलाह कर ली। षड्यंत्र रचने की विधि सोची गयी। उसका स्वरूप, समय और क्रम ठीक किया गया। झींगुर चला, तो अकड़ा जाता था। मार लिया दुश्मन को, अब कहाँ जाता है!

दूसरे दिन झींगुर काम पर जाने लगा, तो पहले बुद्धू के घर पहुँचा। बुद्धू ने पूछा- क्यों, आज नहीं गये क्या?

झींगुर- जा तो रहा हूँ। तुमसे यही कहने आया था कि मेंरी बछिया को अपनी भेड़ों के साथ क्यों नहीं चरा दिया करते। बेचारी खूँटे से बँधी-बँधी मरी जाती है। न घास, न चारा, क्या खिलायें?

बुद्धू- भैया, मैं गाय-भैंस नहीं रखता। चमारों को जानते हो, एक ही हत्यारे होते हैं। इसी हरिहर ने मेंरी दो गउएँ मार डालीं। न जाने क्या खिला देता है। तब से कान पकड़े कि अब गाय-भैंस न पालूँगा। लेकिन तुम्हारी एक ही बछिया है, उसका कोई क्या करेगा। जब चाहो, पहुँचा दो।

यह कहकर बुद्धू अपने गृहोत्सव का सामान उसे दिखाने लगे। घी, शक्कर, मैदा, तरकारी सब मँगा रखा था। केवल सत्यनारायण की कथा की देर थी। झींगुर की आँखें खुल गयीं। ऐसी तैयारी न उसने स्वयं कभी की थी और न किसी को करते देखी थी। मजदूरी करके घर लौटा, तो सबसे पहला काम जो उसने किया वह अपनी बछिया को बुद्धू के घर पहुँचाना था। उसी रात को बुद्धू के यहाँ सत्यनारायण की कथा हुई। ब्रह्मभोज भी किया गया। सारी रात विप्रों का आगत-स्वागत करते गुजरी। भेड़ों के झुंड में जाने का अवकाश ही न मिला। प्रातःकाल भोजन करके उठा ही था (क्योंकि रात का भोजन सबेरे मिला) कि एक आदमी ने आकर खबर दी- बुद्धू, तुम यहाँ बैठे हो, उधर भेड़ों में

बछिया मरी पड़ी है ! भले आदमी, उसकी पगहिया भी नहीं खोली थी !

बुद्धू ने सुना, और मानो ठोकर लग गयी । झींगुर भी भोजन करके वहीं बैठा था । बोला- हाय-हाय, मेंरी बछिया ! चलो, जरा देखूँ तो । मैंने तो पगहिया नहीं लगायी थी । उसे भेड़ों में पहुँचाकर अपने घर चला गया । तुमने यह पगहिया कब लगा दी?

बुद्धू- भगवान् जाने जो मैंने उसकी पगहिया देखी भी हो । मैं तो तब से भेड़ों में गया ही नहीं ।

झींगुर- जाते न तो पगहिया कौन लगा देता? गये होगे, याद न आती होगी ।

एक ब्राह्मण- मरी तो भेड़ों में ही न? दुनिया तो यही कहेगी कि बुद्धू की असावधानी से उसकी मृत्यु हुई, पगहिया किसी की हो ।

हरिहर-मैंने कल साँझ को इन्हें भेड़ों में बछिया को बाँधते देखा था ।

बुद्धू- मुझे?

हरिहर- तुम नहीं लाठी कंधे पर रखे बछिया को बाँध रहे थे?

बुद्धू- बड़ा सच्चा है तू ! तूने मुझे बछिया को बाँधते देखा था?

हरिहर- तो मुझ पर काहे बिगड़ते हो भाई? तुमने नहीं बाँधी, नहीं सही ।

ब्राह्मण- इसका निश्चय करना होगा । गोहत्या का प्रायश्चित्त करना पड़ेगा । कुछ हँसी ठट्ठा है ।

झींगुर- महाराज, कुछ जान-बूझकर तो बाँधी नहीं ।

ब्राह्मण- इससे क्या होता है? हत्या इसी तरह लगती है; कोई गऊ को मारने नहीं जाता ।

झींगुर- हाँ, गऊओं को खोलना-बाँधना है तो जोखिम का काम ।

ब्राह्मण- शास्त्रों में इसे महापाप कहा है । गऊ की हत्या ब्राह्मण की हत्या से कम नहीं ।

झींगुर- हाँ, फिर गऊ तो ठहरी ही । इसी से न इनका मान होता है । जो माता, सो गऊ । लेकिन महाराज, चूक हो गयी । कुछ ऐसा कीजिए कि थोड़े में बेचारा निपट जाय?

बुद्धू खड़ा सुन रहा था कि अनायास मेरे सिर हत्या मढ़ी जा रही है । झींगुर की कूटनीति भी समझ रहा था । मैं लाख कहूँ, मैंने बछिया नहीं बाँधी, मानेगा कौन? लोग यही कहेंगे कि प्रायश्चित्त से बचने के लिए ऐसा कह रहा है ।

ब्राह्मण देवता का भी उसका प्रायश्चित्त कराने में कल्याण होता था । भला ऐसे अवसर पर कब चूकने वाले थे । फल यह हुआ कि बुद्धू को हत्या लग गयी। ब्राह्मण भी उससे जले हुए थे । कसर निकालने की घात मिली । तीन मास का भिक्षा दंड दिया, फिर सात तीर्थस्थानों की यात्रा; उस पर 500 विप्रों का भोजन और पाँच गउओं का दान । बुद्धू ने सुना, तो बधिया बैठ गयी । रोने लगा, तो दंड घटाकर दो मास कर दिया । इसके सिवा कोई रिआयत नहीं हो सकी । न कहीं अपील, न कहीं फरियाद ! बेचारे को यह दंड स्वीकार करना पड़ा ।

बुद्धू ने भेड़ें ईश्वर को सौंपी । लड़के छोटे थे । स्त्री अकेली क्या-क्या करती । गरीब जाकर द्वारों पर खड़ा होता और मुँह छिपाये हुए कहता- गाय की बाछी दिया बनवास । भिक्षा तो मिल जाती, किंतु भिक्षा के साथ दो-चार कठोर अपमानजनक शब्द भी सुनने पड़ते । दिन को जो-कुछ पाता, वही शाम को किसी पेड़ के नीचे बनाकर खा लेता और वहीं पड़ रहता । कष्ट की तो उसे परवा न थी, भेड़ों के साथ दिन-भर चलता ही था, पेड़ के नीचे सोता ही था, भोजन भी इससे कुछ ही अच्छा मिलता था पर लज्जा थी भिक्षा माँगने की । विशेष करके जब कोई कर्कशा यह व्यंग्य कर देती थी कि रोटी कमाने का अच्छा ढंग निकाला है, तो उसे हार्दिक वेदना होती थी । पर करे क्या?

लक्ष्मी का आकार तो बहुत बड़ा नहीं, और वह भी समयानुसार छोटा-बड़ा होता रहता है । यहाँ तक कि कभी वह अपना विराट आकार समेंट कर उसे कागज के चंद अक्षरों में छिपा लेती है । कभी-कभी मनुष्य की जिह्वा पर जा बैठती है; आकार का लोप हो जाता है । किंतु उनके रहने को बहुत स्थान की जरूरत होती है । वह आयी, और घर बढ़ने लगा । छोटे घर में उनसे नहीं रहा जाता । बुद्धू का घर भी बढ़ने लगा ।

दो महीने के बाद वह घर लौटा । बाल बढ़े हुए थे । दुर्बल इतना, मानो 60 वर्ष का बूढ़ा हो । तीर्थयात्रा के लिए रुपयों का प्रबन्ध करना था, गडरियों को कौन महाजन कर्ज दे ! भेड़ों का भरोसा क्या? कभी-कभी रोग फैलता है, तो रात भर में दल-का-दल साफ हो जाता है । उस पर जेठ का महीना, जब भेड़ों से कोई आमदनी होने की आशा नहीं । एक तेली राजी भी हुआ, तो दो रुपये ब्याज पर । आठ महीने में ब्याज मूल के बराबर हो जायगा । यहाँ कर्ज लेने की हिम्मत न पड़ी । इधर दो महीनों में कितनी ही भेड़ें चोरी चली गयी थीं । लड़के चराने ले जाते थे । दूसरे गाँव वाले चुपके से एक-दो भेड़ें किसी खेत या घर में छिपा देते और पीछे मारकर खा जाते । लड़के बेचारे एक तो पकड़ न सकते, और जो देख भी लेते तो लड़ें क्योंकर ।

सारा गाँव एक हो जाता। एक महीने में तो भेड़ें आधी भी न रहेंगी। बड़ी विकट समस्या थी। विवश होकर बुद्धू ने एक बूचड़ को बुलाया और सब भेड़ें उसके हाथ बेच डालीं। 500 रु. हाथ लगे। उसमें से 200 रु. लेकर तीर्थयात्रा करने गया। शेष रुपये ब्रह्मभोज आदि के लिए छोड़ गया।

बुद्धू के जाने पर उसके घर में दो बार सेंध लगी। पर यह कुशल हुई कि जगहट हो जाने के कारण रुपये बच गये। सावन का महीना था। चारों ओर हरियाली छायी हुई थी। झींगुर के बैल न थे। खेत बटाई पर दे दिये थे। बुद्धू प्रायश्चित्त से निवृत्त हो गया था और उसके साथ ही माया के फन्दे से भी। न झींगुर के पास कुछ था, न बुद्धू के पास। कौन किससे जलता और किस लिए जलता?

सन की कल बन्द हो जाने के कारण झींगुर अब बेलदारी का काम करता था। शहर में एक विशाल धर्मशाला बन रही थी। हजारों मजदूर काम करते थे। झींगुर भी उन्हीं में था। सातवें दिन मजदूरी के पैसे लेकरघर आता था और रात-भर रहकर सबेरे फिर चला जाता था।

बुद्धू भी मजदूरी की टोह में यहीं पहुँचा। जमादार ने देखा दुर्बल आदमी है, कठिन काम तो इससे हो न सकेगा, कारीगरों को गारा देने के लिए रख लिया। बुद्धू सिर पर तसला रखे गारा लेने गया, तो झींगुर को देखा। 'राम-राम' हुई, झींगुर ने गारा भर दिया, बुद्धू उठा लाया। दिनभर दोनों चुपचाप अपना-अपना काम करते रहे।

संध्या समय झींगुर ने पूछा- कुछ बनाओगे न?

बुद्धू- नहीं तो खाऊँगा क्या?

झींगुर- मैं तो एक जून चबैना कर लेता हूँ। इस जून सत्तू पर काट देता हूँ। कौन झंझट करे।

बुद्धू- इधर-उधर लकड़ियाँ पड़ी हुई हैं बटोर लाओ। आटा मैं घर से लेता आया हूँ। घर ही पिसवा लिया था। यहाँ तो बड़ा महँगा मिलता है। इसी पत्थर की चट्टान पर आटा गूँधे लेता हूँ। तुम तो मेरा बनाया खाओगे नहीं, इसलिए तुम्हीं रोटियाँ सेंको, मैं बना दूँगा।

झींगुर- तवा भी तो नहीं है?

बुद्धू- तवे बहुत हैं। यही गारे का तसला माँजे लेता हूँ।

आग जली, आटा गूँधा गया। झींगुर ने कच्ची-पक्की रोटियाँ बनायीं। बुद्धू पानी लाया। दोनों ने लाल मिर्च और नमक से रोटियाँ खायीं। फिर चिलम भरी गयी। दोनों आदमी पत्थर की सिलों पर लेटे, और चिलम पीने लगे।

बुद्धू ने कहा- तुम्हारी ऊख में आग मैंने लगायी थी।

झींगुर ने विनोद के भाव से कहा- जानता हूँ।

थोड़ी देर बाद झींगुर बोला- बछिया मैंने ही बाँधी थी और हरिहर ने उसे कुछ खिला दिया था।

बुद्धू ने भी वैसे ही भाव से कहा- जानता हूँ।

फिर दोनों सो गये।

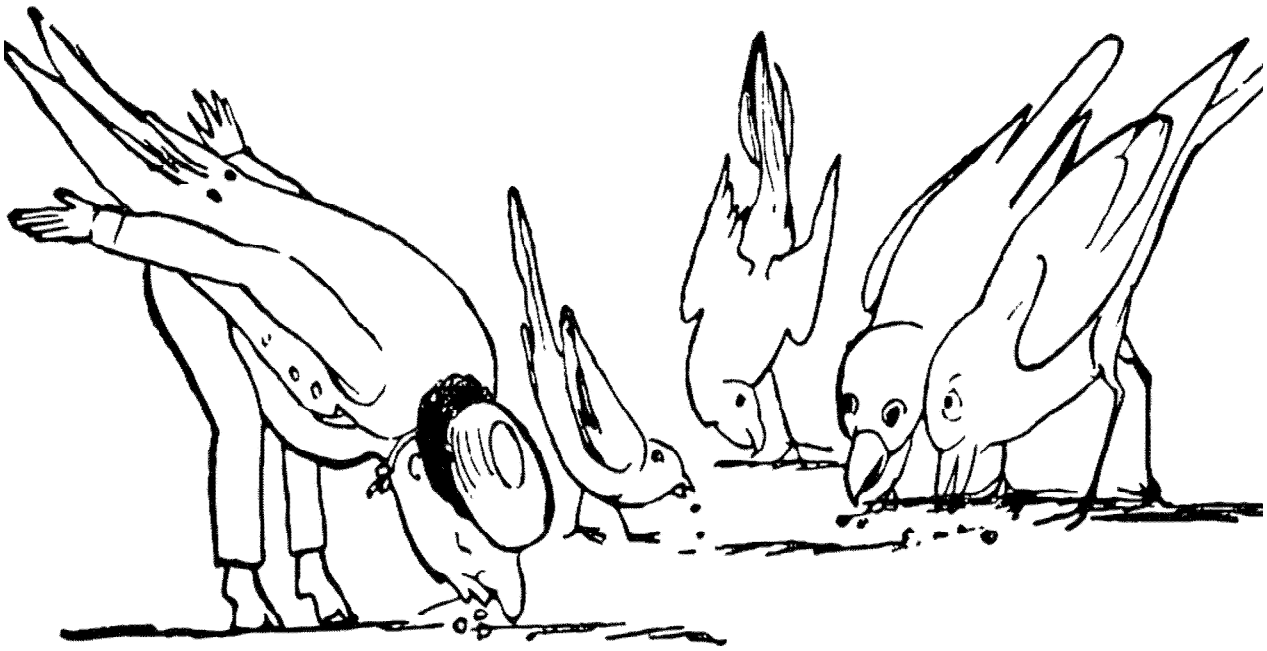

विशेष

कविता का सारा वैभव भाषा पर है - त्रिलोचन

आशुतोष तिवारी

सन् 1988 के शरद के दिनों में हिन्दी कविता की प्रगतिशील धारा के अत्यंत महत्वपूर्ण कवि त्रिलोचन शास्त्री अम्बिकापुर में आकाशवाणी के एक आयोजन में शामिल होने आये थे। उन दिनों यहां आकाशवाणी में विद्वान और हिन्दी साहित्य के अनुपम अध्येता सुरेश पाण्डेय कार्यक्रम अधिशासी थे। उनके आवास पर ठहरे त्रिलोचन शास्त्री लगभग एक-डेढ़ महीने तक समूचे अम्बिकापुर के साहित्यिक जन के मेंहमान बने हुए थे।

आशुतोष तिवारी उन्हीं दिनों में त्रिलोचन शास्त्री जी से जेबी टेपरिकार्डर पर यह साक्षात्कार लिया था। आशुतोष ने 'इन्टरव्यू' पर इत्मिनान से काम करने की सोच रख दिया। वर्षों तक आलमारी के कोने में पड़े इन कैसेटों को उनकी जीवन-संगिनी श्रीमती शशि तिवारी ने सुना। नब्बे-नब्बे मिनट के इन कैसेटों को वर्षों बाद टेपरिकार्डर पर चलाने की कोशिश करने पर पहला कैसेट इतना जाम हो गया था कि उसने चलने से इनकार कर दिया। दूसरे कैसेट में कैद हिन्दी के प्रगतिशील धारा के अनन्य कवि त्रिलोचन से आशुतोष तिवारी की अब तक अप्रकाशित बातचीत को शशि जी ने लिपिबद्ध करके पाण्डुलिपि तैयार करने का श्रमसाध्य कार्य किया।

इस साक्षात्कार को उपलब्ध कराने के लिए आशुतोष की जीवन-संगिनी श्रीमती शशि तिवारी जी का हृदय से आभार है। उपलब्ध पाण्डुलिपि के अनुसार ऐसा अनुमान होता है कि त्रिलोचन जी और आशुतोष पहले कैसेट में हिन्दी साहित्य और हिन्दी कविता के साथ ही साथ वृहत्तर भारतीय साहित्य पर चल रही होगी। इस कैसेट के अंतिम अंशों में भारत के महान कवि, दार्शनिक, नोबल पुरस्कार से देश को गौरवान्वित करने वाले भारतीय मनीषा के सूर्य रवीन्द्रनाथ ठाकुर पर चर्चा चल रही होगी.....

आशुतोष तिवारी हिन्दी के प्रमुख आलोचक थे। आज हम सभी के बीच वह नहीं हैं। साक्षात्कार उन्होने

आशुतोष - वे (रवीन्द्रनाथ ठाकुर) जब सोलह साल के हुए सतहत्तर या छिहत्तर के उन्नीस सौ नहीं अठारह सौ वह अठारह सौ एकसठ के थे।

त्रिलोचन- साठ में कि एकसठ में तो वह कम उम्र में ही कविता करने के लिए लिखकर रखने लगे कागज पर 12 साल के थे तो इस पर चौंकने की बात नहीं है। शख्स का जिसका अनुबंध बन जाएगा वह कविता कर लेगा।

आशुतोष- जैसे सुकान्त भट्टाचार्य ।

त्रिलोचन- हां-हां सुकान्त भी है, सुकान्त तो छपा हुआ है । छाड़पत्रों बढ़िया कविता है। छाड़पत्र को क्या कहते हैं ? झाड़पत्र कहते हैं। झाड़पत्र यानी कि कोई रोका न जा सके, अवरुद्ध न किया जा सके। तो रवीन्द्रनाथ के पिता ने उस समय के प्रख्यात विद्वानों को बुलाया था । सोलह साल के वह हो गए थे । और योगेश ने ये कहा आने पर उन दिनों चाय-वाय नहीं चलती थी शर्बत चलता था। तो उसने शर्बत पिलाया। और उन्होंने कहा कि ये मेरा छोटा लड़का कविता करता है है तो आप लोग सुनकर बतायें कि ये कैसा है । तो देवेन्द्रनाथ के बुलाये हुए लोगों में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जैसे महापुरुष जो सरल पण्डित विद्वान और बांग्ला गद्य के प्रवर्तक कहें, माने प्रवर्तक तो पहले से हो गया था । लेकिन बांग्ला गद्य भी उन्होंने लिखा और अच्छा लिखा। इसी तरह से और कई जन थे। सुन्दर त्रिवेदी बुलाए गए, ये कान्यकुब्ज ब्राम्हण थे जो कि वहां दो पुश्त से बसे थे। विज्ञान संबंधी विषयों के सर्वमान्य विद्वान रामेन्द्र स्वामी त्रिवेदी इसी तरह से शिवनाथ शास्त्री और कई मने जो विख्यात विद्वान थे। हरप्रसाद शास्त्री बुलाये गए, ये दवा पढ़ेंगे तो मालूत होगा इनदवा अर्थ जब इनका काम देखेंगे यानी कि पढ़ने की आदत डालना चाहिए। तो खैर ये लोग आये और कविता पाठ किये और रवीन्द्रनाथ से कहा कि कविता का पाठ करें और रवीन्द्रनाथ कविता पढ़ने लगे और वो लोग शान्त बैठे रहे सुनते चले गए। तो तीन-चार कविता पढ़ने के बाद उन्होंने देखा कि पण्डित लोग चुपचाप सुन रहे थे । तो उन्होंने कहा- "अरू कवि की" और पढ़ूँ क्या ? तो विद्यासागर ने कहा - चलो आगे पढ़ो तो उन्होंने घंटे- डेढ़ घंटे तक पाठ किया। विद्यासागर उठे अपने आसन से और सब विद्वानों से अनुरोध किया कि आप लोग खड़े हो जाइए। हम लोगों को बंगाल के भावी महापुरुष को नमस्कार करना है और सभी पण्डितों ने सोलह वर्षीयय रवीन्द्रनाथ को नमस्कार किया। भावी महापुरुष थे।

> क्रांति का फैशन प्रतिबद्धता है । तो जो प्रतिबद्ध होगा वह लिख ही नहीं समता अपनी प्रतिबद्धता के बाहर । जैसे हम कहें कि तुलसीदास को कहें कि राम भक्ति को छानकर हम अलग कर देंगे, बाकी जो तुलसीदास में है उसे हम रखेंगे तो भईया तुलसीदास ही गायब हो जाएंगे। इसी तरह से आग्रह है जो हमारे यहां है, वह निज का है आप हमारी कविता पढ़कर हमें गालियां दीजिए लेकिन हम अपनी प्रतिबद्धता नहीं छोड़ेंगे।

तो कविता में उम्र नहीं देखी जाती यह हवाला है। और इसका मतलब हर कविता लिखने वाला आरंभ से ही रवीन्द्रनाथ हो जाएंगे यह भी नहीं कहा जा सकता और रवीन्द्रनाथ की कविताओं में इतने स्तर हैं, इतने दांक-पेंच हैं, भाषा और व्याकरण के रूप इतने भिन्न-भिन्न हैं जो व्याकरण को भी चिन्तित कर देते हैं। बहुतो को अखरती है लेकिन बहतों को रूचती है। और आरंभ की कविताएं जो उनकी प्रशंसित और सराही गई थीं। वात संकलन में जमा हैं। बंगाल में जिनको रूमानी कविता कहते हैं उसका प्रवर्तन बहुत पहले से ही हो गया था लेकिन इस रूमानी कविता को शिखर पर पहुंचाया रवीन्द्रनाथ ने। और रवीन्द्रनाथ जी लोक जीवन, लोक नायक बन गये । मेरा कहना ये है कि रचनाकार जब नया होता है। जब वो कविताओं का बोझ सिर पर नहीं लिए होता है तब योगदान योग्य होता है । तब वह किसी की नकल नहीं करता है। और कविता के लिए पाण्डित्य हो, ठीक है। पाण्डित्य के बिना तो मालूम नहीं होता । यह है कि भाव को ग्रहण करने की शक्ति ये भाव मनुष्य शरीर का छनद शरीर के आकार, चेष्टाएँ पूंजी ये सब । तो इन तमाम के साथ कविता, कविता बनती है।

कविता को सामान्य बनाकर जब लिखा जाएगा, जैसे गद्य में, जैसे सामान्य बोला जा सकता है। तो कविता में सामान्य विषय को असामान्य बनाना पड़ता है। ये कविता का खास काम है और हर कवि के साथ जिसको फन कहा जाए। यह काम जिसमें जितना ही हो वो उतना बढ़िया है।

आशुतोष- एक रचनाकार के लिए प्रतिबद्धता आवश्यक है ऐसा नहीं है ?

त्रिलोचन- तुलसीदास राम के भक्त हैं, और राम की भक्ति है... और राम के बिना कोई प्रयोग ही नहीं तो तुलसीदास की प्रतिबद्धता को आप कैसे समझते हैं बताइए। प्रति- बद्धता पर मेरा कहना है कि मैं प्रतिबद्ध हूँ। मैं मार्क्सवाद को स्वीकार करता हूँ। किसान और मजदूर की क्रांति का हामी है। यह मेंरी अपनी निज

की बात है। तो हो सकता है आप इसका विरोध करते हैं लेकिन इसके बिना तो मेरा काम चल ही नहीं सकता । इसके बिना प्रतिबद्धता का, यह मैं आपके कहने अपना ये आधार नहीं छोड़ता । वही मुझे जीवित रखेगा, अगर जीवित रहूंगा। और वह मैं छोड़ दूंगा तो मैं किसी काम का नहीं रहूंगा। अज्ञेय मार्क्सवाद को पसंद नहीं करते हैं, तो अज्ञेय कवि नहीं हैं यह कहना तो संभव नहीं है । अज्ञेय कवि हैं और अज्ञेय में यदि प्रतिबद्धता अगर है तो नर-नारी के प्रेम के प्रति भी, क्रांति के प्रति भी नहीं है। प्रतिबद्धता तो आज भी क्रांति की है और अज्ञेय तो हथियार वालों के साथ थे। मुझे ये आश्चर्य होता है कि ये आदमी क्रांति के उपर एक भी पंक्ति क्यों नहीं लिखा। मुझे लगता है ये फंस से गये और यशपाल जो थे। यशपाल ने थोड़ा सा लिखा है ज्यादा नहीं; और क्रांति का दर्शन तो यशपाल में भी नहीं है वह आपको देखना हो तो विश्वनाथ गंगाधर चंपायन में चन्द्रशेखर आजाद की जीवनी लिखी हे, जिसको छापा था बटुक प्रसाद अग्रवाल ने। यह क्रांतिकारी है, बाद में सरकारी नौकरी में ये फिर रिटायर हुए। फिर रिटायर्ड होने के बाद कुछ दिन में मरे। उन्होंने ही इस जीवनी को छापी थी। आपको मालूम होगा चंपायन कहानीकार भी थे चंपायन कवि भी थे, और रानी लक्ष्मीबाई पर कविताएं लिखी और एक किताब भी लिखी थी जो गायब हो गई है तो चंपायन क्रांति की बात कहना नहीं भूलते थे। और चंपायन चन्द्रशेखर के साथ शरीर रक्षक के रूप में रहा करते थे बराबर यहां तक कि अन्तिम समय में भी उनके साथ थे। आजाद के कहने पर अपने को बचाया था। वो भाग गये थे और दूसरे जो सज्जन भाग गए थे.....(थोड़ी देर की चुप्पी) दूसरा... जो भागे थे उनका नाम अभी मैं भूल रहा हूँ, बाद में याद आ जाएगा तो बताऊँगा बाद में सन्यासी हो गए। होंगे तो अभी होंगे। तो ये लोग क्रांति की बात करना जीवन में कभी भूलेंगे नहीं? तो मेरा यह कहना है कि क्रांति का फैशन प्रतिबद्धता है। तो जो प्रतिबद्ध होगा वह लिख ही नहीं समता अपनी प्रतिबद्धता के बाहर। जैसे हम कहें कि तुलसीदास को कहें कि राम भक्ति को छानकर हम अलग कर देंगे, बाकी जो तुलसीदास में है उसे हम रखेंगे तो भईया तुलसीदास ही गायब हो जाएंगे। इसी तरह से आग्रह है जो हमारे यहां है, वह निज का है आप हमारी कविता पढ़कर हमें गालियां दीजिए लेकिन हम अपनी प्रतिबद्धता नहीं छोड़ेंगे। ये है कि प्रतिबद्धता समाज के लिए अनिवार्य है। यह मैं नहीं समझता; कुछ धोखेबाज लोग अपने को प्रतिबद्ध घोषित करते हैं। और वे प्रतिबद्ध हो और प्रतिबद्ध होने का मतलब है उसके लिए हम कभी जान देने के लिए भी तैयार होंगे। ये है प्रतिबद्धता। कोई फैशन नहीं। अगर आप से पूछे कि आप प्रतिबद्ध हैं तो मै कहता हूँ कि भई यह मेरा निजी सवाल है। मैं एक सवाल के जवाब में कुछ भी बोलना अच्छा ही चाहता हूँ। यद्यपि आपके सामने मैंने यह बात कही।

आशुतोष- बोलियों में साहित्य नहीं रची जा रही, यदि रची जा रही है तो नहीं के बराबर रची जा रही है ? तो उसका सही मूल्यांकन नहीं हो पा रहा है। और जैसे पढ़ीस जी हैं उनका उचित मूल्यांकन डॉ. रामविलास शर्मा के लिखने के बाद ही संभव हो सका।

त्रिलोचन- उनकी एक किताब छपी थी पहले ज्यादा मोटी नहीं थी । चकल्लस नाम था उसका । बाद में चकल्लस नाम से अखबार निकाला था। अमृतलाल नागर और कई लोगों की। तो चकल्लस नाम की पत्रिका थी। यह गंभीर थी व्यंग्यात्मक भी थी। वो देहात वालों को बुद्धू नहीं समझते थे, जैसे रमई काका, चन्द्रभूषण त्रिवेदी के। माने उन्होंने कविता लिखी है। 'धोखा हो गया', 'प्रियतमा' या उनके पेट की पीर, कविता है- मरीज है अस्पताल में भर्ती होने जाता है। तो वो जाता है तो डॉक्टर कहता है, खटिया नहीं है, तो डॉक्टर से कहता है मरीज कि कोई कोने में जगह दिखा दीजिए हम अपनी कमरी बिछा लेंगे उस पर सोये रहेंगे, तो इलाज कर दीजिए। तो, डॉक्टर कहता है खटिया भर्ती नहीं होता। तो किसी तरह से टोपी वालों (नेता) से लिखवाकर लाता है तो तुरंत खटिया भी खाली हो जाता है और भर्ती भी हो जाता है।

आशुतोष- कितना प्रहार किया है ?

त्रिलोचन- तो ये बौछार नाम के संस्करण से निकला है तो बौछार नाम अपने सुना है कि नहीं सुना है ?

आशुतोष- नहीं सुना है।

त्रिलोचन- तो बौछार को छपने में चौदह साल लगा था। तो मैं लखनऊ में अवधी कविता पढ़ने के लिए न जाने कैसे बुलाया गया था। पत्र-पत्रिकाओं में मैंने अवधी कविताएं छपवाई थी । खैर चन्द्रभूषण त्रिवेदी अपने घर ले गए और कहा यह घर मैंने जमीन सहित बौछार की आमदनी से खरीदा है। बौछार जो है, उसके तब तक दस संस्करण निकल गये थे। विज्ञापन कहीं दिये ? उन्होंने बताया बिना विज्ञापन के वे बिके। मेरे गांव में इसकी पांच प्रतियां तक बिकीं। तो, बौछार का संस्करण इतना बिका, लेकिन सवाल यह है कि लिखने वाला समझता हो, वातावरण की काफी समझ अच्छी हो और उसका रख रखाव अच्छा हो।

आधुनिक हिन्दी कविताएं, इतनी अधिक बिकी हैं यह तो मैंने नहीं देखी। लखनऊ में त्रिवेदी जी ने तीन बरस अन्दर दो मकान खड़ा कर किया। तो अब चन्द्रभूषण जी नहीं हैं, तो ये लोग

अवधी के अच्छे कवियों में आये। अवधी में ऐसे बहुत से अज्ञात कवि है। जिनका पता चले तो नई चीजें छपे। तो, लोगों को पता चलेगा कि वे कितने ऊँचे दर्जे के कवि हैं। तो, लेकिन सवाल यह है कि आलोचक समझता है कि आज आधुनिक हिन्दी में ही हिन्दी है; और ये जनपदीय भाषाओं को लिखने का अलग-अलग खाना बनाता है।

आशुतोष- आपने तो लिखा है, जनपदीय भाषा में ?

त्रिलोचन- वो तो लिखा है और दूसरी बात यह है कि मैं स्थानीय शब्दों का प्रयोग भी किया है। लेकिन केवल अवध में पूरा भारत मेरा घूमा हुआ है, जहां के शब्द मुझे अच्छे लगते हैं वहां का शब्द मैं प्रयोग करता हूँ। राजस्थान का शब्द दे देता हूँ, पंजाब का शब्द मेरे काम का लगा तो मैं दे देता हूँ। और मेरा यह कहना है कि कवि को पूरी राष्ट्रीय चेतना को अपने अन्दर रखना चाहिए, लेकिन जो राष्ट्र को संचालित करने वाले ही राष्ट्र को खा रहे हैं। तो, आपककी राष्ट्रभक्ति क्या कहेगी ? इसलिए राष्ट्रभक्ति की रचना आप कहें तो बहुत से लोग मौज से नहीं सुन पायेंगे।

आशुतोष- आपके प्रिय कवि और आलोचक कौन हैं ?

त्रिलोचन- जितने भी कवि हैं, मेरे प्रिय कवि हैं और जितने भी आलोचक हैं सब मेरे प्रिय आलोचक हैं।

आशुतोष- मार्क्सवादी कवियों में पाब्लो नेरूदा को लेते हैं। जुलियस जांसी भी हैं, ये लोग सीधे राजनीति से जुड़े हुए लोग हैं।

त्रिलोचन- जुलियस जांसी का गद्य काव्य है और उनकी एक ही तो किताब है "तख्ते पर शेख" जिसको यह नाम दिया है अमृतलाल नागर ने अपने अनुवाद में। और इस पुस्तक का कई लोगों ने अनुवाद किया है; तो बहरहाल जांसी ने कमरे में बन्द रहते हुए उन्होंने समय बचा के और आँख बचाके जो लिखा है, वह है। तो प्रतिबद्ध जुलियस जांसी था। अब उससे तुलना करता हूँ तो मैं कांप उठता हूँ, उसमें आत्मीय गुण था। यह प्रतिबद्धता होती है। पाब्लो नेरूदा का नाम लेते हैं, अंग्रेजी में अनुदित (अस्पष्ट ध्वनि), उन्होंने स्पेनिश में कविता किया है, तो वहां की शैली है जीने की। वह शैली अब बदल चुकी है। हमारे यहां चर्चा जब पुराना प्रतिष्ठित सम्मानित हो जाता है, तब उनके यहां धारा अब बदल गई है। इसी तरह से पालएन वार्ज हुए हैं फ्रांस के, लोर्का हुए हैं स्पेन में, खासे लोग मारे गए थे, ये गृह युद्ध वाले प्रकरण में। तो ये लोर्का तो छत्तीस साल की उम्र में ही बेचारे मारे गए थे, लेकिन बहुत तगड़े कवि हैं, स्पेनिश के, और कवियों का पता भाषाओं के भेद के कारण अनुवाद में पढ़कर लगाते हैं, सराहते नहीं। उन पर मुझे तरस आता है। कवियों को चाहिए कि अंग्रेजी के अलावा कोई और यूरोपीय भाषा भी जरूर सीखें और इसके अनुभव शक्ति और आस्वाद करने की शक्ति विकसित हो सके।

आशुतोष- आप तो दो-तीन भाषाएं जानते हैं।

त्रिलोचन- हां मैंने जब पढ़ा जब..।

आशुतोष - तो मेरा सवाल यह था कि पाब्लो नेरूदा सीधे राजनीति से जुड़े हुए आदमी थे, वे संघर्ष भी करते थे और कविता भी लिखते थे।

त्रिलोचन- और वह राजदूत होकर आपके भारत में भी रह चुके हैं मालूम है कि नहीं ?

आशुतोष- जी नहीं मालूम है।

त्रिलोचन - उन्होंने डायरी लिखी है जिसमें नेहरू की कटुतम आलोचना की है।

आशुतोष- तो सवाल यह था कि.....कि वे सीधे सड़क पर भी संघर्ष करते थे और कविता भी लिखते थे यह कहां तक सहायक कविता लिखने में ?

त्रिलोचन- लोर्का जो था वह संघर्ष भी किया और कविता भी करता था।

आशुतोष- जैसे माखनलाल चतुर्वेदी जेल भी गये, संघर्ष भी किया, कविताएं भी लिखीं, यह कहां तक तीखा बनाता है?

त्रिलोचन- वही प्रतिबद्धता थी माखनलाल चतुर्वेदी में और माखनलाल चतुर्वेदी बाद के उम्र में आजादी के बाद विक्षुब्ध कवि हुए। वे वैसी कविताएं लिख रहे थे, जैसे आम लोग लिख रहे थे। लेकिन फिर भी अंगद की भूमिका में गद्य में नहीं करते, लेकिन अंगद से उनका पेट भर गया। तो माखनलाल चतुर्वेदी नवीनतम पीढ़ी के साथ थे अन्त तक यह बहुत बड़ी बात थी इतना बड़ा विकास किसी एक आदमी ने नहीं किया।

आशुतोष- एक गीत सुनाइए!

त्रिलोचन- एक गीत सुनाएँ-

जला है जीवन यह आतप में दीर्घकाल;
सूखी भूमि, सूखे तरू, सूखे सिक्त आलवाल;
बन्द हुआ गुंज, धूलि-धूसर हो गये कुंज,
किन्तु पड़ी व्योम-उर बन्धु, नील मेंघ-माल।
निराला का गीत सुनाया।

आशुतोष- एक और सुना दीजिए त्रिलोचन जी ! चम्पा काले-काले अच्छर नहीं चीन्हती...

त्रिलोचन- एक और सुनाएँ... अच्छी बात है।

चंपा काले काले अच्छर नहीं चीन्हती
मैं जब पढ़ने लगता हूँ वह आ जाती है
खड़ी खड़ी चुपचाप सुना करती है
उसे बड़ा अचरज होता है:
इन काले चिन्हों से कैसे ये सब स्वर
निकला करते हैं।

चंपा सुन्दर की लड़की है
सुन्दर ग्वाला है: गायें भैसें रखता है
चंपा चौपायों को लेकर
चरवाही करने जाती है

चंपा अच्छी है, चंचल है
नटखट भी है
कभी कभी ऊधम भी करती है
कभी कभी वह कलम चुरा देती है
जैसे तैसे उसे ढूँढ़ कर जब लाता हूँ
पाता हूँ- कागज गायब
परेशान फिर हो जाता हूँ

चंपा कहती है:
तुम कागद ही गोदा करते हो दिन भर
क्या यह काम बहुत अच्छा है
यह सुनकर मैं हँस देता हूँ
फिर चंपा चुप हो जाती है

उस दिन चंपा आई मैंने कहा कि
चंपा, तुम भी पढ़ लो
हारे गाढ़े काम सरेगा
गांधी बाबा की इच्छा है-
सब जन पढ़ना लिखना सीखें
चंपा ने यह कहा कि
मैं तो नहीं पढ़ूँगी
तुम तो कहते थे गांधी बाबा अच्छे हैं
वे पढ़ने लिखने की कैसे बात कहेंगे
मैं तो नहीं पढ़ूँगी
मैंने कहा चंपा पढ़ लेना अच्छा है
ब्याह तुम्हारा होगा, तुम गौने जाओगी,
कुछ दिन बालम संग साथ रह चला जाएगा
जब कलका
बड़ी दूर है वह कलका
कैसे उसे संदेसा दोगी
कैसे उसके पत्र पढ़ोगी

चंपा पढ़ लेना अच्छा है!
चंपा बोली: तुम कितने झूठे हो, देखा,
मैं तो ब्याह कभी न करूँगी
और कहीं जो ब्याह हो गया
तो मैं अपने बालम को संग साथ रखूँगी
कलका में कभी न जाने दूँगी
कलको पर बजर गिरे।

(त्रिलोचन शास्त्री जी के कविता पाठ के बाद कुछ समय तक शांति छाई रही। इसी बीच आशुतोष की माता जी और लघु भ्राता कृष्णानन्द तिवारी भोजन की थालियाँ सजाने में लग गए। आमड़े के अचार को लेकर बातचीत शुरू हुई। त्रिलोचन जी ने कहना आरंभ किया...)

तो मैं आपसे कह रहा था कि तो इसे हमारे यहां आमड़ा बोलते हैं आमड़े का अचार। तो मैंने जब निशपत्र और आमड़ा खड़ा है कहा तो आपको अधिकार है कि आप अगर आमड़ा को आम समझते है। तो कहेंगे त्रिलोचन की ही आंखें देख सकती है निशपत्र और बौर लिए, निशपत्र और बौर एकदम उन्मुख आकाश की ओर लगता था कि जैसे आरती है। तो मैंने एक सानेट ही लिख दी है, तो मेरे आलोचक ने लिखा और पूछा कि आपकी क्या राय है, आलोचना पढ़कर। मेरे जेहन की बात नहीं आई तो मेरा यह कहना है कि अगर मुझे गलत समझा जा रहा है तो मैं क्यों सुधारूँ। मेरा यह काम नहीं है। मैं अगर अपनी कविताओं को खोलकर बताने लगूँ, तो मुझको अहंकारी कहना शुरू कर देंगे। क्योंकि मैं वह सारी बातें कहूँगा जो इशारे में हैं। ....तो लोग कहेंगे बड़ा मनचला है। तो मैं अपनी आलोचना लिखने से बचता हूँ और दूसरों की आलोचना लिखने में अपना कर्तव्य समझता हूँ। लोग मुझे लिखते हैं, उनको बातचीत में और कभी-कभी भेंट में, अनुवाद में। अज्ञेय की पहली आलोचना मेंरी ही है। युगांत जब छपा तो मैंने एक लेख दिया हंस में सन् 1946 में हंस में छपी।

आशुतोष- उस समय आप हंस का संपादन भी करते थे?

त्रिलोचन- संपादन भी कर रहे थे सन् 1946 में। तो मैंने हंस में दिया और कहा कि नाटकीय भंगिता जितनी अज्ञेय की कविताओं में है उतनी दूसरे में नहीं है। इससे ये अनुमान लगाया जा सकता है कि वे शायद नाटक लिखने में अच्छे नहीं थे। मैंने कहा कविता में नाटकीय भंगी आती तो अच्छा नाटककार होने की संभावना

कठिन हो जाती है। तो संभव है कि ये नाटक लिखें और सफल हो जाये तो ये अतिरिक्त उपलब्धि होगी। लेकिन नाटकीय भंगी का प्रयोग कविता में प्राणवा भर देती है। ये उनमें दूसरों की अपेक्षा अधिक है। मने दूसरे कवियों की रचना शैली में है, यानी वर्णनात्मक शैली में, वो भावात्मक नहीं है। इशारे में और बातचीत के लहजे में रचि गई है।

"किसने देखा चांद? -जिसने उसे न चीन्हा
एक अकेली आंख,
बंधी चिरन्तन आयासों से, खुली अजाने,
अनायास.....

तो यह भाषा शैली समझाती है। पढ़कर के कोई कविता आपको अच्छी लग सकती है। जब कोई दूसरा पूछेगा कि क्यों आपको अच्छी लगी ? तो तब आपको आलोचक बनना पड़ेगा। और आप अपनी अच्छी लगने का कारण बताइए। ताकि जिसे अच्छी नहीं लग रही है, जो समझ नहीं पा रहा हैं, उसे समझाएँ। तो दो बातों में खास बात है। अगर बादल घुमड़ते हैं और आप देखकर रह जाते हैं। बादल देखें और देखते रहें। किताब या तो कोई रोचक उपन्यास हो या बन्द करके रख दें। तब आप देखेंगे कि बादल की ये कविताएँ, ...कवि ने केवल काले-काले बादल ही लिख दिया है या कुछ और। तो बादल का रूप बड़ी कविताएँ हैं निराला की। तो निराला बादलों के कवि हैं। और मैदाओं के भी कवि हैं। इशारों की नई बहु की आंखें लिखते हैं। जो हरितिमा में बैठी वृहद बंद कर आंखें..

बहुत से मजदूर किसान ही रहे होगें लेकिन ये बात कहने की ताकत निराला में ही थी। तो यह नहीं कि निराला बड़ा नाम है; हम बड़ी कविता देखते हैं, बड़ा नाम नहीं देखते। और कविता में अगर कुछ नया आ जाये तो उसे कहते हैं। तो लेकिन कविता की ऊँचाई कहाँ आती है। आलोचक का यह काम है। रचनाकार रचना को उभार देता है और वह बर्हिमुख आलोचक हुआ। रचना में तो विफल रचनाकार होता है। अच्छा नहीं है। उसके लिए तो गद्य है सीधे आलोचना के लिए। लेकिन कभी-कभी कविता में भी इस तरह की बातें आती हैं कि कविता में ही कह देने की इच्छा होती है और आलोचना को अन्तर्मुखी बना देना होता है। जैसे "अमोला" नाम का मेरा एक संकलन है और छनद में लिखी गई है, बरवै छन्द में लिखी है। बरवै छन्द सत्ताइश सौ है।

आशुतोष- क्या यह प्रकाशित हो गया है अमोला.....

त्रिलोचन- प्रकाशित हो जाएगा दो-एक महीने में..... (साक्षात्कार लेने के समय तक अमोला संकलन प्रकाशनाधीन था।)

आशुतोष- अवधी में है न ?

त्रिलोचन- हाँ, अवधी में है।

यह तो आलोचना का सूत्र ही है, बरवै छन्द। रचना का इधर ध्यान न जाय, रचना ही उभरे तब रचना तेजस्वी होगी। तो वस्तुतः इतर लोग जो हैं तो वे समझें एक ऐसा वायुमण्डल बने, वातावरण बने। एक ऐसा संघ बन जाए जिसमें कविता को समझने वाले सराहने वाले हों। बिहारी ने कहा है एक दोहे में- "कर लै सूँघि, सराहि कै सबै रहे धरि मौन।" जो नहीं समझा उसका सराहना करना, और समझदार का चुप रहना, ये बेधता है रचनाकार को। समझ की खुराक मिला करे न कवि को तो कवि कविता में बहुत आगे बढ़ जाता है, और यह खुराक न आलोचक दे पाते हैं और न समवर्ती, उसके साथी। तो किसी कवि के न होने के उनके बहुत से संस्मरण आदि लिखे जाते हैं। तो बहुधा मैं ऐसे देखता हूँ, जैसे कमल के नीचे मेंढक वह कमल की सुगंध को क्या जानेगा। यद्यपि वह रहता है जल में और बिल्कुल साथ रहता है। तो भाई मेंढक कृत से निर्लिप्त भाव से कोई संस्मरण लिखा जा रहा है - कि भाई वो ये खाता है, ये खाता था, ये पहनता था, ऐसे रहता था, या वह शराब पीता था और किस तरह का यह सब भी है, तो लेकिन खास बात यह नहीं है। कोई आदमी मटर की रोटियाँ खा कर अगर अच्छी कविता लिख रहा है, तो यह जरूरी नहीं कि हर मटर की रोटियाँ खाने वाला अच्छा कवि होगा।

आशुतोष- इसका मूल्यांकन तो उसकी कविता पर होगा।

त्रिलोचन- हाँ, कविता पर होना चाहिए।

कविता का सारा वैभव जो भाषा पर है, और भाषा कवि अपनी ओर से अगर नया कहे, तो दो प्रतिशत से अधिक नया करने की इजाजत नहीं है। अगर वह पांच प्रतिशत कर देता है तो उसे विक्षुब्ध कहने लगेंगे। समझने में बाधा पड़ेगी। यह काम निराला ने किया है। निराला को पागल का नाम दिया गया। तो मेरा यह कहना है कि लोग अपने को समझदार मानकर कवि को पागल घोषित करते हैं। तो आज का जमाना इतना बदल गया है कि कवि को खुद पढ़ना पड़ता है। पढ़कर के आप दूसरे कवियों को प्रभाव में लेकर लिखे, तो आप कमजोर पड़ेंगे। आप अपनी आंखों का उपयोग करें, और चीजों को ऐसा देखें कि जान पड़े कि कोई नई बात है। मेरी एक छोटी सी कविता है "गर्मियों में" तो सुनकर लगेगा कि भौंहो को इन्द्रधनुष बना दिया कवि ने और मतलब भी यह है कि जो तेज है आजकल गर्मी है। धूप हो तो बना दिया कवि ने और मतलब भी यह है कि जो तेज है आजकल गर्मी है। धूप हो तो अगल-बगल देखने में असमर्थ होगें तो आप रास्ता में सर जरा झुकाकर चलते हैं। और मान लीजिए सुबह जाएँ

धूप में तो भौहों पर इन्द्रधनुष दिखेगा। इन बादलों में क्योंकि आंखें सजल रहती हैं, सूजी हैं, आर्द्र हैं, इसके कारण ये इन्द्रधनुष दिखता है। इन्द्रधनुष दिखना यानी सीधी राह अनुमान करके आगे बढ़ना। उल्लास बगल में न देखना। चिलग होने से तो गर्मियों में इन्द्रधनुष आकर भौहों पर टिका था, उसे मैंने बादलों को दे दिया। इन्द्रधनुष आकाश में ही भला लगता है। मने गर्मियों की तीव्रता में भला नहीं लगता। और जो भौहों में इन्द्रधनुष दिखता है वह इन्द्रधनुष आपको सताता है। आपकी दृष्टि शक्ति को भी बाधित करता है और गर्मी का वर्णन जब निराला करते हैं, तो स्वयं घूमें हैं गर्मी में। आप उस पर नेक सुरूचि दे उन्होंने लिखा है

"यह सान्ध्य समय है
प्रलय का दृश्य भरता"

तो भाषा के द्वारा इशारा में कवि क्या कह रहा है। इशारा जब समझ में आय तब कविता समझ में आती है। माने बता देने से। माने सुन के कविता की सुन्दरता तक आ पहुंचा यह नहीं हो सकता। कविता जब आपका प्राण मित्र बन जाय तब कविता आपकी अपनी हो गई। लिखा किसी ने हो। तब आप उस कविता में जीवन देने की शक्ति पायेंगे। और यदि कविता लिखने भी नया विचार आ रहा हो तो बहरहाल आपने आज का कवि जो आलोचक है। जब कवि देखा है कि उसकी कविता को जितना समझना चाहिए लोग उतना नहीं समझ पाये। वह नीरज जैसा भी कवि हो सकता है। कवियों की इतनी ही कोटियां होती हैं कि जितना कि आदमियों की अगर सभी आदमी कवि हो जाएँ तो जितनी आदमियों की कोटियाँ है, उतने स्तर के कवि होंगे। जैसे सड़कों पर लोग साहित्य बेचने वाले व्यक्तियों द्वारा रचे गये हैं।

> हम कहें कि तुलसीदास को कहें कि राम भक्ति को छानकर हम अलग कर देंगे, बाकी जो तुलसीदास में है उसे हम रखेंगे तो भईया तुलसीदास ही गायब हो जाएंगे। इसी तरह से आग्रह है जो हमारे यहां है, वह निज का है आप हमारी कविता पढ़कर हमें गालियां दीजिए लेकिन हम अपनी प्रतिबद्धता नहीं छोड़ेंगे। ये है कि प्रतिबद्धता समाज के लिए अनिवार्य है।

उनमें कविता नहीं है, मैं नहीं कह रहा हूँ। लेकिन वह कविता सबके लिए कविता हो यह नहीं है। भिखारी के नाटक हैं उसमें नई सूझ-बूझ है। भिखारी ठाकुर का नाम सुना है न।

आशुतोष- जी, हाँ।

त्रिलोचन- तो भिखारी में अश्लील व्यंजना भी है। अश्लील व्यंजना वह गांव का रहने वाला था। गांव में अश्लीलता की धारणा अलग है। वह वहां व्यंजना अश्लील नहीं है। नर के नारी के प्रति प्यार, तो नारी के नर के प्रति प्यार यह उसने लिखा है। लेकिन यह प्यार तो अश्लील नहीं है। इसी से मनुष्य जाति आगे बढ़ती है। इसी प्यार के अनन्त ... में... और पति पत्नी दोनों का प्यार केन्द्रित हो जाता है। शिशु पर और यह शिशु समाज का एक सदस्य होता है तो एक व्यक्ति समाज का पर्याय बनता है। देखा न आपने, तो कविता में खास बात यह है कि भाषा द्वारा क्या नया संस्कार दे रहा है या भाषा में अपनी ओर से क्या नयापन भर रहा है। वह भाषा के स्वरूप का रक्षक है। उसको बढ़ाने वाला है या और घसीटने वाला है। या पहेलीनुमा बना देने वाला है। कविता पहेली से ऊपर की चीज है। यद्यपि पहेलियां भी कविता में लिखी जाती हैं। है न - "एक थाल मोती भरा सबके सिर पर औंधा धरा। चारो ओर यह थाली हिले मगर उसमें से मोती एक न गिरे।" तो ये पहेली है।

आशुतोष- कविता पर जो आलोचना होती है वह है रचनात्मक क्षमता.....

त्रिलोचन- हाँ, तो मैंने आपको कहा कि कवि अन्तर्मुख आलोचक होता है, और आलोचक जो है, वह अन्तर्मुख कवि होता है। वही आलोचक है। काव्य की अनुभूति की प्रेरणा उसमें भी हो। तभी उसकी आलोचना काम की होगी। नहीं तो अध्यापक लोग अपने बच्चे को समझाते है। वही समझा कर आगे बढ़ जाते हैं या कहेंगे कि कितने सफल व्यक्ति हैं अमूक विषय में। और कैसे सफल हैं यह नहीं पता। तो एक आलोचना वह होती है जो आसान होती है और इस आलोचना का कभी-कभी संक्षिप्तता के ख्याल से डॉ. रामविलास शर्मा को भी करना पड़ता है। लेकिन असल में अच्छे आलोचक का काम यह नहीं है कि 'राष्ट्र भक्ति इतने ऊँचे भाव से व्यक्त की गई है'- यह आलोचक का काम नहीं है। वो पहले तो समझाए कि राष्ट्र क्या है, फिर राष्ट्र भक्ति क्या है, फिर उसकी व्यंजना क्या है। इतना कहे फिर इसके बाद बताये कि इस पंक्ति में यह बात क्या आती है।

आशुतोष- रचना की तुलना में समीक्षा का कार्य लोग द्वितीयक मान कर चलते हैं। और यह मानते हैं कि रचना हमेंशा आगे चलती है। आपके विचार से रचना के विकास में आलोचना की क्या भूमिका है?

त्रिलोचन- रचनाकार जो है, आलोचनाकार का वह मित्र है, जो पीठ ठोकता, प्यार से और कभी घूंसा मारता, दोनो करता है। आलोचक जो है वह कवि का जागरण नहीं है। वह भाषा और शेष पाठकों का प्रतिनिधि है। अगर यह नये पाठकों को नया संस्कार दे रहा है तो उस नये संस्कार को समझाना आलोचक का काम है। हो सके वह एक ही कवि की तारीफ भी करे और निंदा भी करे।

आशुतोष- जी !

त्रिलोचन- तो जहो निंदा करना है, तो वहां उसे चुकना नहीं है। जहां कवि घटिया स्तर पर जा रहा है, तो वहां उसे बताना होगा कि वह ऊँचाई छोड़ चुका है। और जहां ऊँचाई पकड़ता है तो कहना चाहिए कि यहां ऊँचाई है।

आशुतोष- अगर आप देखें तो कवि आलोचक से और आलोचक कवि से शिकायत करता है। क्या कारण है कि केदारनाथ अग्रवाल ने डॉ. कमला प्रसार को दिए एक इंटरव्यू में नामवर सिंह से शिकायत की है कि उन्होंने श्रीकांत वर्मा जैसे कवियों का मूल्यांकन तो किया है लेकिन उनके कविता पक्ष का मूल्यांकन नहीं किया है।

त्रिलोचन- केदार जी ने बहुत लिखा था और आलोचक को तो पहले पाठक होना पड़ेगा। और सारी किताबें इकट्ठा हो जाए और समय भी रहे। तो सीधी बात यह है कि किसी कवि को किसी आलोचक से यह शिकायत नहीं करनी चाहिए कि उसने उस पर नहीं लिखा। कम से कम मैं अपनी आदत बता रहा हूँ। अगर मेरा नाम बरसों लोगों ने नहीं लिया तो मैंने तो यह कविता तो लिखी है। "प्रगतिशील कवियों की नई लिस्ट निकली है। उसमें कहीं तो त्रिलोचन का तो नाम नहीं था, आंखें फाड़-फाड़ कर तो देखा।" तो प्रगतिशील आन्दोलन के आरम्भ करने वालों में मैं था। शरीक था। किन्तु नाम नहीं था। तो मैंने अपने ऊपर व्यंग्य करते हुए लिखा। लेकिन मैंने यह नहीं लिखा कि आशुतोष ने मुझ पर आलोचना नहीं लिखी। अरे ! आशुतोष को मेंरी कोई कविता न मिली होगी। या मान लीजिए दो-तीन कविताएं मिली होगी। और उन्होंने आलोचना के योग्य दो-तीन को पढ़ के भी नहीं आंका। तो, आशुतोष को इतना तो हमें आजादी देना होगा। अगर आशुतोष मुक्त प्रेम के समर्थक हैं और मैं उसका विरोधी तो मैं आशुतोष को आदमी मानने से इन्कार कर दूँ, यह कहां तक ठीक होगा। स्वतंत्रता का आदर करना ही मेरा मनुष्य होना है। और मनुष्य होने से और ऊँचा होना है, कवि को क्षमाशील भी होना चाहिए, क्योंकि कविता का फैसला आज के लोग जो दे रहे हैं तो यह तो देखा जाएगा। निराला की कविताओं पे कठोरतम प्रहार किया गया। और जिन कविताओं पर प्रहार हुआ वही कविताएं सराही गई बाद में, जुही की कली और तमाम कविताएं जो रूढ़िवादी आलोचकों द्वारा बहुत तिरस्कृत हुई हैं। उन कविताओं पे जो नये सिरे लिखे। कविताएं ज्यों की त्यों रही; यह क्या बात है। पीढ़ी बदलने के साथ-साथ निराला को नई पीढ़ी समझने में समर्थ हुई और होंगी भी। और पुरानी पीढ़ी जो पण्डितों की थी। दोनों को वह नहीं समझतें हैं, तो क्या विद्वता से कविता समझ में आती है ? .. ना। अगर जो भाव-धारा उनमें व्यक्त है, वो भावधारा भी यदि पाठक के अन्दर है तभी कविता समझ में आएगी। नहीं तो नहीं आएगी।

आशुतोष- जी ।

त्रिलोचन- तो सीधी बात यह है कि केदार ने भी बहुत लिखा है और वे कहते हैं श्रीकांत पर नामवर ने लिखा और मुझ पर नहीं लिखा तो क्या वे श्रीकांत वर्मा से पर पर सोचते हैं अथवा ऊँचाई पर। सवाल यह है कि कविता देखने के लिए फुरसत चाहिए। अगर आप बहुत व्यस्त हैं अध्ययन का कोई क्रम बना लिया है तो समय किसी अच्छे कवि को भी नहीं पा सकते। तो मेंरे अत्यंत परिचित लोग जो मुझसे बात करते थे और कहते थे कि मैं आप पर काम करने जा रहा हूँ, तो मैं कहता था कि मत जाइए। लोग कहेंगे कि कवि ने ही लिखाया है। क्योंकि आप मेंरे परिचित मण्डल में हैं। यह मेंरे लिए बहुत ही लज्जाजनक बात होगी। मैं इसे बर्दाश्त नहीं करूंगा। इसलिए आप को तो नहीं। एकाध जो मेंरी बात नहीं मान सके उन्होंने लिखा है, तो लिखने पर लोगों ने कहा कि त्रिलोचन को देखा-देखी खड़ा, लोग कर दिए। देखा-देखी खड़ा करते हैं- छानी को ऊँचा करना है। तो छानी को जैसे बहुत ऊँचा करना है तो टेका लगाकर उठाएंगे हाथ नहीं पहुंच रहा है। तो अगर त्रिलोचन को खड़ा कर दिया गया.... तो भई इससे त्रिलोचन को ऊँचाई नहीं मिलेगी। किसी कवि को भी नहीं मिलेगी। अगर आप अपने संसार में किसी कवि को ऊँचा उठा रहे हैं तो संसार में नई पीढ़ी जन्म ले रही है। उससे आपका परिचय जरूरी है। और यह जो नया आस्वाद है, इस नए आस्वाद को पहले आपको व्याख्यापूर्वक समझाना पड़ेगा। और बताना पड़ेगा कि पुरानी पीढ़ी से भिन्नता यहाँ है। यह जब आप सोचेंगे, तब आप आलोचक होंगे; तो आलोचकों से मेंरी कोई शिकायत नहीं है। कोई आलोचक मान लीजिए विजय गुप्त पर लिखता है तो मुझे भई क्यों आपत्ति है। किसी भी कवि की रचना होती है, तो मैं समझता हूँ कि कविता का सम्मान करने के लिए आलोचक लिख रहा है। तो कविता का सम्मान हो रहा है, तो मैं कहाँ असम्मानित

हो रहा हूँ। मैं भी सम्मानित हूँ, भले ही कहीं पर तो उसी से मेरा नाता है।

आशुतोष- समकालीन कविता और समकालीन आलोचना की अभी क्या स्थिति है ?

त्रिलोचन- समकालीन कविता में दो बातें आती है- मान लीजिए कोई कम उम्र का है, थोड़ी ऊँचाई, लेकिन नई उम्र के कवियों में एक बात हो सकती है। थोड़ी ताजगी है, अगर किसी अपने से बड़ी पीढ़ी वाले कवि की कविता नकल नहीं कर रहा है। तो मैं इस ताजगी का प्रशंसक हूँ। याद रखिए मैं जमकर इसकी प्रशंसा करता हूँ। तो ताजगी मेंरी जीवन शक्ति जो है, उस जीवन शक्ति को देखता हूँ, जो भाषा के द्वारा आई है। मेंरी जीवन शक्ति तूलिका और रेखाओं के सहारे चित्रकार देता है, तो चित्रकार के चित्र को समझने के लिए देशकाल का अवरोध नहीं है। भाषा अवरोध बनाती है। भाषा सीमित क्षेत्र में रहती है। अब जो आधुनिक हिन्दी में कविता लिखते हैं, उनको ये जानना होगा कि ये आधुनिक हिन्दी चौबीस घंटे की बोलचाल की भाषा कम लोगों में है, या नहीं है। तो इसमें कविता करना कठिन इस कारण है।

आशुतोष- समकालीन कविता की मुख्य चुनौती क्या है?

त्रिलोचन- सवाल यह है कि कविता का क्या जीवन से ताल्लुक है ? तो, मैं समझता हूँ कि है। तो जीवन के सामने चुनौतियां हैं, वही समकालीन बोधवाला जो कवि होगा, उसकी कविता में भी होगी और याद रखिए कि समकालीन चुनौतियों को सभी अच्छी तरह समझ जाएं कोई आवश्यक नहीं। तो समकालीन समस्याओं को और प्रश्नों को लेकर लिखी कविताएं, यदि विलंब से लोगों की समझ आती हैं और कम लोगों की समझ में आती हैं। तो भी कवि को अन्य कवि पर ध्यान दिया जाना चाहिए। और बहुत संभव हो कि तात्कालिक प्रश्नों की समझ ही न हो लोगों में। तो, वे कवि की लिखी चीज को भी असामयिक और अप्रासंगिक कह सकते है। यहां पर कवि को अपनी दृढ़ प्रकृति से, ऐसे ध्यान न देने वालों का सामना करना होगा।

आशुतोष- आपको लोग बड़ा कवि कहते हैं, आपकी क्या राय है ?

त्रिलोचन- अपने को बड़ा कहने की सोच तो कहते हैं- कि आप बड़े कवि हैं, लेकिन यदि कह देंगे तो अपने भीतर का जो सच है, वह आपका निजी है, वह सार्वजनिक सत्य न बनेगा। तब तक आपका मजाक बनाया जाएगा। है न ? इसलिए देखना यह है कि आप जो कह रहे हैं, उसे लोग मानते हैं कि नहीं। तो पहले आपकी कविता ही लोगों का सामना करे। आप उसमें वह अर्थ बनाने लगें जो आपने लिखा ही नहीं है, तो यह गलत है। आपने जो लिखा है, वह होना चाहिए। मेरा यह कहना है कि हमारे अन्दर जो संस्कार है, छंदों का न और जो भाषा की पहचान है। भाषा की सुन्दरता पहचानने की ताकत कम लोगों में होती है। हाँ, जैसे आप जब छोटे रहे होंगे तो कहानियाँ सुनने का शौक था न और कहानियाँ सुनाने वाले में आप ध्यान दीजिए तो जिसकी कहानियों से आप मुग्ध होते चलते थे। उसके कहानी कहने के ढंग की वजह से। वही कहानी चार मुखों से सुनते थे, तो वह प्रभाव नहीं पड़ता होगा, जितना एक विशेष से। और वह जब भी मिल जाता होगा तो आप उसके पीछे पड़ जाते होंगे कहानी सुनाओ-कहानी सुनाओ। चाहे उसकी मनःस्थिति जैसी हो। और फिर उससे कहानी सुनकर ही छोड़ते हैं। वहाँ भाषा सीखने की भी ललक है और कहानी भी सीखने की। जो है, कहानी के साथ चरित्र सीखने की। तो ऐसे ही कविता एकहरी नहीं है। ये कई परतें चलती रहती हैं। आज यह है कि लोग गद्य में कविता लिखेंगे और वह कविता जान पड़े इसलिए वे अनुप्रास दे देंगे। लय-वय नहीं है। ऐसी कविताएँ श्रीकांत वर्मा ने भी लिखी है और कई लोगों ने लिखी है। इन्होंने तो फ्री छन्दों का प्रयोग किया है, फ्रीव्हर्स कहिए। मुक्तिबोध में अनेक जगह वह छंद पूरी तरह मिलता है, तो पूरी मात्रा में देकर यह जरूरी नहीं है। लेकिन यह कि इन कविताओं में लयदारी है।

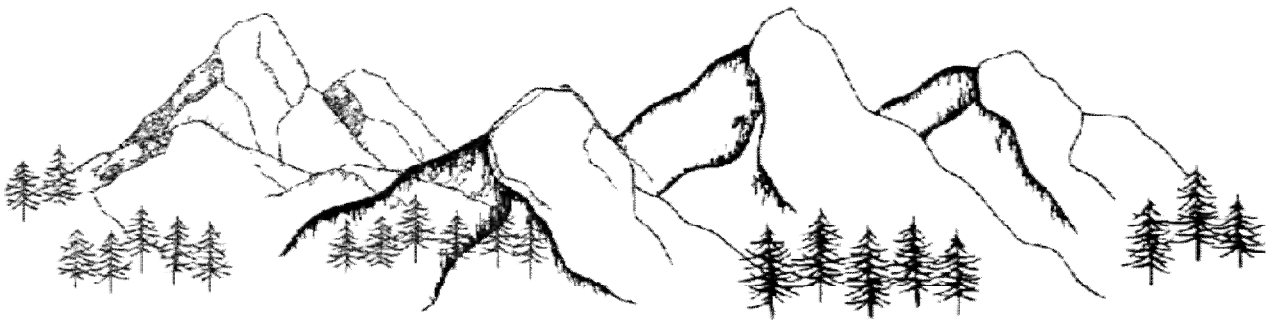

विशेष

हुए हम जिनके लिए बर्बाद

अल्पना सिंह

अल्पना सिंह युवा कथाकार हैं। हिन्दी साहित्य में उनकी विशेष रुचि है। वर्तमान में हिन्दी विभाग, एस. बी. डी. गर्ल्स कॉलेज, धामपुर, बिजनौर, उत्तर प्रदेश में सहायक प्राध्यापक के पद पर कार्यरत हैं।

उम्र गुज़रती जाती है लेकिन कुछ स्मृतियाँ शिद्दत से और भी गहरे रंगों के साथ मन पर तारी रहती हैं। बचपन में जहां रहती थी वहाँ आस-पास कोई बेहतरीन तो क्या, खराब कही जाने वाली भी किताब की दुकान नही हुआ करती थी। कहानी और उपन्यास तो बस हिंदी के कोर्स वाला ही सहज सुलभ होता था।

चूँकि बचपन एक महाविद्यालय के कैम्पस में बीता जहाँ एक चपरासी के दो लड़के थे। (अगर ठीक नाम याद आ रहा है तो चपरासी का नाम भगवती या भगौती था और लड़कों के नाम बल्लू और पोपू)। एक लड़का बिजली का मिस्त्री था और दूसरा अपने दो कमरे के सरकारी क्वार्टर के बाहर छोटी सी दुकान लगाता था। जहाँ वह किताब किराए से दिया करते थे। उनका किताबें रखने का तरीका भी अजब हुआ करता था। वह दो खम्भों से सुतली बाँध दिया करते थे और उसमें किताबें इस तरह आधी इधर और आधी उधर करके लटकाते थे जिस तरह कपडे सुखाने के लिए डाले जाते हैं। नागराज की सीरीज़ से लेकर डायजेस्ट तक, सुपर कमांडर ध्रुव, परमाणु डोगा के साथ ही सबसे विशेष चाचा चौधरी और साबू, पिंकी, बांकेलाल, मोटू-पतलू, राम-रहीम आदि तमाम पात्रों से दोस्ती का सिलसिला वहीं से शुरू हुआ। उनके पास कॉमिक्स का जखीरा होता था। डायमंड और राज कॉमिक्स का बोल बाला था। 25 पैसे से पतली कॉमिक्स, 50 पैसे किराए में थोड़ी मोटी और 1 से 2 रुपये किराए में डाइजेस्ट एक या दो दिन के लिए मिल जाती थी जो खत्म तो उसी दिन रात तक हो जाया करती थी। बिना स्मृतियों पर ज़ोर डाले साफ-साफ याद है कि उनके दर्जनों गत्ते के ढ़ेर में कोई ऐसी कॉमिक्स या किताब नहीं बची होगी जो हाथ से न गुज़री हो।

उनके पास सस्ता साहित्य भी शायद रहा हो लेकिन वो मुझे उनसे मिला नहीं। वह चस्का तो किसी और की संगत से लगा। जिसकी पूर्ति हमें रेलवे स्टेशन से बुक

स्टॉल से होती। रद्दी और भद्दे मोटे-मोटे पेज वाले लुगदी साहित्य रिवाल्वर, अब नहीं छोड़ूंगा तुम्हें, ये आग कब बुझेगी, वर्दी वाला गुंडा जैसे उपन्यासों के नाम के साथ ही हिन्द पॉकेट बुक्स आज तक ज़हन में हैं। दशकों बीत गए रानू, शानू, वेद प्रकाश, सुरेन्द्र मोहन पाठक, कुशवाहा कान्त, गुलशन नंदा आदि तमाम नाम है। आज भी याद है कि गोर्की का माँ किराए से लेकर पढ़ी, टॉलस्टॉय, डिकन्स ये सब किसी दूसरे दोस्त से लेकर पढ़ी थी तो काफ्का की अदालत एक तीसरे बहुत अच्छे दोस्त से लेकर पढ़ी थी। पुस्तक की अपनी प्रतियाँ तो जीवन के कुछ-कुछ पटरी पर आने के क्रम में बहुत बाद में इकट्ठी की गईं। क्योंकि अपनी प्रति के साथ होने से बढ़कर और सुख कहाँ है। पढ़ने की लत की बात चलती है तो जिन्दगी की तमाम छोटी बड़ी घटनाएँ एक-एक कर सामने आती चली जाती हैं। एक और किस्सा याद आता है। ये उन दिनों की बात है जब ट्रेन लेट होना कोई विशेष समस्या नहीं हुआ करती थी, ट्रेन के दो घंटे देरी से आने की सूचना घोषित होते-होते स्टेशन पर गहमा-गहमी ठंडी पड़ने लगती। मेरा यह समय बुक स्टाल पर किसी किताब/पत्रिका या अखबार के पन्ने पलटने में बीतता था। ट्रेन प्लेटफार्म पर लगने की सूचना से जहाँ बच्चे उछल कूद कर ख़ुशी मनाते और बड़ों की आँखे चौड़ी हो जाया करती। वहीं बुक स्टाल पर खड़े-खड़े मेरा तटस्थ मन अजीब उदासी से घिर जाता। अजीब सी मायूसी छा जाती।

> हिंदुस्तान अखबार में हफ्ते में एक बार आने वाली टिप्पणी ने खुशवंत सिंह से, दैनिक जागरण ने इमरजेंसी के दिनों का तथ्यात्मक वर्णन से कुलदीप नैयर, हंस के शब्दबेधी शब्दभेदी कॉलम ने तसलीमा नसरीन से बहुत कम उम्र में ही परिचय करा दिया। इन सबकी ट्रेन टू पाकिस्तान, दिल्ली, लज्जा, उत्ताल हवा, मेरा बचपन आदि तो बहुत बाद में पढ़ा। अपना चाहा हुआ कौन पाता है। अगर किसी को चाहा हुआ मिलता भी है तो बहुत ही अनचाहे तरीके से ही मिलता है।

जीवन में बहुत कुछ विलोम ही रहा। लोगों के आगे बढ़ने का क्रम बहुधा नीचे से ऊपर की ओर अग्रसर होता देखा जाता है। मेरे साथ यह उलटा रहा। इसी क्रम में लखीमपुर खीरी से सीतापुर आना-जाना रोजमर्रा का नियम सा बन गया था। उन्हीं दिनों जीवन में पहली बार जाना कि एम.एस.टी. क्या होती है? और इसका क्या महत्व होता है। बड़ा विस्मय सा हुआ था यह जान कर कि ऐसा भी कुछ सम्भव है कि एक ही बार में महीने भर के टिकट का इंतजाम किया जा सकता है, वह भी आने-जाने, मतलब दोनों तरफ का। मतलब रोज लाइन में लग कर धक्के नहीं खाना, मतलब रोज की 'टूटे पैसे नहीं हैं' की किल्लत से बचना। यह भी एक सुख था। अब सोचती हूँ तो लगता है कि तब सुख की परिभाषा कितनी अलग हुआ करती थी।

ऐसे ही ट्रेन लेट होने के किसी दिन सीतापुर स्टेशन के बुक स्टाल पर किसी पत्रिका के विशेषांक के पन्ने पलटते हुएनजर सामने पड़ी। मैं चौंक गयी, रद्दी कागज पर छपा सस्ता साहित्य, जो मोटे-मोटे ग्रन्थ की दिखता था और जिससे बुक स्टाल भरे रहते थे (छोटे स्टेशन पर आज भी होते हैं) वहीं विश्व साहित्य के कोने में डी.एच.लॉरेंस का 'लेडी चैटर्ली का प्रेमी' रखी थी। हिंदी में यह शीर्षक देख विस्मय और भी बढ़ गया। चूँकि लखनऊ विश्वविद्यालय में एम् फिल करने के दौरान मनोवैज्ञानिक अध्ययन के संदर्भ में प्रो. एस.डी. मिश्रा सर के मुंह से इसका नाम बार-बार सुना था। अपनी कक्षाओं में उन्होंने अन्य विषय और विषयेतर किताबों के साथ कुछ उपन्यास, कहानियां, कविताएं भी विद्यार्थियों को पढ़ने के लिए सुझाई थीं। तब उनके मुंह से टॉलस्टॉय की वॉर एंड पीस, डी.एच.लोरेंस की लेडी चैटर्लीज़ लवर, संस एंड लवर्स जैसे अनगिनत नाम सुन कर लगा था कि यह सब तो अंग्रेजी में ही होगा, जो पढ़ने के लिए तो पढ़ जाऊँगी पर मूल आत्मा तो क्या ही समझ आएगी। फिर ऊपर से हज़ार समस्याएं और कि ये मिलेगी कहाँ ? कितने की मिलेगी ? उस समय तो इतने पैसे भी नहीं हुआ करते थे। वैसे भी जीवन में हमें जब जो चाहिए तब वो नहीं मिलता और जब मिलता है तब तक चित्र बहुत कुछ बदल चुके होते हैं।

चूँकि रोज़-रोज़ आते-जाते मेरा बहुत समय स्टेशन के बुक स्टॉल पर ही बीतता था। इसलिए बुक सेलर जो कुछ उम्रदराज़ थे, से अच्छी पहचान हो गयी थी। मेरा रोज पत्रिकाओं का उलटना-पलटना, किताबों को उठा, उलट-पलट कर रख देना.., यह सब हरकते सहने की उन्हें आदत हो गयी थी। हिंदी में 'लेडी चैटर्लीज़ लवर' लिखा देखते ही बिना समय गंवाएं उनसे पुस्तक उतारने के लिए कहा। उन्होंने अलमारी से पुस्तक उठाये बिना ही गंभीर लहजे में बता दिया कि ये किताब महंगी है। उन दिनों मैं खरीदती कम और पढ़ती ज्यादा थी। वो यह जानते थे कि मै किताब उलट पलट कर वापस कर दूंगी। लेकिन उस समय तो पुस्तक को तत्काल हाथ में लेने की मेरी बेचैनी बढ़ती जा रही थी। उन्होंने कहा की अगर लेना होगा तभी किताब उतारेंगे। उस समय तो मुझे लगा की यह ब्रह्माण्ड की अंतिम प्रति है और अगर आज यह न

मिली तो फिर कभी नहीं मिलेगी। इसलिए यह कितनी भी महंगी हो तुरंत ले ली जानी चाहिए चाहे इसके लिए कुछ सिद्धांतो की बलि भी चढ़ानी पड़े तो भी सौदा महंगा नहीं होगा। (काशीनाथ ने काशी का अस्सी में कहीं पर लिखा है कि- सिद्धांत सोने का गहना है, रोज़-रोज पहनने की चीज़ नहीं। शादी-ब्याह, तीज-त्यौहार में पहन लिया बस। सिद्धांत कि बात साल में एक-आध बार कर ली, कर ली। बाक़ी अपनी पोलिटिक्स करो।') मैंने सोचा दुर्लभ चीज के लिए साथ की लड़कियों से कुछ उधार लिया जा सकता है और लिया भी। बात यहाँ खत्म नहीं हुई।

बुक सेलर से कह दिया- 'लेकर ही जाउंगी।' उन्होंने किताब उतारने से पहले झट से एक पुराना अख़बार उठाया और बाज़ की गति से पुस्तक उतार कर उसमें लपेटकर मुझे पकड़ा दी। किताब इस तरह प्राप्त करने का यह पहला अनुभव था। मैंने ज्यों ही खोलने का उपक्रम किया उन्होंने अपनत्व से बरज़ दिया। अपने आपको व्यस्त सा दिखाते और नज़रे चुराते हुए कहा की 'ट्रेन आ रही होगी, घर जाकर पढ़ना।' आज भी वह पूरा घटनाक्रम आँखों के सामने है। एक कॉलेज यूनिफ़ॉर्म पहने भीड़ के बीच से निकल कर, धक्के खाकर आती साधारण सी लड़की को चैटर्लीज़ देना उन्हें बहुत अच्छा नहीं लगा। यह तो पढ़ने के बाद पता चला कि यह उपन्यास अश्लील साहित्य में आता है जिस पर कुछ समय के लिए प्रतिबंध भी था।

यह प्रसंग आते ही एक और घटना याद आती है। आदिवासी विमर्श की चर्चा नई-नई चल निकली थी। शोध भले ही पूरा हो गया था पर रिसर्च पेपर जैसा कुछ लिखना ठीक तरह से समझ नहीं आया था (ये अलग बात है कि नियम और शर्तों के तहत तो अब भी लिखना नहीं आया)। लखनऊ के किसी मित्र ने आदिवासी उपन्यासों पर कुछ लिखने के लिए कहा। चूँकि शहर में साहित्यिक पत्रिकाओं और नई किताबों की कोई अच्छी व्यवस्था न होने से बहुत कुछ समय-बेसमय उपलब्ध नहीं हो पाता था। लखीमपुर स्टेशन पर जो बुक स्टॉल था वहां कभी-कभी एक अंकल बैठते कभी-कभी उनका लड़का। तो जिस दिन अंकल बैठते उस दिन मेरा बहुत समय वहाँ बीतता क्योंकि अन्य दिनों में दूकान जाने से भी साथ की लड़कियां कनखियों से देखने लगती थीं। उन्हीं दिनों कथाक्रम का आदिवासी विशेषांक आया था। मूल्य शायद 50 रूपये था (स्मृति से)। ठीक से याद है कि उस दिन मेरे बैग में मात्र 18 रूपये थे। चूँकि टिकट की चिंता नहीं थी एम.एस.टी. सभी के पास थी। अब चूँकि पुस्तकों के मामले में मैंने भी सिद्धांतो को सोने का गहना मान कर तिजोरी में रख दिया था इसलिए फिर से साथ जाने वाली लड़कियों से उधार स्वरूप चंदा इकट्ठा किया और वह विशेषांक लेकर गर्व से वीर भारत तलवार का मीणा से साक्षात्कार और रोहिणी अग्रवाल का दिकू समाज और आदिवासी पढ़ते हुए सीतापुर गयी।

हिंदुस्तान अखबार में हफ्ते में एक बार आने वाली टिप्पणी ने खुशवंत सिंह से, दैनिक जागरण ने इमरजेंसी के दिनों का तथ्यात्मक वर्णन से कुलदीप नैयर, हंस के शब्दबेधी शब्दभेदी कॉलम ने तसलीमा नसरीन से बहुत कम उम्र में ही परिचय करा दिया। इन सबकी ट्रेन टू पाकिस्तान, दिल्ली, लज्जा, उत्ताल हवा, मेरा बचपन आदि तो बहुत बाद में पढ़ा। अपना चाहा हुआ कौन पाता है। अगर किसी को चाहा हुआ मिलता भी है तो बहुत ही अनचाहे तरीके से ही मिलता है।

कहीं पढ़ा था कि किताबें आदमी को बर्बाद करके छोडती हैं। मैं बर्बाद हुई या कि आबाद, इसका तो पता नहीं, जो भी हुई बेहतर ही हुई।

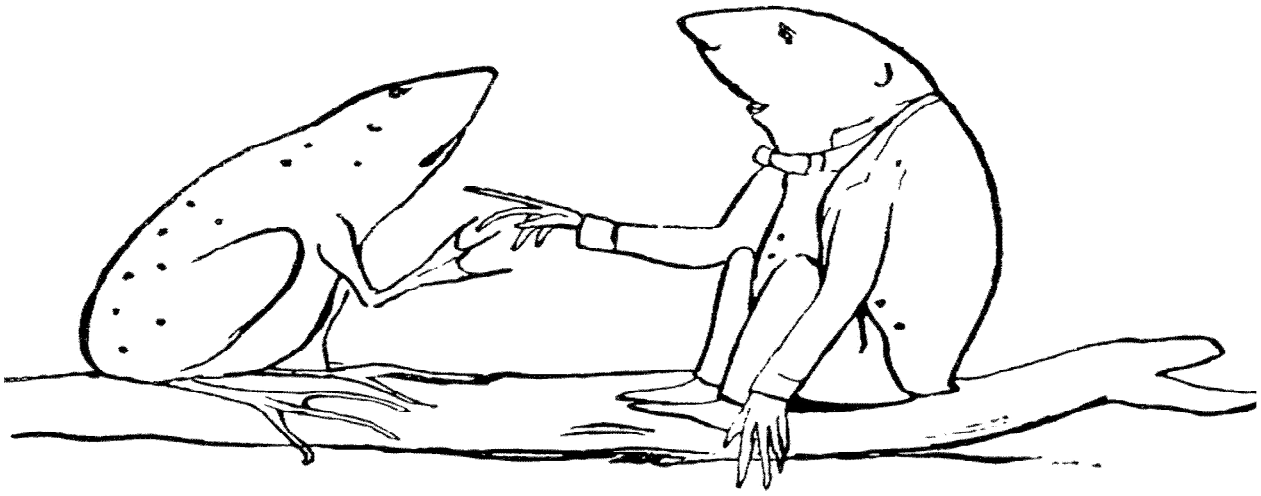

कहानियाँ

महामारी में बुधिराम

महेश सिंह

को रोना महामारी की भयावहता का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि यमलोक में भी लॉकडाउन लगा दिया गया था। इसकी सूचना स्वयं धर्मराज ने आठ बजे शाम वाले अपने लोकप्रिय कार्यक्रम 'यमलोक के नाम धर्मराज का संदेश' में लाइव आकर में दिया था। इसके बाद 'मृत शरीर की आत्माओं को यमलोक में आने से पहले मृत्युलोक में ही चौदह दिन तक क्वारंटीन में रखने का फरमान जारी कर दिया गया। इसके लिए बाकायदा धरती पर व्यवस्था की गई थी। पीपल और बरगद जैसे बड़े दरख्तों को क्वारंटीन सेंटर बनाया गया था। प्रत्येक सेंटरों पर खाए-अघाए यमदूतों की ड्यूटी लगा दी गई थी। यमराज और यमदूतों को मास्क लगाने के साथ-साथ सोशल डिस्टेंसिंग का पालन करना भी अनिवार्य था। अब वे पहले की तरह मृत शरीर से आत्माओं को बाँह पकड़कर, खींचकर या टांगकर कर नहीं ले जा सकते थे। ऐसी परिस्थिति में उनके सामने एक बड़ा संकट यह था कि कुछ बदमाश आत्माएं यमदूतों की आँखों में धूल झोंककर क्वारंटीन सेंटरों से फरार हो जातीं। कुछ ऐसी भी आत्माएं थीं जो शरीर तो जैसे-तैसे छोड़ देती थीं लेकिन मोह माया की जाल में वे ऐसे फँसी थीं कि उन्हें विस्वासे नहीं हो रहा था कि यह लोक उनका नहीं रहा। कोई माँ के मोह में था तो कोई पिता, पति, पत्नी और बेटा-बेटी आदि के। छः फीट की दूरी का चक्कर ऐसा था कि यमराज और दूत उन्हें छू भी नहीं सकते थे। नतीजतन ऐसी आत्माएं शरीर छोड़ने के बाद सीधे अपने घर-आँगन के दरख्त की डाल पर जाकर उकड़ू बैठ जाती थीं। कुल मिलाकर स्थिति यह थी कि यमराज और साथी यमदूतों का सिस्टम चोक ले लिया था। स्ला सिस्टम है ही ऐसा, जरूरत पड़ने पर ठीक से कामें नहीं करता है। अब खुदे देख लीजिये, यहाँ की सरकार का सिस्टम भी तो चोके लिया हुआ है। प्रधानमंत्री ऐसे थोड़ी बोल रहे थे कि – 'सिस्टम ढंग से काम नहीं कर रहा है।'

महेश सिंह हिन्दी के युवा कथाकार हैं। वर्तमान में झारखंड राज्य के गिरिडीह में अध्यापन कार्य में संलग्न हैं।

गंगा में बहती लाशों में एक देह बुधिराम की भी थी। आधी रात को जब उसे गंगा की की मजधार में फेका गया, वह मरा नहीं था। उसका जीव अभी भी उसके शरीर में था। वह बुधिराम की देह को कतई छोड़ना नहीं चाहता था लेकिन करे तो क्या करे ! पानी में डूबने से दम घुटा जा रहा था। यदि उसका देह नहीं छोड़ता तो उसका भी दाह संस्कार यहीं पर हो जाता। वैसे दाह संस्कार क्या होता ऐसी हालत में ! सच तो यह था कि बुधिराम की देह की तरह वह भी कहीं सड़ने-गलने लगता। इससे भी अगर बच जाता तो यह होता कि – गंगा किनारे हगने गया कोई तुच्छ प्राणी उसे देख लेता और नगर-पालिका वालों को सूचित करके अपनी जिम्मेदारियों से निवृत हो लेता। नगर पालिका वालों से भी बुधिराम के जीव को बहुत उम्मीद नहीं थी। वे भी ज्यादा से ज्यादा उसकी देह को पानी से निकाल कर रेत में धंसा देते। इन्ही सब दुर्दशाओं के चलते उसने बुधिराम के शरीर को छोड़ने में ही अपनी भलाई समझी।

देह छोड़ने के बाद बुधिराम का जीव गंगा किनारे जाकर रेत पर बैठ गया और बुधिराम की देह को तबतक देखता रहा जब तक वह गंगा की धारा में बहते हुए उसकी आँखों से ओझल न हो गई।

सहसा एक आवाज आई – "का बे... कैसी आत्मा हो तुम...? तुमको तो उसका देहिये छोड़ने का मन नहीं कर रहा था।"

बुधिराम के जीव ने उस आवाज की तरफ बैठे-बैठे ही अपना रुख किया- सामने देखा तो एक यमदूत कमर पर दोनों हाथ लगाये, थोड़ा झुककर हांफे जा रहा था।

"साला तुम्हारे चक्कर में न... मेरी फट के हाथ में आ गई है... पचास किलोमीटर से दौड़ता भागता आ रहा हूँ।"-यमदूत उसी अवस्था में हांफते हुए आपनी बात पूरी किया।

"अरे महराज...! तो इसमें मेरा क्या कसूर है ?"- बुधिराम ने अपना पक्ष रखा।

"नहीं रे... तेरा कोई कसूर नहीं है... सारा कसूर तो मेरा है जो मैं यमराज की बातों में आ गया। कह रहे थे- 'इस देश में 'स्वच्छ भारत अभियान' चल रहा है।' जबकि सच्चाई यह है कि गंगा किनारे हगने वालों में कोई कमी नहीं आई है। नाली-नाबदान और फेक्टरियों के गंदे पानी की तो बात ही छोड़ दो।

"अरे हाँ महराज, सही कह रहे हैं... आपकी धोतिया तो एकदम्मे लथरा गई है... किसी नाले में गिर गए थे क्या? जाईये गंगा में डूबकी लगालीजिये।"- बुधिराम खड़ा होते हुए यमदूत से थोड़ा चुहल करना चाहा।

"चुप स्ला... ढेर मत बोल नहीं तो यहीं पटक के पाहिले थुरेंगे फिर लेके जायेंगे... गंगा अब नहाने लायक बची है !"- यमदूत गुस्से में आ गया।

"गुस्सा मत होइए महराज... मैं तो ऐसे ही बोल दिया।"- बुधिराम क्षमा याचना की मुद्रा में आ गया।

"अब क्या ही कहूँ तुम्हे... सामने तुम्ही हो इसलिए सारा गुस्सा तुमपर निकाल रहा है, नहीं तो मेंरी नाराजगी का असल कारण तो यहाँ की व्यवस्था है। पता नहीं तुम लोग कैसे बर्दास्त कर लेते हो। स्वर्ग में अगर थोड़ी भी अव्यवस्था हुई तो सभी देवता धरने पर बैठ जाते हैं और धर्मराज की कुर्सी डगमगा जाती है। समझ लो वहाँ जबरदस्त लोकतंत्र है अपने हक के लिए सभी मिलजुल कर आवाज उठाते हैं। हमारी एकता में इतनी ताकत है कि धर्मराज को हमलोगों की बात सुननी ही पड़ती है। मुझे तो बड़ी हँसी आती है तुम लोगों को देखकर पता नहीं किस बेशर्मी से अपने देश को दुनियां का सबसे बड़ा लोकतान्त्रिक देश बताते हो। पिछले एक साल से देख रहा हूँ कि किसान अपनी मांगों को लेकर धरने पर बैठे हैं, लेकिन यहाँ उनकी कोई सुनने वाला नहीं है।

"स्वर्ग तो स्वर्ग है महराज... वहाँ की तुलना यहाँ से करना कहीं से भी उचित नहीं है। 'जमीन-आसमान का अंतर होना' ऐसे ही मुहाबरा थोड़ी बना होगा।" -बुधिराम अपने आपको बड़ा ही दीन-हीन अवस्था में पाते हुए बोला।

"अरे नहीं... ऐसा कुछ भी नहीं है... तुम लोग आपस में इतने बंटे हुए हो कि तुम्हारा कोई भला कर ही नहीं सकता।" - यमदूत अब सहज होकर बुधिराम से बात कर रहा था।

"पता नहीं महराज मुझे स्वर्ग मिलेगा कि नरक, अब तो वहाँ जाने के बाद ही पता चलेगा। लेकिन मेंरी दिली इच्छा है कि एक स्वर्ग का दर्शन जरुर करूँ। क्या आप मुझे एक बार स्वर्ग में ले जाकर घुमा देंगे ? आप चाहें तो मेरा खाता-बही चेक कर लीजिये, जीवन में मैंने कभी कोई बुरा काम नहीं किया।"- बुधिराम ने यमदूत से यह बात बड़ी विनम्रतापूर्वक कही।

"पगला गए हो का बे... का लगता है तुम्हे... इस कोरोना काल में कोई तुम्हे स्वर्ग में घुसने देगा... अभी तो तुम्हे यहीं चौदह दिन क्वारंटीन में रहना पड़ेगा।"- यमदूत थोड़ा तुनकमिजाज किस्म का था इसलिए आवेश में आकर बोला।

"क्या...! मरने के बाद भी क्वारंटीन !"

"क्या लगता है तुमको... हुंह कोरोना से खाली धरतिये त्रस्त है ? तीनों लोक-चौदहो भुवन, सबकी माँ-बहन एक कर रखी है कोरोना ने।"

"का कह रहे हैं महराज !"

"हाँ बे, तुम्हारे यहाँ तो फिर भी ठीक है- यहाँ वैक्सीन है, इंटरनेट है और तमाम तरह के सोशल प्लेटफ़ॉर्म हैं; यह सब अपने आप में ही बड़ी राहत वाली बात है। ऑनलाइन ही सही, लोग एक दूसरे से बोल-बतिया तो रहे हैं न।"

बुधिराम आश्चर्यजनक तरीके से यमदूत की बातें सुन रहा था। यमदूत इधर-उधर अपनी नजर दौड़ाया और धीमी आवाज में बुधिराम से बोला – "सच बताऊँ तो जबसे वहाँ लॉकडाउन लगा है सभी देवता फ्रस्टेशन में जी रहे हैं। सभी अप्सराएँ अपने-अपने घरों में कैद हैं और किसी को भी एक-दूसरे से मिलने की सख्त मनाही है। यहाँ की तरह नहीं है... वहाँ छह फिट की दूरी यानि कि सोशल डिस्टेंसिंग का पालन करना सभी के लिए अनिवार्य है। ऐसे में जानते हो, साल भर से सभी देवता वासना की अग्नि में झुलस रहे हैं।"

यह सुनकर बुधिराम की दोनों आखें आश्चर्य से बाहर निकल आयीं। सोचने लगा –'स्वर्ग में रासलीला... कमाल है'।

"चल भाई बुधिराम, क्वारंटीन सेंटर चलते हैं... वैसे ही बहुत देर हो चुकी है... और देर हुई तो यमराज नाराज होंगे।"- यमदूत आगे-आगे चलने लगा और बुधिराम पीछे-पीछे।

पैदल चलता देख बुधिराम यमदूत से बोला – "महराज आप लोग तो रथ-वोथ लेकर आते हैं न ? पैदल काहें चल रहे हैं ?"

"भाई हमको भी तकलीफ हो रही है... लेकिन क्या करूँ ! इस लॉकडाउन में खाली तुम्हारा ही वाहन नहीं बंद हुआ है। हमारे रथ को भी कहीं लेकर आने-जाने में भी प्रतिबन्ध लगा हुआ है।"

इस तरह बात-चीत करते हुए दोनों एक लम्बी यात्रा के बाद क्वारंटीन सेंटर पहुँचे। बुधिराम के गाँव के बगल में ही एक सरकारी इंटर कॉलेज था। जिसके प्रांगण में एक बड़ा भारी पुराना बरगद का पेड़ है। उसे ही आत्माओं के लिए क्वारंटीन सेंटर बना दिया गया था। इस समय तक़रीबन पैंतीस आत्माएं वहाँ क्वारंटीन थीं। जिनमें से कुछ आराम से उस डाली पर सो रही थीं जो उन्हें अलाट किया गया था, तो कुछ उकडू बैठी किसी विचार में उलझी हुई लग रहीं थीं। कुछ लौंडे टाईप की आत्माएं भी थीं जो इस डाल से उस डाल पर बंदरों की तरह उछल-कूद कर रही थीं। इनमें से अधिकतर को बुधिराम पहचान रहा था। असल में आठ-दस गाँवों के बीच में इस तरह के दो-दो सेंटर बनाये गये थे, एक महिलाओं के लिए और एक पुरुषों के लिए। यह सेंटर केवल पुरुषों के लिए था। बुधिराम को भी थोड़ी बहुत कागजी कार्यवाही के बाद एक डाल पर भेज दिया गया। इसी डाल पर उसे क्वारंटीन के चौदह दिन काटने थे।

सेंटर की निगरानी हेतु कुल सात यमदूत ड्यूटी पर लगाये गए थे। जिनमें से तीन को रोस्टर के हिसाब से यहीं रहकर आत्माओं की देख-भाल करना था। बाकी के चार में से दो को फिल्ड में रहकर मृत आत्माओं को पकड़कर लाना था। बचे हुए दो की जिम्मेदारी यह थी कि जिस आत्मा का चौदह दिन पूरा हो जाता उसे यमलोक पहुँचाना होता। कुल मिलाकर बड़ी दुरुस्त व्यवस्था की गई थी।

> मईया के माथे पर चिंता की रेखायें उभर आयीं। लेकिन पता नहीं क्यों, मुझे लगा कि वे हम लोगों को डराने की कोशिश कर रहे हैं। जानते हैं महराज, बाबा के मन में भी था कि बैनामा कर दें लेकिन रजिस्ट्रार साहब बाबा के परिचित थे, उन्होंने ही सुझाव दिया कि 'रजिस्टर्ड वसीयत करा लो कम पैसे में हो जायेगा और काम भी पक्का रहेगा।' उस समय मेरे परिवार की माली हालत बहुत खराब थी इसलिए उनकी बात हमें जंच गई।

बुधिराम की पहली रात तो बड़ी आसानी से कट गयी। क्योंकि उसे यही पता था कि – 'इंसान मरने के बाद अपने तमाम दुखों से मुक्त हो जाता है। बचपन में उसकी माँ भी कहा करती थी- 'धरती पर मानुष के जनम दुख भोगे खतिर ही होत है।' इसलिए वह अपनी मृत्यु के बाद से ही इस मुगालते में था कि -अब तो उसके सभी दुखों का अंत हो चुका है। यह सही भी था क्योंकि उसके मन में अभी तक किसी प्रकार से मोह-माया, धन-दौलत, अमीरी-गरीबी, जाति-पांत, ऊंच-नीच और धर्म-कर्म आदि का ख्याल नहीं आया था। उसने यही महसूस किया कि वह अब पूरी तरह स्वछंद है।

क्वारन्टीन सेंटर पर आने के बाद उसकी पहली सुबह हुई। उठा तो सबसे पहले स्कूल में चारो तरफ अपनी नजर दौड़ाई। एक यमदूत कुर्सी पर बैठे- बैठे ऊंघ रहा था। बाकी के दो इधर -उधर टहल रहे थे। एक दो आत्माओं को छोड़कर सभी सो रहीं थीं। स्कूल पूरी तरह सुनसान था। अचानक उसकी नजर स्कूल के एक कमरे पर जाकर ठहर गयी। एक टक देखने के बाद उठा और बरगद के पेड़ से उतरकर कमरे की तरफ चल पड़ा।

उसे पेड़ से उतरकर जाते देख एक यमदूत चिल्लाते हुए उसकी तरफ भागा- "अरे... अरे... कहाँ जा रहे हो तुम.? तुम्हे पता नहीं है क्या कि अपनी डाल छोड़कर कहीं जाने की अनुमति नहीं है... चलो, जाओ.. अपनी डाल पर जाकर बैठो।"

"महाराज, दसवीं की पढ़ाई मैंने इसी स्कूल से की है... देखिये, यह जो कमरा है न... इसमें कक्षा दस की क्लास चलती थी।"

"नहीं-नहीं.... मुझे कुछ नहीं देखना...चलो जाओ...अपनी डाल पर जाओ।" - यमदूत पूरी गंभीरता के साथ बोला।

इतने में कुर्सी पर बैठा ऊंघ रहा यमदूत पूरी मुस्तैदी के साथ चिल्लाया- "एक बार कहने पर तुम्हे सुनाई नहीं देता... जाओ... अपनी डाल पर वापस जाकर बैठो... किसी को भी अपनी जगह छोड़कर नहीं जाना है।"

"महाराज, मेंरी बात सुनिए न... बस एक बार मुझे अपने स्कूल को देख लेने दीजिये... आखिर तो मुझे यहाँ से हमेंशा के लिए चले ही जाना है।"- बुधिराम ने यमदूत से हाथ जोड़कर विनती की।

यमदूत को उसकी बात सुनकर यकीन हुआ कि वह बदमाश और भागने वाली आत्मा नहीं है। इसलिए इस शर्त पर स्कूल देखने की इजाजत दे दी कि- स्कूल के बाउंड्री के बाहर नहीं निकलना है।

कुर्सी पर बैठा यमदूत यह देखकर थोड़ा सा कुनमुनाया लेकिन अपने साथी के इशारा करने पर शांत होकर फिर से ऊँघने लगा।

बुधिराम स्कूल के एक-एक कमरे में जाकर मुआयना करने लगा। कमरों की हालत बड़ी जर्जर थी। छात्रों के बैठने वाले बेंच और टेबल टूटे पड़े थे। बहुतों में तो दीमक लग गए थे। किसी भी कमरे में पंखा नहीं था। बिजली के तार जगह-जगह से टूटकर लटक रहे थे। छत और दीवाल का प्लास्टर अधिकतर उखड़ा पड़ा था। ऐसा लग रहा था मानो सालों से स्कूल में मरम्मत का काम नहीं हुआ है जबकि आजकल तो मेंटिनेंस के नाम पर हर साल सरकार की तरफ से लाखों रुपये दिए जाते हैं। बुधिराम को बड़ी निराशा हुई, वह इसी निराशा के साथ एक कमरे में जाकर बेंच पर पड़ी धूल को बैठने हेतु साफ करने लगा। लेकिन धूल का एक कण भी नहीं हिला, तभी उसे ध्यान आया कि वह तो मर चुका है। अब आत्मा भला कैसे कोई काम कर सकती है। इसलिए बिना धूल साफ किये ही बेंच पर बैठ गया।

वह कुछ सोचने का प्रयास ही कर रहा था कि उसका ध्यान मेंज पर अंग्रेजी में लिखे एक वाक्य की तरफ गया। लिखा था- 'fuck you baby' एक और लिखे वाक्य को पढ़ा – 'सोनम मेंरी जान'। उसकी जिज्ञासा बढ़ी तो वह उठकर सभी मेजों पर लिखे शब्दों और वाक्यों को पढ़ने लगा- 'डार्लिंग आई लब यू', 'मैं तेरे प्यार में पागल', 'सोनी और खुर्शीद', पिंकी मैडम+यादव सर, इत्यादि। इनमें अधिकतर लड़कियों के नाम लिखकर उनके बारे में अश्लील कमेंट लिखे गए थे। एक दो जगह यह भी था कि कौन मास्टर किस मैडम के चक्कर में रहता है। छात्रों की इन बदमासियों को देखकर वह मुस्कुराते हुए कमरे से निकलने लगा। अचानक उसकी नजर कमरे की दीवाल पर लिखे एक नाम पर पड़ी। वह रुककर ध्यान से देखा; प्लास्टर पर खुरचकर लिखा गया था – 'ज्योति'। नाम पढ़ते ही उसे याद आया कि उसकी क्लास में भी एक ज्योति थी, जो यहां से दो-तीन गांव के बाद वाले गांव से साइकिल चलाकर आती थी। उसे याद आया कि वह मन ही मन उसे कितना चाहता था। लेकिन वह तो दिनेश पर लट्टू थी। उसे और भी कुछ याद आता कि सहसा यमदूत सामने आ गया- "भाई मेंरे, बहुत हो गया स्कूल देखना... अब जाओ और जाकर अपनी डाल पर चुप-चाप बैठो।"

बुधिराम ने यमदूत को शुकराना दृष्टि से देखा और बरगद की पेड़ पर चढ़कर अपनी डाल पर जा बैठा। दिन काफी ऊपर चढ़ आया था। गांव के लोग अपने -अपने घरों से निकलकर खेत-खलिहान और चौक- चौराहे पर नजर आने लगे थे। इसी बीच स्कूल में चार-पांच लोगों का आगमन हुआ। उनके पीछे-पीछे स्कूल के कई सारे बच्चे और कईयों के माता-पिता भी स्कूल में आते हुए दिखे। इन चार-पांच लोगों में एक स्कूल के प्रधानाध्यापक थे, दूसरे व्यक्ति गजेन्द्र सिंह जो वर्तमान में स्कूल समिति के अध्यक्ष थे, उनके साथ जो अन्य व्यक्ति थे उनमें से एक का नाम मार्कण्डेय तिवारी और दूसरे का नाम मुन्ना दूबे था। पांचवे व्यक्ति को बुधिराम नहीं पहचान पाया। बच्चे और उनके साथ आये अन्य बच्चों के मा-बाप और भाई-बहन अपने साथ बोरा लेकर आये थे। थोड़ी ही देर में उन्हें टीन के डब्बे से भरकर तीन-तीन डब्बे चावल बांटा जाने लगा।

बुधिराम देखकर सोच में पड़ गया- लेकिन बच्चों को यह चावल डब्बे से क्यों बांटा जा रहा है... वह भी केवल तीन-तीन डब्बे..! जबकि सरकार तो कहती है कि मिड-डे-मील नहीं बनने की दशा में प्रत्येक छात्र को पांच-पांच किलो चावल दिया जाएगा। साथ ही दाल और सब्जी के पैसे भी दिए जाएंगे। वह खुद से ही सवाल-जवाब करते हुए बड़बड़ाया – 'मतलब गजेंद्र सिंह ने हर जगह लूट मचा रखी है! साला इस देश का कुछ नहीं हो सकता।'

अभी तक शांत और स्वछन्द महसूस कर रहे बुधिराम के मन में यह दृश्य देखकर गुस्से का प्रवेश होना शुरू हो गया। उसका मन किया कि अभी पेंड से उतरे और जाकर गजेंद्र सिंह का टेंटुआ दबा दे। लेकिन क्या करे- मरने के बाद जब वह एक बेंच पर पड़ी धूल नहीं साफ कर पाया तो गजेंद्र सिंह का अब क्या विगाड़ लेगा ..!' बच्चों के हिस्से की खुली लूट लाचारी से देखने के अलावा उसके पास और कोई चारा नहीं था। इस समय वह अपने जीवित समय से ज्यादा दुखी था। उसे अपने जीवन की तमाम बातें याद

आने लगीं। उसे लगा कि एक बेबस इंसान की बेबसी उसके मरने के बाद भी नहीं जाती। उसने पहली बार यह समझा कि- अपने प्रवचनों में जो पंडे-पुरोहित लोक-परलोक का ज्ञान पेलते हैं वे ताउम्र इंसान को चूतिया बनाने के अलावा कुछ नहीं करते।

मिड-डे-मील का राशन बच्चों को बांटने के बाद स्कूल में एक टेम्पू आया और उसमें बची हुई राशन की बोरियां लादी गयी। टेम्पू बोरी लादे जाने तक ही स्कूल में रुका। टेम्पू के जाते ही गजेंद्र सिंह और उनके साथी भी निकल लिए।

बुधिराम बेबस और लाचारी की हालत में अपनी डाल पर बैठा अपने अतीत में खोया हुआ था। उसे अब भी याद है जब वह अपनी पत्नी धनेशरी को ब्याह कर लाया था। उसके कमरे में बेड की जगह एक बड़ी सी चौकी थी। उसी पर बिस्तर लगा दिया गया था पहली रात के लिए। जब उसे कमरे में भेजा गया तो धनेशरी उसी चौकी के पास बिछी एक चटाई पर बैठकर उसका इंतजार कर रही थी। बुधिराम के बहुत कहने के बाद ही वह चौकी पर आयी। उसे याद आया कि आधी से ज्यादा रात तो उन दोनों ने केवल बात-चीत करते हुए ही गुजार दिया था। इसी बात-चीत के दौरान उसने फुलेसरी से एक गीत गवा कर सुना। क्या सुरीली आवाज थी उसकी- 'पिया छोड़िहा जनि हमरी कलाइया... जिनिगिया तोहरे साथ काटूंगी।'

अचानक बुधिराम इस गीत को गुनगुनाने लगा । वह अंतिम लाइन को बार-बार दोहराया। उसकी आवाज तेज होती गयी। वह भावुकता में इतना डूबा की भोकार-पार के रोने लगा- "जिनिगिया.... तोहरे... साथ काटूंगी!"

इस तरह अब उसकी पूरी दिनचर्या ही बदल गयी, कहाँ वह कुछ घण्टे पहले अपने सारे दुखो से छुटकारा पा जाने का उत्सव मना रहा था और कहां अब दुखों के सागर में गोता लगाने लगा है। क्वारन्टीन के वह चौदह दिन पहाड़ जैसे लगने लगे। वह दिन-रात यही गा-गा कर रोते रहता- "जिनिगिया.... तोहरे... साथ काटूंगी!"

उसका रुदन देखकर सातों यमदूतों और वहाँ उपस्थित आत्माओं की आँखें करुणा से भर जाती। कोरोना की वजह से कोई उसे पास जाकर सांत्वना तो नहीं दे पाया लेकिन छह फीट की दूरी को मेंटेन करते हुए जरूर उसे समझाने का प्रयास करते रहे।

बुधिराम को यहां आए हुए दस दिन बीत चुके थे। इस बीच बूढ़ा बरगद पूरी तरह शांत रहा। कुछ और भी आत्माएं क्वारन्टीन के लिए यहां लायी गयी थी तथा इस बीच जिनका चौदह दिन बीत चुका था वे यमलोक ले जाई गईं। बंदरों की तरह उछल-कूद करने वाली युवा आत्माएं अब अपनी डाली पर बड़ी शांति से क्वारन्टीन के दिन काटने लगीं। स्कूल में बरगद के अलावे जो अन्य पेड़ थे उनमें भी मातम छाया हुआ था। स्कूल की दीवारें एक टक बुधिराम को ही देखती रहतीं। बरगद पर हर रोज विचरण करने वाले पक्षीगण इन दिनों कलरव करना भूल गए थे। ड्यूटी में लगे यमदूत पहले की तरह पूरे स्कूल में घूमना छोड़ एक जगह बैठे रहते। ऐसा लग रहा था मानो पूरा स्कूल शोक के गर्त में समा गया हो। इस पूरे मातम भरे माहौल में यदि कुछ सुनाई देता तो बुधिराम के रोने की आवाज और "जिनिगिया.... तोहरे... साथ काटूंगी!" की गूंज।

ग्यारहवें दिन उस यमदूत से रहा नहीं गया जो बुधिराम को लेकर यहां आया था। वह सुबह-सुबह ही बरगद पर चढ़ा और बुद्धिराम की डाली पर छह फीट की दूरी को मेंटेन करते हुए जाकर बैठ गया। वह बुधिराम के लगातार रोने और दुखी रहने का कारण जानना चाहा- "भाई बुधिराम, मैं इतने दिनों से देख रहा हूँ कि तुम लगातार किसी भयानक पीड़ा को झेलते हुए रोये जा रहे हो। मृत्यु वाले दिन तो तुम ऐसे बिल्कुल भी नहीं थे। आखिर वह कौन सी बात है जो तुम्हे इतनी तकलीफ दे रही है... बताओ मुझे।"

रोते-रोते बुधिराम की आँखें सूज गयी थीं और आंसू आखों में ही सूख गए थे। उसने यमदूत की तरफ देखा- "क्या-क्या बताऊँ महाराज आपको, मेरा तो पूरा जीवन ही नरक जैसा रहा है। जाने दीजिए, आपको सुनाकर दुखी नहीं करना चाहता।"

"नहीं मेरे प्यारे भाई, तुम्हे अपनी पीड़ा मुझे बतानी ही पड़ेगी। अगर नहीं बताए तो मुझे और भी ज्यादा दुख होगा।"

"बड़ी लंबी कहानी है महाराज – मेरा गाँव यूपी के बॉर्डर पर बिहार में गंगा किनारे के किनारे है। मेरे बाबा दो भाई थे। बड़के वाले बाबा से मेरे पिता जी हुए। छोटके बाबा की शादी तो हुई लेकिन उनकी कोई संतान नहीं हुई। छोटके बाबा की शादी के कुछ ही दिनों बाद दोनों भाईयों में बंटवारा हो गया। दोनों अलग-अलग रहने लगे। बहुत बाद में जब बड़के बाबा की मृत्यु हुई तो छोटके बाबा ही मेरे पिताजी के लिए सहारा बने। इस तरह वे अलग रहते हुए भी जीवन भर एक परिवार की तरह हमलोगों के साथ ही रहे। उनके हिस्से की जमीन में खेती करना मेरे पिताजी के ही जिम्मे था।

मेरे पिता की कुल चार संतानें हुईं। मेरे से पहले मेरी तीनों बहनों का जन्म हुआ। पिताजी खेती किसानी करते हुए हम चारों को पाल-पोसकर बड़ा किये। पिताजी को बेटियों की शादी की चिंता होने लगी। खेती के अलावा आमदनी का और कोई जरिया नहीं होने पर उनकी शादी के लिए पिताजी को बड़के बाबा के हिस्से वाली आधी जमीन आधे-पौने दाम में बेचनी पड़ी। विवाह तो जैसे -तैसे हो गया लेकिन पिता को जमीन के बिक जाने का

ऐसा सदमा लगा कि मेरा विवाह होने से पहले वे बीमार पड़ गए और ऐसा बीमार पड़े कि सीधे उन्हें परलोक ही जाना पड़ा । बड़की दादी मेरे विवाह के एक साल बाद मरीं । वैसे उनकी मरने लायक उम्र भी थी ।

इसके बाद तो घर की सारी जिम्मेदारी मेरे कंधों पर आ पड़ी । छोटके बाबा भी अबतक काफी बूढ़े हो चुके थे । उन्हें गठिया की शिकायत थी । उनसे अब ज्यादा चलना-फिरना नहीं हो पाता था । इसलिए अक्सर एक खाट पर ही लेटे रहते थे । मेरी मईया उन्हें बहुत मानती थी । वह भी मईया को अपनी बेटी की तरह मानते थे । असल में बाबा मईया के किसी दूर के रिश्ते में मौसा लगते थे । बाबा के अंतिम दिनों में, 'जब वे और ज्यादा बीमार रहने लगे' मईया ने उनकी खूब सेवा की । बाबा की पत्नी मतलब मेंरी छोटकी दादी बाबा से पता नहीं क्यों हरदम लड़ती-झगड़ती रहती थीं । उनकी यह प्रवृत्ति अभी तक गयी नहीं थी । फिर भी बाबा उन्हें बहुत मानते थे ।

यही वह समय था जब गांव के पूर्व मुखिया ठाकुर गजेंद्र सिंह गाहे-बगाहे मेरे परिवार की हालत पर तरस खा कर अपनी संवेदना व्यक्त करने के इरादे से मेरे घर उठने बैठने लगे । उनके आने से मुझे काफी हिम्मत मिलती । असल में मेरे पाटीदारों की नजर मेरे छोटके बाबा की जमीन पर थी । अतः ठाकुर साहब के मेरे घर आने जाने से उनकी दाल गलनी बंद हो गयी ।

एक दिन छोटके बाबा मुझे और मईया को अपने पास बुलाये । उन दिनों छोटकी दादी अपने मायके गयी हुई थीं । बोले- "मुझे शहर ले जाकर किसी बड़े डॉक्टर से दिखला दो, लग रहा है मैं अब बचूँगा नहीं ।"

"ऐसा मत कहिए बाबूजी" - मईया की आँखों में आँसू आ गए ।

बाबा की आंखों में भी मैने आँसू देखा । वे खाट पर लेटे-लेटे ही अपनी गरदन घुमाकर मुझसे पलान में लपेट कर खोंसे हुए एक झोले को लाने के लिए बोले । जब मैं झोला लेकर उनके पास आया तो उन्होंने उसमें से सौ-सौ के नोट की एक गड्डी निकाल कर मईया को देते हुए बोले- "आज ही मुझे शहर ले चलो ।"

"आप चिंता न करें बाबा... मैं अभी ठाकुर साहब के यहां जाकर एक गाड़ी का इंतजाम करता हूँ ।" -यह बोलकर जब मैं उठने लगा तो उन्होंने मेरा हाथ पकड़कर अपनी तरफ खींच लिया और बोले – "नहीं, किसी को भी यह पता नहीं चलना चाहिए कि मैं शहर जा रहा हूँ ।"

उस समय मुझे बड़ा अजीब लगा और गुस्सा भी आया । क्योंकि अब मुझे ही उन्हें साइकिल पर लादकर शहर ले जाना पड़ेगा ।

बुधिराम के चेहरे पर थोड़ी रौनक लौटी, वह मुस्कुराया । यह देखकर यमदूत आश्चर्य से बोला – "क्या हुआ ?"

"कुछ नहीं महराज..." वह खुद से ही बुदबुदाया- "धत्त, कितना बुद्धू था मैं..!"

"फिर आगे क्या हुआ ?- यमदूत ने अपनी जिज्ञासा जाहिर की ।

"हाँ, तो मैं और मइया बाबा को लेकर शहर पहुँचे । वहाँ जाकर देखता हूँ कि बाबा एकदम टनाटन थे । उनकी आवाज में अब कोई लडखडाहट नहीं थी, आराम से मेरे या मईया का सहारा लेकर चल-फिर रहे थे । उन्होंने एक रिक्से वाले को इशारा किया तो वह अपना रिक्सा लेकर आया ।–"कहाँ जाना है बाबा ?"

मैं कुछ बोलता उससे पहले ही बाबा बोल पड़े- "तहसील चलोगे...?" तहसील का नाम सुनते ही सबकुछ मेंरी समझ में आ गया । इस तरह तहसील पहुँच कर बाबा ने अपनी पूरी संपत्ति का वसीयत मेरे नाम से कर दिया ।

दूसरे दिन इस बात की खबर पूरे गाँव में आग की तरह फैली । गजेन्द्र सिंह जब सुने तो भागे-भागे मेरे घर आये । मैं और मईया घर के बाहर ही बैठे थे, टोले-मुहल्ले की एक-दो महिलाएं भी थीं। पास में पड़ी खटिया को खुद ही बिछाकर उसपर बैठते हुए मईया से कहने लगे – "बताओ, तुम लोग इतना बड़ा काम कर लिए और मुझे एक बार भी खबर नहीं किये!"

"हमको भी कहाँ पता रहे... बाबूजी एतना जल्दी में थे कि हमको कुछ बुझईबे नहीं किया कि का करें.....।" -मईया विनम्रतापूर्वक माथे का पल्लू सम्हालते हुए बोली ।

"चलो अच्छे हुआ कि काका के मरने के पहिले ही वसीयतनामा हो गया... नहीं तो इस जमीन के पीछे बहुत सारे गिद्ध लगे हुए थे ।" गजेन्द्र सिंह एकदम से अपनापन दिखाते हुए बोले।

मईया के चेहरे पर संतोष के भाव थे लेकिन गजेन्द्र सिंह कुछ परेशान से लग रहे थे, बोले- "अच्छा, कगजा लाओ हम भी तो देखें कि वसीयत में का लिखा है ।"

मईया ने मुझे इशारा किया तो मैं भागकर घर के अंदर से वसीयत का कागज लेकर आया । अब कागज उनके हाथ में था, वे उसमें लिखे एक-एक लाईन को बड़े गौर से देख रहे थे । उन्हें पता चल गया कि यह कोई ऐसा-वैसा वसीयतनामा नहीं बल्कि रजिस्टर्ड वसीयत है । रजिस्टर्ड वसीयत रजिस्ट्रार के सामने होता है । मतलब कि पक्का वाला वसीयतनामा, फिर भी उनके मन में न जाने क्या चल रहा था, कहने लगे- "जब बुढ़ऊ को तहसील लेकर गए ही थे तो काहे नहीं सीधे बैनामा करा लिए ?... वसीयत पक्का नहीं होता... बुढ़िया खड़ी हो गई तो समझो यह टूट जायेगा ।"

उनकी बातें सुनकर मईया के माथे पर चिंता की रेखायें उभर आयीं। लेकिन पता नहीं क्यों, मुझे लगा कि वे हम लोगों को डराने की कोशिश कर रहे हैं। जानते हैं महराज, बाबा के मन में भी था कि बैनामा कर दें लेकिन रजिस्ट्रार साहब बाबा के परिचित थे, उन्होंने ही सुझाव दिया कि 'रजिस्टर्ड वसीयत करा लो कम पैसे में हो जायेगा और काम भी पक्का रहेगा।' उस समय मेरे परिवार की माली हालत बहुत खराब थी इसलिए उनकी बात हमें जंच गई और दूसरी बात यह थी कि हमलोगों के मन में किसी प्रकार की कोई बेईमानी नहीं थी। मईया तो यहाँ तक कहती थीं कि- 'उ आपन जमीन नहियो दें तब भी उनका जिनगी पार लगाना हमरी जिमेंदारी है।'

दूसरे दिन दादी अपने भाई और भतीजे के साथ मायके से लौटीं। उन्हें वसीयत के बारे में पहले से ही पता था। दरअसल मेरे गाँव से ही किसी ने उन्हें इस बात की सूचना पहुंचाई थी। बाद में यह बात निकलकर सामने आई कि उन्हें लाने के लिए गजेन्द्र सिंह ने ही अपनी जीप भेजी थी। खैर, वह बड़बड़ाते हुए घर में घुसीं और सीधे खाट पर बीमार पड़े बाबा के पास पहुँचकर उनसे लड़ने लगीं। वह पुरे गुस्से में थीं और बाबा चुप-चाप उनकी बात सुन रहे थे। शायद बाबा के दिमाग में यह बात चल रही होगी – 'आखिर तुम पर भरोसा करूँ भी तो कैसे !' असल में यह बात बहुत पुरानी है- परिवार के बँटवारे के समय बाबा को चाँदी के कुछ सिक्के और गहने मिले थे। जिसे बाबा की अनुपस्थिति में दादी ने सरसो की बोरी में भरकर अपने मायके भेजवा दी थीं। जिसको लेकर महीनों तक बड़के और छोटके बाबा आपस में लड़ते रहे। इस बात का खुलासा तब हुआ जब छोटके बाबा अपने ससुराल गये। वहाँ उनसे पड़ोस की किसी महिला ने यह बात बताई। तभी से बाबा और दादी के रिश्तों में दरार पड़ गई।

> हमारे जीवन और रहन-सहन में काफी बदलाव आया। मैं खेती-बारी में मन लगाकर काम करने लगा। धनेसरी एक सिलाई मशीन खरीद ली थी, उससे भी घर में साग-सब्जी का खर्च निकलने लगा। इस बीच घर में दो नए मेहमान भी आये एक लड़का और एक लड़की। लड़की दस साल की है और लड़का सात साल का। मईया का पूरा समय उन्ही के साथ कटता है। खेती से कमाए पैसे और इंदिरा आवास योजना में मिले पैसे से खपड़े वाली पुरानी मकान गिराकर दो कमरे का एक छोटा पक्का घर भी बन गया है।

यमदूत ने बुधिराम को यहाँ टोका – "ऐसा तो मैंने कहीं नहीं सुना कि कोई महिला अपने गहने भाईयों को दे दी हो !"

"महराज, यह स्वर्ग थोड़ी है... मृत्युलोक है यह... यहाँ कुछ भी हो सकता है। वैसे यह सारा वाकया मेंरी बड़ी दादी बताया करती थीं, अब इसमें कितनी सच्चाई है, मैं नहीं बता सकता।" - बुधिराम ने यमदूत की जिज्ञासा को शांत किया।

"चलो छोड़ो ये सब, आगे क्या हुआ वह बताओ।" -यमदूत पूरी कथा सुनने के मूड में था।

हाँ, तो उस दिन दादी बाबा से खूब लड़ीं, मईया उन्हें समझाने गयीं तो उन्हें डांटकर भगा दिया- "हटो यहाँ से सब तुम्हारा ही किया कराया है। मुझे तो पहले से ही पता था कि मेंरी जमीन को तुमलोग हड़पना चाहते हो।" उनके भाई-भतीजे भी गुस्से में थे। जब मैं उनके लिए गुड और पानी लेकर गया तो वे उसे छुए तक नहीं। कुल एक-डेढ़ घंटे ही वे लोग घर पर रुके। जाते समय वे लोग दादी को भी साथ ले जाने लगे। यह देख कर मईया ने उन्हें मनाने की बहुत कोशिश की, लेकिन वे इस घर में एक पल भी नहीं रुकना चाहते थे। सो, दादी और उनके भाई उस दिन वहाँ से चले गए।

दो दिन बाद दादी फिर वापस आयीं तो पता चला कि उस दिन वह अपने मायके न जाकर गजेन्द्र सिंह के घर ही रुक गई थीं। उनके साथ उनके भाई भी गजेन्द्र सिंह के घर रुके थे। अब पता नहीं वहाँ उन लोगों ने कौन सी खिचड़ी पकाई कि दादी हम लोगों के साथ रहने के लिए तैयार हो गयीं।

मईया, दादी की भी उतनी ही सेवा करती थीं जितनी बाबा की। धीरे-धीरे सब सामान्य होने लगा था। बाबा का स्वस्थ्य भी अब सुधरने लगा था। अब वे लाठी का सहारा लेकर नित्यक्रिया के लिए पास वाले खेत में चले जाते। दादी भी मईया से बहुत अच्छे से बात-चीत करने लगीं थीं। ऐसा लगने लगा कि उन्हें बाबा और हमलोगों से कोई शिकायत नहीं है।

घर में नमक-तेल-मसाला घटने पर मुझे साईकिल से धान या गेहूं लादकर बाजार में गल्ले की दुकान पर बेचने के लिए जाना पड़ता। बदले में मिले नकदी से मैं घर में हर दिन उपयोग में आने वाली वस्तुएं खरीद लाता। एक दिन ऐसे ही काम से मैं बाजार गया था। लौटकर आया तो देखा कि बाबा की देह घर के बाहर पड़ी है। मईया और दादी उनके सिरहाने बैठकर रो रही हैं और टोले-मोहल्ले की कई औरतें उन्हें चुप कराने का प्रयास कर रही हैं। मैं समझ गया कि बाबा अब नहीं रहे इसलिए मुझे भी रोना आया। लेकिन वहाँ आस-पास खड़े कई लोगों मुझे समझाया – 'सब

कुछ अब तुम्हे ही सम्हालना है... ऐसे में तुम हिम्मत हारोगे तो कैसे काम चलेगा !' न चाहते हुए भी मैंने उनकी बात मानकर अपने आप को सम्हाला। जल्द ही उनकी अर्थी उठी और गंगा किनारे ले जाकर चिता सजा दी गई। हिन्दू रीति-रिवाज के आनुसार बाबा का दाह-संस्कार हुआ। उनकी चिता को मैंने ही अग्नि दी।

बाबा की तेरहवीं मईया बहुत भव्य तरीके से करना चाहती थीं। उनकी इच्छा थी कि ब्राम्हणों को दान-दक्षिणा में कोई कमी न रहे। इसलिए उन्होंने दो बीघे जमीन साठ हजार में रेहन पर रख दिया।

"अच्छा महराज एक बात बताइए !"- बुधिराम को जैसे अचानक कुछ याद आया तो वह यमदूत से बोल पड़ा।

"क्या..?"- यमदूत, बुधिराम की कथा में इतना खो गया था कि वह चौंककर बोला।

"अरे वही महराज..! यहाँ लोग किसी के मरने पर तेरहवीं मनाते हैं न..! जिसमें ब्राम्हणों को दान-दक्षिणा देने के साथ-साथ पूरे गाँव को भी भोज देना होता है... क्या इससे सच में परलोक सुधरता है ?"- बुधिराम ने अपनी बरसों पुरानी दमित जिज्ञासा को यमदूत के सामने रखा।

"ऐसा कुछ नहीं होता मेरे भाई।" -यमदूत के चेहरे पर एक विचित्र सी हँसी उभरी, वह आगे बोला- "जानते हो ! मृत्युलोक की यही मुर्खता हम लोगों के बीच में हँसी-ठिठोली के काम आता है। अब मैं क्या बताऊँ... चल के वहाँ खुद ही देख लेना कि ऐसा ढोंग करने वाले कितने पड़े हैं नरक में।"

"तो, क्या पूजा-पाठ और कर्म-कांड से हमारा कोई पाप नहीं कटता ? क्या शास्त्रों में जो कुछ लिखा है वह सब झूठ है?" - बुधिराम को यमदूत की बातें सुनकर विश्वास नहीं हुआ।

"तुम लोग अपने शास्त्रों में कुछ भी मनगढ़ंत लिखते रहो उससे हमें उससे क्या... हमारे यहाँ सिर्फ और सिर्फ कर्म के आधार पर ही स्वर्ग और नरक का फैसला किया जाता है। अभी हाल ही में देख लो कि कैसे कुछ लोग कोरोना को माई और बाबा बनाकर पूज रहे हैं, क्या हमने कहा था ऐसा करने के लिए... हुंह..?" - यमदूत ने अपनी बात स्पष्ट रूप कही।

यह सुनकर बुधिराम को भारी निराशा हुई। उसे चिंतित देखकर यमदूत बोला- "छोड़ो यह सब लोक-परलोक और धर्म-शास्त्र की बातें, तुम अपनी कहानी बताओ... आगे क्या हुआ !"

होना क्या था ! वही हुआ जिसकी हमने उम्मीद नहीं की थी। कौवे की चेष्टा जिस वस्तु पर होती है, वह उसे पाकर ही दम लेता है। हम लोगों का ध्यान जब बाबा की तेरहवीं पर था तब गजेन्द्र सिंह की नजर मौके पर थी और इससे बढ़िया मौका क्या ही हो सकता था। गजेन्द्र सिंह दादी के भाई और भतीजे की मिलीभगत से उन्हें शहर ले गए और वसीयत के खिलाफ कचहरी में मुकदमा करा दिया। यह बात हमें तब पता चली जब तेरहवी के बाद कचहरी से नोटिस आया। नोटिस मिलते ही मईया गाँव के एक आदमी जिनका नाम राघो भगत था, को लेकर कचहरी पहुँची। वहाँ वकील के माध्यम से पता चला कि वसीयत पर केवल मुकदमा ही नहीं हुआ है बल्कि गजेन्द्र सिंह ने लेखपाल और तहसीलदार की मदद से पूरी जमीन का एक फर्जी बैनामा अपने नाम करा लिया है। यह सुनते ही मईया को धक्का लगा, वह वहीं कपार पकड़कर बैठ गयीं। आँखों से झर-झर आँसू बहने लगे। वकील और राघो भगत ने उन्हें समझाया कि- 'इसमें बहुत ज्यादा चिंता करने वाली बात नहीं है। यह रजिस्टर्ड वसीयत है, किसी भी हालत में यह नहीं टूटेगा। लेकिन उसके लिए अपनी तरफ से भी एक मुकदमा करना पड़ेगा।' इस तरह हमलोगों ने भी एक मुकदमा दायर कर दिया और सारा मामला न्यायालय के अधीन हो गया। आज पन्द्रह साल से ऊपर हो गया महराज मुकदमा अभी भी चल रहा है।

"अच्छा तो ये थी तुम्हारी समस्या... जिसके लिए रात-दिन तुम रोये जा रहे थे। अरे, इतनी समस्या तो लगभग हर इंसान के सामने होगी... तुमने तो इसके लिए पूरा आसमान ही सिर पर उठा लिया था।" - यमदूत को लगा कि उसका सारा दुःख अपनी जमीन खोने का है।

"अभी कहाँ महराज... मेंरी समस्या तो अब शुरू होने वाली थी। ये सब तो महज उसकी भूमिका है।"- बुधिराम यमदूत की बात सुनकर बोला।

"हाँ, तो बताओ फिर...!"- यमदूत वहीं डाल पर लेट गया।

"एक बार फिर से आपको पीछे ले चलता हूँ।"

"क्यों... ! सब तो बताया न तुमने।"

"नहीं... एक बात छुट गई थी।"

"ठीक है... ठीक है... चलो बताओ।"

जैसा कि मैंने आपको शुरू में ही बताया कि पिताजी के मरने के बाद ही मेरी शादी हुई थी। उसके ठीक बाद मेंरी बड़ी दादी का देहांत हुआ। दादी के देहांत के दो साल बाद ही यह जमीन का लफड़ा शुरू हुआ। तब घर में केवल मैं और मईया ही थे। जमीन का बैनामा करने के बाद छोटी दादी को उनके भाई उसी समय अपने साथ लेते गए। इसलिए घर में केवल हम माँ-बेटे ही थे। दादी को उनके भाई उसी समय अपने साथ लेते गए। दरअसल मेरी शादी तो हो गई थी लेकिन गवना अभी नहीं हुआ था। गवना होने में अभी भी दो साल बाकी थे। लेकिन मईया ने देखा कि घर

अब उनसे नहीं सम्हल रहा तो वे मेरे ससुर को गवना का दिन रखने के लिए संदेसा भिजवायीं। पहले तो वे, दिन रखने के लिए तैयार ही नहीं हुए, लेकिन मईया के काफी अनुनय-विनय करने पर मान गए। और इस तरह उसी वर्ष मेरा गवना हो हुआ और धनेसरी मेरे घर आई। हम दोनों ही उस समय नाबालिग थे, यानि कि हमारा बालविवाह हुआ था।

खैर, समय बीतता गया, मईया की उम्र घटती गई और मैं बड़ा होता गया। कचहरी में तारिख दर तारिख जाने से मेरे अंदर अब काफी समझदारी आ गई थी। धनेसरी ने घर के अंदर की पूरी जिम्मेदारी अपने हाथ में लेकर मईया को मुक्त कर दिया। मैंने बारहवीं की परीक्षा छोड़ दी और खेती-बारी में लग गया। इसी बीच किसी ने हमें खबर दी कि दादी परलोक सिधार गई हैं। उनके मरने से मुक़दमें में हमारा पक्ष मजबूत हो गया, ऐसा मेरे वकील ने बताया। बाबा वाली जमीन अब भी हमारे कब्जे में थी। हालाँकि गजेन्द्र सिंह ने कई तरह से वह जमीन छोड़ने के लिए मुझपर दबाव बनाया। लेकिन राघो भगत और मेरे वकील में मुझसे कहा था कि 'जमीन पर कब्ज़ा अंतिम दम तक बनाये रखना है।' इसलिए मैंने गजेन्द्र सिंह से साफ़-साफ़ कह दिया- जब तक न्यायालय अपना निर्णय नहीं सुना देता, मैं यह जमीन किसी कीमत पर नहीं छोड़ने वाला। इस तरह मामला काफी दिनों तक शांत ही रहा।

इस दौरान हमारे जीवन और रहन-सहन में काफी बदलाव आया। मैं खेती-बारी में मन लगाकर काम करने लगा। धनेसरी एक सिलाई मशीन खरीद ली थी, उससे भी घर में साग-सब्जी का खर्च निकलने लगा। इस बीच घर में दो नए मेंहमान भी आये एक लड़का और एक लड़की। लड़की दस साल की है और लड़का सात साल का। मईया का पूरा समय उन्ही के साथ कटता है। खेती से कमाए पैसे और इंदिरा आवास योजना में मिले पैसे से खपड़े वाली पुरानी मकान गिराकर दो कमरे का एक छोटा पक्का घर भी बन गया है। इसी समय में गजेन्द्र सिंह एक बार और गाँव के प्रधान चुने गए। उनके तीन बेटों में दो सरकारी नौकरी में हैं तथा तीसरा गुंडई करते-करते नेतागिरी करने लगा है। गजेन्द्र सिंह की उम्र आज 60-65 के आस-पास की होगी, लेकिन धूर्तता और गरीब-मजलूमों की धन-सम्पति हथियाने की आदत अभी भी जवानी की अंगड़ाईयां ले रही है। ऐसा करके आज वे अथाह सम्पति के मालिक हैं। पहुँच के मामले में भी उनका कोई सानी नहीं है- थाने से लेकर कचहरी तक के सभी कर्मचारियों के साथ उनका उठाना बैठना होता है।

इसी पहुँच के बल पर पिछले वर्ष न्यायालय से उन्होंने अपने पक्ष में एक आदेश करवा लिया, जिससे खतौनी में उनका भी नाम दर्ज कर लिया गया। खसरा-खतौनी में नाम चढने के बाद एक दिन वे अपने पुरे दल-बल के साथ उस विवादित जमीन में ट्रैक्टर लेकर पहुँच गए। उस समय खेत में गेहूं के अंकुर फूट ही रहे थे ट्रैक्टर उसे जोतने लगा। इस बात की खबर हमें ज्यों ही मिली; मैं और धनेसरी भागे-भागे खेत में पहुँचे। गजेन्द्र सिंह और मेरे बीच में बहस होने लगी। उन्होंने खतौनी दिखाते हुए कहा- "देख बुधिराम इसमें अब मेरा नाम चढ़ चुका है इसलिए खेत अब से मैं जोतुंगा-बोऊंगा।"

मैंने उनसे कहा – "यह कागज हमें मत दिखाईये, यह न्यायालय का कोई फैसला नहीं है, जो मैं इसे मानूं।"

इसी बीच उनके लड़के ने मुझे धक्का दिया- "स्ला बड़का गुंडा बन रहा है तुम... कोर्ट का बात नहीं मानेगा।"

"ऐ छोटे... हम तुमसे बात नहीं कर रहे हैं... अपनी औकात में रहो नहीं तो बहुत बुरा होगा।"- मैं भी उसी तेवर के साथ बोला।

"का करेगा रे... माधरचोद... मेरा औकात देखेगा... !"- उसने फिर से धक्का दिया तो मैं गिर पड़ा।

तभी, पता नहीं धनेसरी कहाँ से बीच में आ गई और रणचंडी का रूप धारण करते हुए गजेन्द्र सिंह के गर्दन पर हंसुआ लगा दी- "अभी के अभी ट्रेक्टर खेत से बाहर निकालो नहीं तो गर्दन काट के हाथ में दे दूंगी।"

मामले की गंभीरता को देखते हुए गाँव के कई सम्मानित लोग बीच-बचाव करने आ गये। वे गजेन्द्र सिंह को सख्त हिदायत दिए कि 'तुम यह ठीक नहीं कर रहे हो गजेन्द्र... कोर्ट का बिना फैसला आये यदि तुम गाँव में गुंडागर्दी दिखाओगे तो ठीक नहीं होगा। उसके बाद पता नहीं क्या हुआ कि गजेन्द्र सिंह उस दिन खेत से ट्रेक्टर लेकर वापस चले गए। मैं तो वहीं पड़े-पड़े धनेसरी के इस हिम्मत के बारे में सोचने लगा।

"बड़ी कलेजे वाली थी मेंरी धनेसरी... बड़ी कलेजे वाली थी महराज...!" -बुधिराम यह बोलते-बोलते रोने लगा।

"रो मत भाई... तुम्हे तो उसपर गर्व होना चाहिए।" - यमदूत बुधिराम को समझाते हुए बोला।

"मुझे उसपर बहुत गर्व है महाराज... लेकिन क्या करूं... उसके लिए रोने आलावा और कुछ कर भी तो नहीं पाया मैं। हरामखोरो ने उसे मार डाला और मैं उनका कुछ नहीं उखाड़ पाया... आप ही बताईये, रोऊँ नहीं तो क्या करूँ !" -बुधिराम की वेदना आंसूओं की धारा के रूप में बहने लगी।

"अरे...! ये कैसे हुआ ?"- यमदूत ने आश्चयर्य से पूछा।

हुआ यह कि, उस घटना के बाद गाँव में एक पंचायत हुई। जिसमें पंचों ने यह फैसला सुनाया कि –'जबतक कोर्ट का निर्णय नहीं आ जाता तबतक गजेन्द्र सिंह उस जमीन की तरफ आँख उठाकर भी नहीं देखेंगे। और पंचायत की बात नहीं मानने की

दशा में पूरा गाँव बुधिराम के साथ खड़ा रहेगा। अब पता नहीं क्या मज़बूरी थी कि गजेंद्र सिंह पंचायत का फैसला मानने के लिए तैयार हो गए।

इस तरह एक बार फिर से सब कुछ पहले जैसा सामान्य होने लगा। मैंने उस जोते गए खेत में फिर से गेहूं के बीज छींट दिए। धनेसरी की इस बहादुरी की चर्चा आस-पास के गांवों में होने लगी। इसी बीच अचानक एक दिन धनेसरी गायब हो गई। मैंने उसे ढूंढने का बहुत प्रयत्न किया लेकिन वह नहीं मिली। अतः तीसरे दिन मैं थक-हारकर पास के पुलिस चौकी में उसकी गुमशुदगी की रिपोर्ट लिखवा दी। पांचवें दिन उसकी लाश गाँव से दूर स्थित एक कुंए से बरामद हुई। पुलिस केस होने की वजह से उसका पोस्टमार्टम हुआ जिसमें रिपोर्ट आई कि हत्या से पहले उसका सामूहिक बलात्कार किया गया है। यह सभी जानते हैं कि यह काम किसने किया फिर भी पुलिस ने अज्ञात हत्यारों के नाम से केस दर्ज किया।

इस घटना के बाद मैं पूरी तरह से टूट गया था। मैं घर में ही गुमशुम सा रहने लगा। एक तरफ गुस्सा था तो दूसरी तरफ बेबसी। मन में ख्याल आता कि अभी गड़ासा उठाऊँ और जाकर छोटे सिंह को भुजड़ी-भुजड़ी कर कर दूँ, तो कभी तो ऐसा लगता कि मईया, बच्चों और खुद को एक साथ कमरें में बंद करके आत्म-दाह कर लूँ। लेकिन उसी वक्त धनेसरी की याद आने लगती – "सैंया छोडिहा जनि हमरी कलाईया... जिनिगिया तोहरे साथ काटुंगी।" फिर मैं अपनी बिटिया का चेहरा देखता। उसकी पूरी छवि बेटी के चेहरे में नजर आने लगती। इस तरह महीनों तक मेरे मन में जद्दोजहद चलता रहा। ऐसी हालत में मईया यदि नहीं होती तो शायद मैं आत्महत्या ही करता।

भूलने की शक्ति मनुष्य के जीवन का सबसे खुबसूरत तोहफा है। लाखों वर्षों से यदि मनुष्य अभी तक सुरक्षित बचा है तो इसमें सबसे बड़ी भूमिका भूलने की शक्ति की ही है। भूलना एक तरह से प्रगतिशील होने की निशानी भी है। यदि मनुष्य को सभी बातें याद रह जातीं तो यहाँ हर कोई एक दूसरे के खून का प्यासा होता। एक दो महीने लगे एक बार फिर से मैं अपने आपको सम्हालने में लग गया। और धीरे-धीरे इस घटना की याद पर एक परत चढती चली गई। मईया के समझाने और बच्चों के भविष्य को देखकर मैंने खुद ही बदला लेने का विचार पूरी तरह से निकाल दिया। फिर भी बदले की आग मन में सुलग रही थी।

एक दिन खेत में मैं ऐसे ही टहल रहा था कि सड़क पर खड़े मार्कंडेय तिवारी ने मुझे आवाज दिया। मार्कंडेय तिवारी मेरे ही गाँव के रहने वाले हैं। हत्या, डकैती और अपहरण जैसे मामले में वे कई बार जेल जा चुके हैं। प्रधानी के चुनाव में वे गजेन्द्र सिंह के पुराने प्रतिद्वंद्वी हैं। मैं उनके पास पहुँचा तो बताने लगे- "बहुत दिनों से मैं तुमसे मिलने की सोच रहा था लेकिन टाईमें नहीं मिला कि घर आकर मिलूं। एक बात बतानी थी तुम्हे... जानते हो... तुम्हारी पत्नी की हत्या गजेन्द्र सिंह के छोटे लड़के ने अपने दोस्तों के साथ मिलकर की है।"

मुझे तो इस बात का संदेह तो पहले से ही था लेकिन फिर भी उनसे पूछा- "यह सब आपको कैसे पता ?"

"अरे, मेरा एक चेला भी उनकी टीम में था... वही एक दिन दारु के नशे आकर बकने लगा। पहले तो मुझे विश्वास नहीं हुआ लेकिन बाद में उसके होश में आने पर डांटकर पूछा तो सारी बातें उसने बक दी।"

मैंने कहा- "मैं जानता हूँ तिवारी जी कि यह सब छोटे सिंह का ही काम है... लेकिन आप ही बताइए मैं अकेला भला उन लोगों का क्या बिगाड़ लूँगा ?"

"तुम्हे कुछ भी नहीं पता बुधिराम... आजकल अकेले बहुत कुछ किया जा सकता है। बस थोड़ा सा खर्चा करो और सारा काम अपने आप हो जायेगा... कहो तो मैं जुगाड़ लगाऊं ?"

मेरे मन में सुलगती बदले की आग जल उठी – "यह सब कैसे होगा ? और मुझे क्या करना होगा?"

"तुम्हे कुछ नहीं करना है... बस एक लाख की व्यवस्था करो... छोटे सिंह की लाश का भी पता नहीं चलने दूंगा।"

इस तरह मैंने छोटे सिंह को मारने की सुपारी दे दी। इसके लिए मैंने मईया को बिना बताये दो बीघा खेत रेहन पर रख दिया। इस काम के लिए पचास हजार पहले देने थे और बाकी के पचास हजार काम होने के बाद। पैसे की व्यवस्था होते ही मैंने मार्कंडेय तिवारी को खबर किया। दूसरे दिन वे बगल वाले गाँव के मुन्ना दूबे के साथ आये और पैसे ले गए। उस दिन मेरे मन में एक अलग तरह के आत्मसंतोष का अनुभव हुआ।

सुपारी दिए हुए छह महीने बीत गए लेकिन अभी तक छोटे सिंह का बाल भी बांका नहीं हुआ। इस बीच मैं मार्कंडेय तिवारी से कई बार मिला भी लेकिन हर बार वे यही कहकर मुझे सांत्वना दे देते कि 'मौका मिलते ही काम पूरा हो जायेगा'। मुझे लगने लगा कि कहीं वे मुझसे पचास हजार की ठगी तो नहीं कर लिए। मैं परेशान रहने लगा। मुझे कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करूँ! इसलिए मन का बोझ हल्का करने के इरादे से एक दिन मईया को सारी बातें बता दिया।

यह सब सुनकर मईया पहले तो बहुत गुस्सा हुई लेकिन बाद में मुझे समझाने लगीं - "तुमको का लगता है ! ई सब करने से धनेसरी तुमको वापस मिल जाएगी ? मानते हैं कि छोटे सिंह से बदला लेना चहिये। उसको मरवाने के बाद खाली तुम्हारा ही नहीं

मेरा भी कलेजा ठंढा होगा। लेकिन इसके बाद गजेन्द्रा का चुप बैठेगा ? वह तुम्हे भी मार देगा रे बुधिराम। उसके बाद बताओ ई बचवा सब का का होगा ? हमारा का होगा ? इ सब करने से पाहिले हमारे बारे में काहे नहीं सोचे ?"

इस तरह मईया मुझे देर तक समझाती रही । मुझे अपनी गलती का एहसास हुआ तो मैं उनकी गोदी में सिर रखकर खूब रोया। उस दिन मैंने निर्णय लिया कि आज के बाद मैं सिर्फ अपने बच्चों के भविष्य के बारे में सोचूंगा। उन्हें मेंहनत-मजदूरी कर के पढ़ाऊंगा-लिखाऊंगा। उनका भविष्य मैं खराब नहीं होने दे सकता ।

दूसरे दिन मैं सीधे मार्कंडेय तिवारी के घर गया और बोला – "तिवारी जी अब मुझे किसी से कोई बदला नहीं लेना है। मुझे मेरा पैसा वापस कर दीजिये।"

इसपर मार्कंडेय तिवारी ने पहले तो मुझे खूब समझाने की कोशिश की लेकिन जब मैं अपने निर्णय पर अडिग रहा तो बोले- "ठीक है जैसा तुम चाहो... तुमको कायर बनकर ही जीना है तो इसमें मैं भला क्या कर सकता हूँ... मुझे थोड़ा टाईम दो तुम्हारा पैसा वापस मिल जायेगा।"

उनकी बात मानकर मैं उस दिन वापस चला आया। महाराज आपको जानकर हैरानी होगी कि अभी तक उन्होंने मेरा पैसा नहीं लौटाया। पहले तो मैं हर पांच-दस दिन पर उनके घर अपने पैसे के लिए जाया करता था। लेकिन एकदिन उन्होंने मुझे गाली देते हुए कहा- "जब होगा तब दे देंगे, तुम बार-बार मेरे दरवाजे पर मत आया करो।" उस दिन से मैं फिर कभी उनके घर नहीं गया।

इतना कहने के बाद बुधिराम चुप हो गया। शायद वह कुछ सोचने लगा - "महराज, आप चाहें तो मुझे कायर, बुझदिल और फट्टू कह सकते हैं लेकिन सच तो यह है कि मैं कायर नहीं हूँ। आज मेरे घर में मेरा कोई भाई, चाचा या और कोई भी घर सम्हालने वाला होता... मेंरी मईया और बच्चों की देखरेख करने वाला होता तो मैं छोटे सिंह को कभी नहीं छोड़ता... मैं उसे खड़े चीर देता।"

यह देखकर यमदूत बोल पड़ा- "क्या सोच रहे हो बुधिराम ?"

"कुछ नहीं महराज... बस ऐसे ही... आगे सुनिए" - बुधिराम ने अपने मन की बात को मन के भीतर ही रहने दिया।

"हाँ, बताओ... इसके बाद क्या हुआ?"

उसके बाद मैं फिर से अपने परिवार और खेती-बारी में व्यस्त हो गया। उसी समय कोरोना की दूसरी लहर आई, पूरे देश में लोग भेंड़ बकरियों की तरह मरने लगे। एक दिन मैं बाजार में मईया के लिए दवा लेने गया हुआ था। दवा लेकर मैं अपनी साईकिल पर ज्यों ही चढ़ा कि दो-तीन पुलिस वालों ने मुझे पकड़ लिया । पकड़ने के बाद वे मुझे एक प्राईवेट हॉस्पिटल में ले गए, जहाँ मेरा कोरोना जाँच हुआ और उसी दिन रिपोर्ट भी आ गयी। जिसमें मुझे कोरोना पोजिटिव दिखाया गया था। इस पर मैंने वहाँ के डाक्टरों से कहा कि 'मुझे जाने दें मैं अपने घर में ही क्वारंटीन रह कर अपना इलाज करा लूँगा। लेकिन वे नहीं माने और मुझे कोरोना वार्ड में यह कह कर भर्ती कर दिया गया कि कम से कम चौबीस घंटे तो मुझे वहाँ भर्ती रहना ही पड़ेगा। इस पर मैंने उनसे कहा कि 'इसके लिए तो मेरे पास एक भी पैसे नहीं हैं।' तो डाक्टर ने कहा कि- 'तुम्हे पैसे की चिंता करने की जरूरत नहीं है।

दूसरे दिन करीब दस-ग्यारह बजे के आस-पास एक डॉक्टर ने स्वयं आकर मुझे एक इंजेक्शन लगाया। इंजेक्शन लगने के कुछ ही देर बाद मेंरी आँखों के सामने अँधेरा छाने लगा। पूरे शरीर में अजीब सी बेचैनी पसर गई। डॉक्टर को बुलाने के इरादे से मैंने पलट कर वार्ड के गलियारे की तरफ देखा। उधर देखते ही मेरा दिल जोर से धड़कने लगा और फिर धीरे-धीरे मेंरी चेतना लुप्त होती चली गई। गलियारे में दो डॉक्टरों के साथ छोटे सिंह और मुन्ना दूबे खड़े थे।

कहानी

बाथरूम वाली लड़की

बलराज सिंहमार

आज कई वर्षों के बाद मानसी उस रास्ते पर दोबारा जा रही है जिस रास्ते पर वो अपने B.Ed के दौरान जाती थी। बस में बैठ कर वह उन जगहो को देख रही थी जिनको वर्षों पहले वह देखते हुए जाया करती थी, टूटी हुई छोटी सी सड़क, जिसमें जगह-जगह गड्ढे बने हुए हैं। पिछले 6-7 वर्षों में कोई खास बदलाव नहीं आया। आज भी लोग उसी तरह साइकिल, बाइक तो कोई स्कूटी लेकर कहीं से भी होते हुए बीच में घुस कर बस के सामने आ जाता है। अब उसे बचाने की जिम्मेदारी बस के ड्राइवर की होती है।

रास्ते में मानसी ने देखा की छोटी-छोटी लड़कियां दो चोटियां बनाकर, स्कूल बैग उठाकर, बातें करते हुए स्कूल की तरफ जा रही है। उसे अपने कालेज के दिन आँखो के सामने सिनेमा की तरह चलते हुए दिखाई पड़ रहे थे। मानो वो अभी उन्हीं दिनों में जीवन जी रही है। बस में बैठे-बैठे मानसी अपनी पुरानी यादों में खो जाती है जब वो बी.एड कालेज में जाती थी.....

क्लास खत्म होने की घंटी बजी, मानसी ने टाइम देखा और वह बाहर की तरफ भागती है जबकि मैडम अभी भी क्लास रूम में ही हैं। वह भागते हुए जल्दी से वॉशरूम मैं घुस जाती है, पहले अपनी पॉकेट से डब्बे वाला फोन निकाल कर बडे इत्मीनान से बैठती है। फोन का मैसेज बॉक्स खोला जिसमें 3-4 मैसेज आए हुए थे। उसने फटाफट मैसेज भी लिखा सॉरी यार क्लास चल रही थी। फिर उसने सीट पर बैठकर बातें करने लगी।

हेलो! जानू

क्लास चल रही थी !

खत्म होते ही फटाफट भागी हूं।

बताओ खाना खा लिया?

बुलबुल!

नहीं यार अभी पहली ही क्लास हुई है, बाद में देखती हूँ। उधर से आवाज धीरे धीरे आती है; इधर से मानसी भी धीमें धीमें बोल रही है, तभी बाहर से कोई दरवाजा खटखटाता है यार कितना टाइम लगाओगे? हम भी बाहर खड़े हैं जल्दी करो ना? अंदर से मानसी झुँझला कर बोलती है

बलराज सिंहमार दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली में हिन्दी के प्रोफेसर हैं। विभिन्न पत्रिकाओं में लगातार लिखते रहते हैं।

'यार वॉशरूम तो फ्री होकर करने दिया करो। कैसी लड़कियां हैं फ्री होकर न तो बात करने देती और ना ही टॉयलेट ? 'यार दूसरे में चले जाओ मुझे टाइम लगेगा।

फोन पर धीरे-धीरे खुसर-पुसर शुरू हो जाती है दोनों बातों में लगे हुए है तभी कोई और दरवाजा खटखटाता है ...
यार खोलो ना?

बड़ी तेज लगी है

अंदर से मानसी बोलती है यार टॉयलेट आया है टाइम लगेगा फिर वह प्रेम भरी खुसर-पुसर के लग जाती है । मानसी बुदबुदाती है-

'यार ये लोग चैन से बात भी नहीं करने देगें'

फोन को कंधे और कान के बीच लगाकर, वह बाहर आती है और हाथों को साबुन से धोती है लेकिन ध्यान पूरा बातों और फोन पर लगा हुआ है। बात चल रही है,

तभी पीछे से किसी की आवाज आती है-

यार बाथरूम में भी लगी हुई है, लगी रह-लगी रह...

मानसी ने कहा- यार जरूरी फोन था।

तब तक बाथरूम में ओर भी कई लड़कियां आई और चली गई लेकिन वह फोन पर लगी हुई थी। तभी खुशी ने आकर कहा - मैडम आ गई है जल्दी जाओ।

वह भागते हुए- ये मैडम ! भी इतनी जल्दी आ जाती हैं ना? क्लास में घुस जाती है और अपनी सीट पर जाकर रीता के बगल में बैठ गई।

रीता धीमें से- इतनी देर तक कहां थीं?

मानसी- यार वॉशरूम गई थी।

इतना टाइम लगा दिया??

वह मुँह पर ऊँगली लगाकर धीरे से - चुप रहो सीईईईई

सामने मैडम अपनी क्लास शुरू कर चुकी थी वह मनोविज्ञान के बारे में बता रही थी 50 मिनट के बाद क्लास खत्म हो जाती है।

मानसी फिर क्लास से बाहर जाती है लेकिन क्लास से बाहर जगह कम थी इसलिए वह एक कोने में खड़े होकर फोन पर बात करने लगी।

उसकी फ्रेंड बिंदु कहती है - अरे कहां फोन पर लगी हैं?

वह उसकी बात को अनसुना करते हुए, बाथरूम की तरफ जाती है अंदर जाकर बात करती है। तभी एक लड़की कहती है मैडम आ गई है क्लास में। वह भाग कर क्लास में घुस जाती है। मैडम क्लास शुरू कर चुकी है टाइम धीरे-धीरे आगे खिसकता है मानसी बड़े ध्यान से, तन्यमयता से लेक्चर सुनती है । टाइम का पता ही नहीं चला। टरन-टरन-टरन की घंटी बजी तो क्लास खत्म होने का पता चला...

रीता ने कहा-लंच टाइम हो गया है सब खाना खाते हैं, बडी तेज भूख लग गई यार।

बिंदु- यार तू बाहर कहां जाती रहती है बार बार है?

मानसी- यार वॉशरूम गई थी

तू बार- बार वॉशरूम जाती है?

मानसी- नहीं जाना चाहिए?

रीता- मैने मना कहां किया जाने से।

मानसी थोडा खीझकर – 'यार वॉशरूम मुझे आता है तो ये मुझे तय करना है कब जाना है या नहीं जाना ??'

अब जल्दी से खाना खाओ फिर क्लास शुरू होने वाली है। एक तो लंच टाईम कम मिलता है और ऊपर से दोस्तों के फालतू सवाल....

बिन्दु- 'ठीक है ठीक है खाते हैं'

सभी फटाफट खाना खाते हैं और क्लास की तरफ भागते हैं। क्लास के बाद लगातार अगली क्लास चलती है रोज शाम का पता ही नहीं चलता, कब शाम हो जाती है। 4.30 क्लास खत्म। रोज की तरह बस का इंतजार। बस आती है ज्यादा भीड़ तो नहीं है। चारों फ्रेंड्स बस में चढ़ जाती हैं सीट भी अक्सर मिल ही जाती है। मानसी खिड़की की तरह बैठती है खिड़की के बाहर चलते पेड़ों को चलते हुए देखती है, मोटरसाइकिल पर लड़का-लड़की कितने सटकर बैठे हैं। लड़की कैसे बाइक को जिकजैक करके चला रहा है, वह लोगों को देखती चली जा रही है। वह देख सबको रही है पर उसके मन में कुछ और चल रहा है, इधर बस चल रही है सवारी बस में उतर रही है और चढ़ भी रही है। 15-20 मिनट के बाद स्टैंड आता है सारी सवारी उतरती जाती है। मानसी और उसकी फ्रैंड भी उतरते हैं और सब अपने अपने घर की तरफ जाने रास्ता पकड़ लेती हैं ....

अगले दिन सुबह मानसी शेयरिंग वाली टैक्सी से कॉलेज पहुंचती है सुबह फिर वही क्लास शुरू। जैसे ही 9:30 होते हैं वह फिर भागती है वॉशरूम की तरफ और वॉशरूम में जाकर वही फोन पर खुसर-फुसर शुरू हो जाती है। वह 15-20 मिनट बात करती है। इसी बीच कोई न कोई आकर उसे वाशरूम से बाहर आने के लिए कहता। वह अपनी बातों में मशगूल रहती है।

जब वापस क्लास में आती है तो रीता हमेशा की तरह कहती है- यार तू सुबह आते ही चली जाती है ? ऐसा क्या रखा है वहां पर? जो तू बार-बार वहां जाती हैं?

वह झुँझलाहट में भरकर धीरे से 'वॉशरूम से तुम्हें क्या प्रॉब्लम है ?'

नहीं तो।

फिर ??

इस तरह रोज यह चलता। मानसी रोज 9.30 पर वाशरूम जाती। उसकी सारी फ्रेंड यह सोचने लगी कोई न कोई तो चक्कर चल रहा है इसका ??

वह कौन है ??

उनको हमेशा ये लगता कि ये हमारे साथ होकर भी हमारे साथ नहीं होती ?? कहां बिजी रहती है ?? रोज सुबह 9:30 बजे बाथरूम जाती है। ऐसा वहां क्या है ?? अब उसकी फ्रेंड भी उसके पीछे पीछे जाने लगी वे जानना चाहती थी कि माजरा कया है ?? वे जानना चाहती थी कि आखिर वह बाथरूम में क्या करती है? लेकिन मानसी बाथरूम में जाकर दरवाजा अन्दर से बंद कर देती थी तो उनको यकीन हो गया की उसका कोई न कोई चक्कर चल रहा है लेकिन वो हमें नहीं बताती। आखिर क्यों ??

अब क्लास के सभी फ्रैंड उसे "बाथरूम वाली लड़की" के नाम से जानने लगे। इस तरह 8-9 महीने तक इसी तरह चलता रहा वह 9:30 बजे बाथरूम जरूर जाती। 9:30 बजे ही क्यों जाती ?? उसकी फ्रेंड ये जानने में लगी रहती कि किसी तरह उसके चक्कर का पता चले और हम उसके साथ मजे लें। लेकिन मानसी कभी इस बारे में बात ही नहीं करती ? उसकी फ्रेंड उससे पूछती - यार कोई चक्कर है तो बता दे? कौन है वह? क्या करता है?

वह हमेशा कहती- यार कोई भी नहीं है, तुम लोग मेरी बात पर भरोसा क्यों नहीं करते ?

अब मैं कैसे तुम्हें भरोसा दिलाऊँ ? वॉशरूम आता है वाशरूम जाती हूं इसमें अजीब क्या है ?

अब सारे फ्रेंड्स उसे "बाथरूम वाली लड़की" के नाम से पुकारने लगे। उसे कभी बुरा भी नहीं लगा इस बात को लेकर। वह इस बात को बड़ी सहजता से लेती।

समय बड़ी तेजी से पंख लगाकर उड रहा था 9-10 महीने बाथरूम में आते-जाते कब बीते पता ही नहीं चला। इसी टूटी सडक से गुजरते हुए कब B.Ed. पूरी हो गई समय के गुजरने का आभास ही नहीं हुआ। देखते ही देखते B.Ed. पूरी हो गई। सभी फ्रेंड्स अपने रास्ते चल पडे। अब उन दोस्तों से मुलाकात भी नहीं होती बात भी कभी कभी होती है वो भी जब किसी को कोई काम होता है तब ही। कोई कहीं चला गया कोई कहीं चला गया। किसी की शादी हो गई , कुछ के तो बच्चे भी हो गये। सभी अपनी अपनी दुनिया में व्यस्त हो गये... मानसी अपनी पढाई लिखाई में लग गई, उसने काफी अच्छे अंकों से एम.ए कर लिया, फिर एम.फिल भी प्रथम श्रेणी से गोल्ड मैडल के साथ किया। अब वह पी-एच.डी. की रिसर्च स्कालर है। पी-एच.डी. में वह व्यस्त रहती है। रीता ने शादी कर ली उसकी जॉब दिल्ली से बाहर लग गई। बिन्दू भी स्कूल में जॉब करने लगी....

समय अपनी गति से पंख लगाकर उडे जा रहा है आज 6 साल के बाद मानसी उसी रोड पर बस में बैठकर जा रही है अकेले-अकेले। सीट पर बैठे बैठे पुराने दिनों को याद कर रही है कि किस तरह सुबह-सुबह बस में या कभी कभी शेयरिंग वाली टैक्सी में बैठ कर वह जाती थी अपने बी.एड कॉलेज इसी रास्ते से। पुरानी यादों में खोई हुई ममू किसी गहन चिंतन में डूबी हुई है। बस स्टैंड आता है वह कंडक्टर से पूछती है ये कौन सा स्टैंड है?

'कोनापुर' – कंडक्टर धीरे से बोला।

वह बस से नीचे उतरकर अपने गतंव्य तक पैदल जाने लगती है। पहुँचने के बाद देखती है कि गेट बंद है। उसे देखकर सिक्योरिटी ने गेट खोला- जी मैडम किनसे मिलना है?

धीरे से कुछ कहा और फिर वह अन्दर चली गई। वह सीधे ऑफिस में जाती है। उसने ऑफिस में बताया कि वह यहां स्कूल में पी.जी.टी. ज्वाइन करने आई है।

एक महिलाकर्मी ने कहा- मैडम बैठिए

जी धन्यवाद !

मैडम आपने पहले भी कहीं पढाया है ??

नपा-तुला जबाब- नहीं

अभी आप क्या कर रहे हैं मैडम ?

पी-एच.डी.

ओह !!

पी-एच.डी. बहुत खूब मैडम, हमें तो किसी ने बताया नहीं और न ही सलाह दी।

तो मैडम ! आप तो कभी भी प्रोफेसर लग जाओगे ?

वह धीरे से बोली- देखते हैं।

अरे- शालू मैडम; देखिए हमारे यहां नई पी.जी.टी. आई हैं।

शालू मैडम पीछे से आकर बोलती हैं- बहुत-बहुत शुभकामनाएं मैडम !! आपका स्वागत है।

मानसी ने खडे होकर धीरे से बोली - धन्यवाद

शालू मैडम तब तक मेरे सामने आ गई और एकदम उछलकर चिल्ला उठी- अरे !!

बाथरूम वाली लड़की !!

सब शालू मैडम के चेहरे के भावों और कभी उनकी भंगिमाओं को आश्चर्य से देख रहे हैं??

शालू मैडम की खुशी देखते ही बन रही है।

तुम आई हो पीजीटी बनकर ?

मैंने उसे गौर से देखा वह चेहरा जाना-पहचाना सा लगा

उसने कहा- मुझे नहीं पहचाना ?

मानसी ने कहा- चेहरा तो पहचाना सा लग रहा है लेकिन नाम याद नहीं आ रहा?

उसने कहा- "बाथरूम वाली लड़की"

हमने साथ-साथ B.Ed की है आई.पी. कालेज से है।

तू भूल सकती है हमें, हम थोडी भूल सकते है उस "बाथरूम वाली लडकी" को...

शालू के मन में बडे सवाल उमड़ रहे थे वह उससे काफी बात करना चाह रही थी

जॉइन करने की सारी औपचारिकताएँ पूरी होती हैं फिर प्रिसिंपल से मिलकर बातचीत होती है। प्रिसिंपल ने बोला 'आपको कल से टाइम-टेबल मिल जाएगा' तभी शालू आती है।

प्रिसिंपल मैडम ! हमने साथ साथ बी.एड. किया है, हम अच्छे दोस्त रहे हैं।

मैडम हम बाहर बात कर लें।

हाँ ! हाँ !

शालू और मानसी बाहर मैदान की तरफ आ जाते हैं।

शालू - बताओ, क्या चल रहा है?

मानसी ने धीरे से कहा – 'पी-एच.डी.'

शालू- सच में !!

मै तो, पहले की तरह ही तू तू करके बोल रही हूं खराब तो नहीं लग रहा?

नहीं तो

अब तो तू पी-एच.डी. कर लेगी, प्रोफेसर बन जाएगी।

यार सच में यकीन ही नहीं हो रहा ??

हमें तो ये लगता था कि पता नहीं तेरी बी.एड. भी पूरी हो पाएगी??

लेकिन तू तो ...

सचमुच हम सब तेरे बारे में क्या-क्या सोचते थे?? तूने सबको गलत साबित कर दिया यार !

एक बात तो बताओ, नहीं तो मन में ये हमेशा रहस्य बना रहेगा।

बोलो !

यार तुम बार बार बाथरूम में क्या करने जाती थी ??

मानसी ने कहा 'देखो उस समय भी तुम लोग मेरी बात पर यकीन नहीं करते थे और शायद आज भी नहीं करोगे'

चलो एक बात बताओ अगर मेरा किसी से कोई चक्कर भी होता तो क्या हो गया??

मै फोन पर अपने ब्वायफ्रेंड से बात करती थी तो उससे किसी का क्या जाता था?

देखो शालू !

आप लोगों की बात मान लेती हूँ कि मेरा चक्कर था किसी से। लेकिन देखो यार मैने फिर भी आगे पढाई लिखाई की ना । किसी चक्कर में पड़कर मैने पढाई लिखाई बंद की ?? बी.एड. भी प्रथम श्रेणी से अधिक अंको से उतीर्ण की, एम.ए. में भी प्रथम श्रेणी से अधिक अंक हैं, एम.फिल में गोल्ड मेंडल मिला और पी-एच.डी. भी कर रही हूँ अगले वर्ष थीसिस जमा करा दूँगी और हाँ नेट भी 3-4 बार निकाल चुकी हूं। अगर मै किसी चक्कर में लगी होती तो ये सब होता ??

बताओ तो???

पता नहीं हमारी सारी फ्रैंड के मन में यही रहा है कि लडकी किसी चक्कर में पड़कर पढेगी नहीं? यार

एक बात कहूँ किसी के चक्कर में पड़कर भी पढा जा सकता है और अच्छे से पढ़ा जा सकता है। अगर सामने वाला ही आपको आगे पढने के लिए प्रोत्साहित करे तो ? प्यार किसी को बंधन में नहीं बाँधता बल्कि मुक्त रखता है । प्यार रास्ते की रूकावट नहीं बनता अगर रूकावट बने तो वह प्यार नहीं होता।

शालू गंभीर हो गयी उसक चेहरे पर तनाव और पाश्चाताप साफ साफ झलक रहा था। उसने धीरे से कहा- 'मानसी यार मुझे तो कम से कम माफ कर दे' हम तेरे को हमेंशा गलत समझते थे लेकिन तू तो आज हम सबसे ज्यादा पढ़ी लिखी है। हम सब तेरा मजाक बनाते थे लेकिन आज तूने साबित कर दिया कि मानसी मानसी है। उसकी आँखें भर आई ...

मुझे खराब लगा मैने बोझिल माहौल को थोड़ा खुशनुमा बनाने के लिए उसके कंधे पर हाथ रखा और कहा- 'यार कुछ भी कहो मुझे न तो कभी पहले बुरा लगा और न मैने बुरा महसूस किया जब तुम सब मुझे- "'बाथरूम वाली लडकी" "बाथरूम वाली लडकी" कहकर छेड़ते थे। बहुत अच्छा लगता था मैं तो तब भी उसे एन्जॉय करती थी और आज भी उसे याद करके एन्जॉय करती हूँ। आज हम सब अलग अलग रहते हैं देखो एक दूसरे को संभवतः याद भी नहीं करते होगें ??

ये वही समय है जो हमें आज भी साथ ले आता है यार जिन्दगी बार-बार नहीं मिलती है खूब पढ़ो और आगे बढ़ो। बाकी बताओ.....

शालू भी मुस्कुरा उठी और दोनों साथ-साथ आफिस की तरफ चल दी ....

कहानी

मैं जिंदा हूँ

रमेश कुमार राज

"ई के हई?"

"अरे! ई त अपना मिडिल इसकूल के हेडमाहटर साहब हैं! रामप्रसादमाहटर साहब।"

"त ई मुहल्ले में काहे आए हैं ?"

"होगा कउनों काम...!"

फूलवती पूछ रही है और रामप्यारी उसे सब बता रही है। फूलवती मुहल्ले में नई-नई आई है। पिछले साल ही रजबाउ से ब्याह कर लाया है। इसीलिए अभी ज्यादा लोगों को वह नहीं पहचानती है। बड़े लोग जब गरीबों की बस्ती में घुस आते हैं तो वहाँ के लोगों में संदेह पैदा हो जाता है। भय और जिज्ञासा का द्वंद्व चलने लगता है। किसी छोटभइका से उसके पड़ोसियों के सामने बात कर लें तो मजाल है कि उसके समाज का कोई आदमी उसके साथ तू-तू, मैं-मैं करे! अपने समाज में उसका दबदबा बढ़ जाता है। जीतन मुखिया को कौन नहीं जानता! मलाह समाज में ही नहीं, पड़ोस में जितने भी छोटी जाति के लोग हैं उसमें उसका दबदबा है। अनिल मिश्र का खास है इसलिए। दिनभर उसी के घर पड़ा रहता है। पशु की देखभाल करना, नाद में चारा डालना, खेत-खलिहान का चक्कर लगाना, सारा काम वही करता है। आप जानते हैं अनिल मिश्र कौन है? जिला न्यायालय का नामी वकील। पूरे मुहल्ले का मुकदमा वही लड़ता है। सबका कानूनी सलाहकार और मददगार वही है। इसलिए मुहल्ले भर के लोग जीतनसे जबान नहीं लड़ाते। उसके बच्चे और भी अगिया बैताल हैं! किसी को भी पीट देते हैं। किसी को भी घर चढ़कर गलिया आते हैं। इसलिए फूलवती को मास्टर साहब का मुहल्ले में आना शेर का बस्ती में घुस आने जैसा लगा। किन्तु रामप्यारी तो जैसे मुहल्ले भर की नानी हो! सबको जानती, पहचानती है। स्कूल से लौटने के बाद मजाल है कि वह घर पर टिककर रहे ! दिनभर इधर-उधर घूमती रहती है। कभी इसके घर तो कभी उसके घर। मिडिल स्कूल में ही वह सात क्लास में पढ़ती है। इसलिए मास्टर साहब को देखते ही उसने पहचान लिया।

रमेश कुमार राज हिन्दू कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली के हिन्दी विभाग में असिस्टेंट प्रोफेसर हैं।

"अरी रामप्यारी! तू यहाँ?" मास्टर साहब ने रामप्यारी को वहाँ देखकर आश्चर्य से पूछा।

"जी माहटर जी! हमरघर एहीमुहल्ला में है। ऊ... ऊ... भीत वाला घर हमरेहै। चलिए न माहटर जी हमराघरे। चाय पानी पी लीजिएगा।" रामप्यारी ने अपने घर की ओर इशारा करते हुए मास्टर साहब से घर चलने का अनुरोध किया।

"नहीं रामप्यारी! अभी बहुत काम है। सरकारी ज़िम्मेदारी है। बड़ा बोझ है कंधे पर। इसके चक्कर में पढ़ानालिखाना सब चौपट हो गया है। पिछले कुछ दिनों से स्कूल भी कहाँ जा रहा हूँ! इसी काम में उलझा हुआ हूँ। फुर्सत नहीं है प्यारी! सरकार का वश चले तो वह मास्टर से ही झाड़ू, पोछा, बर्तन सब कराए! मास्टर नहीं, जैसे सरकार का बंधुआ मजदूर हो गया! वैसे हम नौकर ही तो हैं उसके! जो हुक्म होगा वह तो करना ही पड़ेगा! कोई भी सरकारी काम हो, शिक्षकों को लगा दो उसमें! हम पढ़ाते कम हैं, इसी तरह का आलतू-फालतू काम ज्यादा करते हैं और सपना देखते हैं विश्वगुरु बनने का। ऐसे बनेगा तुम्हारा भविष्य? ऐसे बनेंगे हम विश्वगुरु?"

मास्टर साहब ने बड़ा गंभीर सवाल कर दिया रामप्यारी से। उसे पता भी नहीं है कि विश्वगुरु का मतलब क्या होता है। वह पूछती है, "माहटर साहब, ई विषगुरु का होता है?"

"हाहाहा....!" मास्टर साहब ने ज़ोर का ठहाका लगाया और कहा, "अरी पगली! विषगुरु नहीं, विश्वगुरु! तुम तो नाक कटवा दोगी मेरी। बोलो विश्वगुरु!"

मास्टर साहब ने रामप्यारी को विश्वगुरु का उच्चारण ठीक करने को कहा। रामप्यारी ने फिर से 'विषगुरु' ही कहा। मास्टर साहब ने माथा पीट लिया। "तू नहीं सुधरेगी। स्कूल आ तब तुम्हें सिखाता हूँ।"

इतना कहकर वे फिर हँसे। रामप्यारी भी 'सिखाता हूँ' का मतलब समझ गई। हँसती हुई बोली, "ठीक हैमाहटर जी! आप इसकूले में सीखा दीजिएगा। अभी घर चल के एक गिलास पानी त पी लीजिए!"

"इस बार नहीं प्यारी। फिर कभी। अगली बार आऊँगा तो पक्का तुम्हारे घर चलूँगा।" मास्टर साहब ने अपनी असमर्थता व्यक्त की। रामप्यारी ने भी आगे कुछ नहीं कहा।

> "अच्छा! त पहिले फसल बरबाद करो, फिर भीख दो और बदले में भोट माँगो! सरकार त बहूते चलाकी करता है माहटर जी! ऊ चाहे त बाढ़ को रोक सकता है। हर साल एतना लोग मरते हैं, कइयों के त घर बह जाते हैं। गाय, भंइस, बकरी, खंसी सब बह जाते हैं। ई चावल और पइसा से केकरो बेटा-बेटी आपस आएगा माहटर जी?बताइए! अउरई नेपाल कोरफुट्टा के त कोढ़ी फट जाए माहटर जी!"

मास्टर साहब अक्सर किसी न किसी गाँव में दिखजाते हैं। सरकारी काम के सिलसिले मेंबराबर गाँव में आते-जाते रहते हैं। बहुत सहृदय और ईमानदार शिक्षक हैं। बाबा साहब आंबेडकर और महात्मा गांधी के आदर्शों पर चलने वाले। उनके ऑफिस में केवल इन्हीं दोनों महापुरुषों की तस्वीर लगी है। बड़े संवेदनशील अध्यापक हैं। किसी से भेदभाव नहीं करते हैं। सबके प्रति समर्पित रहते हैं। दो ही काम उन्हें प्रिय हैं- पढ़ाना और समाज की सेवा करना। लोगों में उनका बड़ा आदर है। उनकी नजर में कोई बड़ा-छोटा है तो सिर्फ अपने विचारों से, रहन-सहन से। गंदगी से उन्हेंनफरत है। उनका कहना है कि चाहे फटे कपड़े पहनो मगर साफ सुथरा पहनो। परंतु उनका यही समाज व्यवहार उनके शिक्षण का सबसे बड़ा शत्रु बन गया। गाँव में किसी से बात करनी होती तो उन्हें ही भेजा जाता है। परिणाम यह हुआ कि वे स्कूल में कम बाहर के कामों में अधिक उलझे रहते हैं। इससे वे बड़े दुःखी हैं। उनका पढ़ना-पढ़ाना छूट रहा है। गाँव में घूमते हुए कोई बच्चा इधर-उधर खेलता हुआ दिख जाता तो उन्हें बड़ा कोफ्त होता। कहते, "इसे तो अभी स्कूल में होना चाहिए था।" फिर यह सोचकर रह जाते कि कायदे से तो उन्हें भी स्कूल में ही होना चाहिए था! सबकी अपनी-अपनी परेशानियाँ हैं। न चाहते हुए भी जीवन में इच्छा के विरुद्ध बहुत कुछ करना पड़ता है। मास्टर साहब वही कर रहे हैं।

मास्टर साहब कंधे पर खादी का झोला और हाथ में छाता लिए आज फिर सरकारी काम से ही ब्रह्मपुरटोल आए हैं। रिटायर होने को हैं पर उनकी उम्र का कोई अंदाजा नहीं लगा सकता। गाँव भर का अनुभव उनके पास है। वर्षों से एक ही स्कूल में पढ़ा रहे हैं इसलिए। कोई बच्चा शरारत करता तो वे कहते,"कमबख्त! तू मुझे सिखाएगा? तेरे बाप को भी मैंने ही पढ़ाया है! तेरा बाप भी ऐसा ही नालायक था। तू जरूर उसका नाम रौशन करेगा!"और फिर चट-चट, पट-पट,तरातर-तरातर चार-पाँच छड़ी पीठ पर जड़ देते। बच्चा गइंचामछली की तरह पीठ सीधी करके वहाँ से भाग जाता। वे बच्चों को बहुत कम मारते हैं। जब बहुत ज्यादा परेशान हो जाते हैं तभी हाथ उठाते हैं। उनका मानना है कि ज्यादा लाड़-प्यार से बच्चा बिगड़ जाता है।

इसलिए भय दिखाना जरूरी है। "भय बिनुहोय न प्रीति" उनका मूल मंत्र है।

सफ़ेद धोती, उसके भीतर सफ़ेद और नीली रंग की डोरिया हाफपैंट स्पष्ट दिखाई दे रही है। सफ़ेद कुर्ता और उसके ऊपर खादी की काली सदरी। सिर पर सफ़ेद गांधी टोपी। एक हाथ में छाता और दूसरे हाथ में दो-चार काले, पीले, लाल रंग का मोटा-मोटा रजिस्टर। पाँव मेंचमड़े का काला और चमकीला जूता और कंधे पर खादी का झोला लटकाए मोहल्ले में आए हैं। मानो कोई स्वतंत्रता सेनानी हो! लाल बहादुर शास्त्री लग रहे हैं! उन्हें देखते ही रामप्यारीदौड़ी आई थी। "का काम है माहटर जी, जो आपके पास तनको समय नहीं है?" रामप्यारी ने पूछा।

"अरी रमपियरिया! तुम्हें मालूम है न कि चार-पाँच महीने पहले गाँव में बाढ़ आई थी?"

"जी माहटर साहब। याद है। ओही बाढ़ में त हमरा पड़ोसी के बेटा डूब के मर गिया था। अउरहमरा नानी इहाँ के त गाँव में पानी घुस गिया। बहूते के त गाय-भंइस पानी में बह गिया। खूबेभयनकर बाढ़ था माहटर साहब!" कहते-कहते रामप्यारी उदास हो गई।

"बोलो, बहुत भयंकर बाढ़ थी" मास्टर साहब ने फिर रामप्यारी के वाक्य को दुरुस्त करना चाहा। रामप्यारी ने सिर्फ इतना कहा, "हाँ उहे!" उसने फिर मास्टर साहब से पूछा, "माहटरसाहब, हर साल एतना पानी कहाँ से आता है? हमरा मोहल्ला के त सभे आदमी के खेत का फसल उसमें बह गिया। सब बहूते परेसान हैं। केकरो खेत में धान नहीं है। सब डूब गिया। ई साल हम कथी खाएँगे इहे नहीं समझ में आ रहा है। कहाँ से आता है एतना पानी माहटर साहब?"

मास्टर साहब इस सवाल से सोच में पड़ गए। "नेपाल से आता है प्यारी!" सिर्फ इतना ही कहा।

"त नेपाल को आप लोग रोकते काहे नहीं हैं माहटर साहब?" यह सुनकर मास्टर साहब फिर अचंभित हुए। रामप्यारी का सवाल उन्हें परेशान करने लगा। उनका सिर चकरा गया। उन्होंने कहा, "अरी पगली! मेरे कहने से होगा? यह सरकार का काम है। वहकहेगी तभी कुछ होगा।"

"त आप सरकार से कहते काहे नहीं हैं माहटर साहब?"

"मेरा कहना कहाँ सुनेगी सरकार पियरिया!"

"काहे नहीं सुनेगामाहटर साहब? आप भी त ओकरे काम रह रहे हैं! ऊ कहता है त आप सुनते हैं, आप कहेंगे त ऊ काहे नहीं सुनेगा?"

"क्यों नहीं सुनेगी, ऐसा बोलो पगली!"

"हाँ हाँ उहे! क्यों नहीं सुनेगी!"

"अरे!सब बड़े लोग हैं। उन तक हमारी बात कहाँ पहुंचेगी रामा!"

"त आपोसे सेबड़का-बड़का लोग हैं? हमको त लगता है कि आप ही सबसे बड़का आदमी हैं। हेडमाहटर हैं आप तो!"

"अरी पगली! मैं स्कूल का हेड मास्टर हूँ। बिहार का नहीं।" इतना कहकर वे हँसे जरूर पररामप्यारी का सवाल उनके दिमाग को मथने लगा। गौर से रामप्यारी को देख रहे हैं। उन्होंने जानबूझकर आगे कुछ नहीं कहा। नहीं तो वह और सवाल करती। यदि वे कह देते कि "आपदा ही सरकार की संपदा हैं" तो यह बात मासूम मस्तिष्क को और समझ में नहीं आती। चुप रहना ही उन्होंने उचित समझा। थोड़ी देर बाद बोले, "जो बाढ़ आई थी, जिसमें किसानों के फसल बर्बाद हो गए थे, उसी के लिए सरकार ने राहत सामग्री भेजी है। उसे गरीबों और बाढ़ पीड़ितों में बाँटना है। उसी की गणना करने के लिए सरकार ने मुझे यह काम सौंपा है। यह पता करना है कि किस परिवार में कितने लोग हैं। कौन विवाहित है और कौन अविवाहित। इसीलिए आया हूँ। तू बता, कहाँ बैठा जाए और सबका नाम लिखा जाए?"

"ई राहत सामगरीका होता है माहटर जी?" रामप्यारी ने फिर सवाल किया। मास्टर साहब झेंप गए। इस बार उन्होंने रामप्यारीको साफ-साफ समझा दिया कि अब वह आगे कोई सवाल नहीं करेगी तभी इसका उत्तर बताएँगे। रामप्यारी ने बात मान ली। मास्टर साहब बोले, "जिन-जिन लोगों की फसल बर्बाद हो गई है और जिनके पास खाने को कुछ नहीं बचा है, सरकार उसे खाने-पीने के लिए चावल और पैसा देगी। इसे ही राहत सामग्री कहते हैं। बस्स! अब हो गया! अब तुम कोई सवाल नहीं करोगी! समझ गई?"

"अच्छा! त पहिले फसल बरबाद करो, फिर भीख दो और बदले में भोट माँगो! सरकार त बहूते चलाकी करता है माहटर जी! ऊ चाहे त बाढ़ को रोक सकता है। हर साल एतना लोग मरते हैं, कइयों के त घर बह जाते हैं। गाय, भंइस, बकरी, खंसी सब बह जाते हैं। ई चावल और पइसा से केकरो बेटा-बेटी आपस आएगा माहटर जी?बताइए! अउरई नेपाल कोरफुट्टा के त कोढ़ी फुट जाए माहटर जी!"

इतना कहकर रामप्यारी सकपका गई। उसने पहली बार मास्टरसाहब के सामने गाली दी है। वह डर गई कि मास्टर साहब उसे डाँटेंगे। सिमटकर रह गई।

मास्टर साहब ने इस बार उसकी अशुद्धि को शुद्ध करने का कोई प्रयास नहीं किया। उन्होंने अपने हाथ का रजिस्टर रामप्यारी के हाथ में पकड़ा दिया और उसके गंधे पर हाथ रखकर उसके मुख की ओर देखते हुए कहा, "ठीक कहती हो प्यारी! चलो

अब कहीं बैठकर सबका नाम लिखते हैं।" रामप्यारी बड़ी खुश हुई। "जी माहटर साहब! अच्छा माहटर साहब, रजिस्टर में हमरा भी नाम लिखाएगा? ई समान हमको भी मिलेगा का?" मास्टर साहब ने रामप्यारी की तरफ देखा। रामप्यारी ने माथा पीट लिया, "ओहो! हम त भुलिए गए थे कि हमको सवाल नहीं पूछना है। गलती हो गियामाहटर साहब!" उसने हाथ जोड़ ली।

"हाँ! नाम तो तुम्हारा भी लिखाएगा। पर सामान शायद सिर्फ वयस्क को ही मिलेगा।"

'ई वयस्क किसको कहते हैं माहटर जी?"

"जिसकी शादी हो जाती है उसे वयस्क कहते हैं।" मास्टर साहब मान चुके थे कि रामप्यारी रुकने वाली नहीं है। इसलिए रामप्यारी की दाढ़ी की ठुढी हिलाते हुए कहा। वोट के अधिकार वाली बात उन्होंने नहीं कहेगी।

"धत् तेरी की! फिर त हमरानहीं मिलेगा माहटर जी!" इतना कहकर वह शरमा गई। उसके बाद उसके सवाल भी खत्म हो गए। तब तक मुहल्ले के कई लोग वहाँ इकट्ठा हो गए। मर्द काम पर चले गए हैं। सिर्फ महिलाएँ और छोटे बच्चे हैं। तेतरी ने आवाज दी, "माट साहब, हियाँ बैठिए, हियाँ!" मास्टर साहब ने पलटकर देखा कि वहाँ एक कोने पर राख की ढ़ेर है जिस पर बच्चों के मल पुआल में लपेटे रखे हुए हैं। उससे बदबू आ रही है। वे यहाँ कैसे बैठ सकते हैं! इसी से तो उन्हें नफरत है। वे कुछ बोले नहीं पर नाक सिकोड़कर रह गए। तभी कैलसिया बोली, "माहटरसाहब, आप हमरा यहाँ चलिए। उहाँ थोड़ा चिक्कन है। गंदा-उंदानहीं है उहाँ। उहाँ आपको कउनो दिक्कत नहीं होगा।"

"हाँ माहटर जी! चाची के दुअराबहूते साफ रहता है! उंहे चलिए।" रामप्यारी ने भी अपनी सहमति दी। सब कैलसिया के दरबाजे पर गए। कैलसिया ने झटपट अंदर से चटाई लाकर नीम के पेड़ के नीचे बिछा दी। पर जा जिमलाकर नहीं दी। उसका पोता रोज रात को उस पर पेशाब करता है। उसके सभी जाजिम गंधा रहे है। लेकिन दो-तीन नई चटाई उसके घर में हमेशा लपेटे रहती है। रामप्यारी भागती हुई अपने घर गई और पेटी खोलकर उसमें से नया जाजिम निकालकर ले आई और चटाई पर बिछा दी। कुछ ही दिन पहले उसने नया जाजिम खरीदा है। अभी तक उसने उसका इस्तेमाल भी नहीं किया है। अपने लिए अभी से एक-एक समान जोड़ रही है। लड़कियों को बचपन से ही बड़े होने की ज़िम्मेदारी का अहसास हो जाता है। रामप्यारी भी समझने लगी है कि एक दिन उसका भी ब्याह होगा और उसे मायका छोड़कर ससुराल जाना पड़ेगा। अपने लिए वह एक-एक पैसा जोड़ती है और थोड़ा-बहुत समान सहेज कर रखती है। गरीबों के पास इतने पैसे नहीं होते कि एकाएक वह बहुत सारा सामान खरीद सके। रामप्यारी को अपना हाल मालूम है। इसलिए स्वयं कुछ न कुछ जोड़ती रहती है।

मास्टर साहब नया जाजिम देखकर बड़े खुश हुए। उन्होंने रामप्यारी की ओर देखा। उसकी नजरें झुक गईं। मास्टर साहब ने रामप्यारी के हाथ का जैसे चाय-पानी सब एक साथ पी लिया हो! उनकी आत्मा तृप्त हो गई। गहरी साँस लेते हुए उन्होंने जाजिम पर हाथ फेरा और पालथी मारकर बैठ गए। बैठने के बाद काफी देर तक वे जाजिम पर हथेली फेरते रहे। उसके बाद बोले, "रामा, तुम भी बैठो मेरे सामने। और ये रजिस्टर यहाँ बगल में रख दो।" रामप्यारी मास्टर साहब के सामने बैठ गई। एक तरफ मास्टर साहब, दूसरी तरफ रामा और बीच में मोटा रजिस्टर। मास्टर साहब ने लाल रजिस्टर निकाला और सबका नाम और उम्र लिखना शुरू किया। बगल में नीम के पेड़ में बँधी गाय कान खड़ी करके सुनने लगी। बकरी भी मिमिया उठी। मुहल्ले के एक-दो आवारा कुत्ते भौंकते हुए वहाँ इकट्ठा हो गए और जमीन को खुरचकर मास्टर साहब की ओर मुँह करके बैठ गए। भीड़ देखकर आठ-दस कौए भी पेड़ पर जमा होकर कांव-कांव करने लगे। उसे लगा कि फिर कोई बकरा हलाल हुआ है। बकरे को काटने के बाद उसी नीम के पेड़ पर लटकाकर उसकी खाल उतारी जाती है। कौए इस डाल से उस डाल पर कांव-कांव करते हुए कुदकने-फुदकने लगे। एक लड़के के तो माथे पर ही हग दिया। मास्टर साहब डर गए कि कहीं उनकी सदरी भी काली से सफ़ेद न हो जाए! पर उन्होंने कौए से ध्यान हटाकर लिखना प्रारंभ किया। सबसे पहले उन्होंने रामप्यारी से ही पूछा-

"बता रामा, तुम्हारे बाबा का क्या नाम है?"

"राम पीड़ित मुखिया माहटर जी।"

"उम्र?"

"साठ बरिस सर जी।"

"बरिस नहीं बेटा! वर्ष बोलो।"

"हाँ!उहे माहटरसाहब!"

मास्टर जी हँसे। उन्होंने मान लिया कि रामप्यारी को उच्चारण समझाना व्यर्थ है। पूछना जारी रखा।

"तुम्हारी दादी का क्या नाम है रामू बेटा?"

"दादी त मर गई है माहटरसाहब!"

"ओह! कोई बात नहीं। अपने पापा का नाम बताओ।"

"राम लखनमुखिया सर जी।"

"उम्र?"

"चालीस साल।"

"चाचा का नाम?"

"हमर चाचा नहीं है सर जी! खाली पापा है।"

"ठीक है! तुम कितने भाई बहन हो?"

"सर जी तीन। बड़का भइया का नाम भरत है और छोटका का सतरोहन। आ... आ... हमर नाम त आप जनबे करते हैं!"रामप्यारी मास्टर साहब की ओर देखकर खिलखिला उठी। मास्टर साहब ने बिना कुछ कहे रजिस्टर में सतरोहन को शत्रुध्न लिख लिया। फिर पूछा-

"अब दोनों भाई की उम्र बताओ रामा।"

'बड़का भइया के बीस और छोटकाके सतरह साल।" मास्टर जी ने फिर सतरह को सत्रह किया और पूछा-

"अच्छा!अब तुम अपनी उम्र बताओ।"

रामप्यारी चुप हो गई। वहाँ खड़ी महिलाओं की ओर देखकर शरमा गई। बीच से एक महिला ने आगे बढ़कर कहा, "माट साहब!पियरिया त चौदह साल के हो गिया है!"

मास्टर साहब ने बिना रामप्यारी से कुछ पूछे उसकी उम्र चौदह साल लिख दी। पाँच साल की हो गई थी तब उसने पढ़ना-लिखना शुरू किया था। सात साल की होगई तब उसके पिता ने पहली कक्षा में उसका दाखिला करा दिया। मास्टर साहब ने आगे पूछा, "अब बताओ, किस-किस भाई की शादी हो गई है? ध्यान रखना, जिसकी शादी हो गई है, केवल उसे ही मिलेगा राशन और पैसा। कुँवारे को नहीं!" सुनकर रामप्यारी उदास हो गई। बोली, "माहटर साहब! अभी त केकरोबियाह नहीं हुआ है!" मास्टर साहब ने एक बार रामप्यारी की ओर देखा और रजिस्टर में नोट कर लिया। इसी तरह उन्होंने पूरे मुहल्ले का नाम रजिस्टर में उतार लिया और पीठ सीधी करते हुए रामप्यारी से कहा, "बेटा रामपरि! एक ग्लास पानी पिला दे अब। बहुत तेज प्यास लगी है। तुम्हारे हाथ की चाय फिर कभी पी लूँगा। नहीं तो कहोगी कि मास्टर साहब आए और बिना पानी पिए चले गए!" उन्होंने रामप्यारी की ओर देखकर मुस्कुरा दिया।

इतना सुनते ही रामप्यारी का चेहरा खिल उठा। वह गदगद हो गई। लोटा लेकर भागती हुई चापाकल के पास गई और पहले उसको खूब चलाया ताकि ठंडा पानी निकले। एक हाथ में लोटा और एक में गिलास भरकर ले आई। मास्टर साहब ने पानी पिया और रामप्यारी को ढेर सारा आशीर्वाद दिया। वे चलने को तैयार हुए। महिलाएँ मक्खियों की तरह भनभनाकर एक साथ उठ खड़ी हुईं। कुत्ते भी उठकर भाग खड़े हुए और दूर जाकर पलटकर मास्टर साहब को देखने लगे। बकरी एक बार फिर मिमिया उठी और कौए भी सब उड़ गए। "अब चलता हूँ रामप्यारी!" यह कहते हुए मास्टर साहब चलने को तैयार हुए। उनके जाते-जाते रामप्यारी ने एक सवाल फिर किया, "ई सामान कब मिलेगा माहटर जी?"

"शायद अगले महीने में मिल जाएगा!" इतना कहकर मास्टर साहब वहाँ से चले गए। रामप्यारी के साथ-साथ सभी महिलाएँ उन्हें जाते हुए बड़े ध्यान से देख रही हैं। वे चले गए। अब दिखाई नहीं दे रहे हैं।

अगले महीने गाँव के अंचल में लोगों का हुजूम जमा हो गया। रामप्यारी अपने बाबा और पिता के साथ ब्लॉकजा पहुँची। "अभी शायद बंसवरिया टोली वाले को मिल रहा है। इसके बाद हमारे मुहल्ले का लंबर आएगा" रामापीड़ित ने कहा। "लंबर नहीं बाबा, नंबर बोलते हैं!" इस बार रामप्यारी ने अपने बाबा के अशुद्ध उच्चारण को शुद्ध किया। रामपीड़ित ने भी कहा, "हाँ हाँ उहे!" यह सुनकर रामप्यारी अपना माथा खुजुआने लगी। तभी अंचल की छत पर लगे लाउडस्पीकर से आवाज आई- "ब्रह्मपुर मोहल्ले वाले सब तैयार हो जाएँ।" सुनते ही सभी लोग अपनी-अपनी बोरी का मुँह सीधा करने लगे। वितरण आरंभ हुआ। सबसे पहले सिंह टोली वाले को मिलना शुरू हुआ। रामप्यारी बड़े ध्यान से लाउडस्पीकर की आवाज सुन रही है...

"विनय सिंह, उम्र पचास साल। पचास किलो चावल और पाँच सौ रुपया।" "देवेन्द्र सिंह, पिता विनय सिंह, उम्र बीस साल, पचास किलो चावल और पाँच सौ रुपया।" "गोविंद सिंह, पिता विनय सिंह, उम्र पंद्रह साल, पचास किलो चावल और पाँच सौ रुपया।"

"उमेश सिंह, पिता विनय सिंह, उम्र दस साल, पचास किलो चावल और पाँच सौ रुपया।" लाउडस्पीकर पर आवाज सुनाई दी- "अब ब्राह्मण टोली वाले तैयार रहें।"

"लालबाबू मिश्र, उम्र पचास साल, पचास किलो चावल और पाँच सौ रुपया।" "राजू मिश्र, पिता लालबाबू मिश्र, उम्र पच्चीस वर्ष, पचास किलो चावल और पाँच सौ रुपया।"

"मदन मिश्र, पिता लालबाबू मिश्र, उम्र पंद्रह साल, पचास किलो चावल और पाँच सौ रुपया।" सब को पचास किलो चावल और पाँच-पाँच सौ रुपया मिला। विवाहित-अविवाहित दोनों को। वयस्क-अवयस्क सभी को। रामप्यारी उँगली पर हिसाब लगा रही है कि सब मिलाकर उसको कितना पैसा और चावल मिलेगा। तभी लाउडस्पीकर से आवाज आई- "अब मलाहटोली वाले तैयार हो जाएँ।" रामप्यारी अपने बाबा और पिता के साथ आगे बढ़ गई। एक-एक को चावल और पैसा मिलना शुरू हुआ। लेकिन सब को चालीस किलो ही मिल रहा है। गरीब जनता विद्रोह भी नहीं कर सकती। जो मिल रहा है वही उसके लिए काफी है। भूखे को रोटी चाहिए, वह ताजी-बासी की जाँच पड़ताल नहीं करता। प्यासे को पानी चाहिए, वह कुएं और चापाकल में फर्क नहीं करता। वैसे ही गाँव के गरीब किसान-

मजदूर हैं। विद्रोह किया तो चालीस किलो राशन भी नहीं मिलेगा। उसे राहत सामग्री चाहिए। कितना मिल रहा है, किसको मिल रहा है, इसकी उसे सुध कहाँ! रामप्यारी बोलना चाहती है, पर उसके पिता उसे चुप करा देते हैं, "की कर लेगी तू बोल के? इहाँ के अफसर, दफदार, जमदार सब त ओकरे आदमी है। जे मिल रहा है उहो नहीं मिलेगा। तू चुपरह अभी। एकदम मुँह बंद रख।" रामप्यारी पिता की बात मानकर चुप हो गई है। अचानक रामपीड़ित को सुनाई दिया- "राम लखन मुखिया जल्दी आए।" वह बेटे के साथ झटपट अंदर गया और चावल लेकर वहीं कोने में खड़ा हो गया। उसे लगा कि बेटे के बाद अब उसी का नाम आएगा। बाहर गया तो भीड़ में दोबारा अंदर आने के लिए फिर से धक्का-मुक्की करनी पड़ेगी। वह कमरे के अंदर ही हाथ में बोरी लटकाए भीत से सटकर खड़ा हो गया। लेकिन राम लखन के बाद न रामापीड़ित का नाम आया न उसके दोनों पोते और पोती रामप्यारी का। किसी का नाम उसे सुनाई नहीं दिया। उसके पड़ोसी आ रहे हैं और चावल पैसा लेकर जा रहे हैं। चावल चालीस किलो ही, पर सबके चेहरे हरे-भरे। रामपीड़ित को दरवाजे के पास कोने में खड़ा देखकर चौकीदार ने डपटकर पूछा, "यहाँ क्या कर रहे हो? फूटो यहाँ से! बाहर जाकर अपनी बारी का इंतजार करो!"

"हुजूर! हमर नाम त अभी अइबे नहीं किया है। खाली हमरा बेटा का नाम आया है। इसीलिए हम इहाँ खड़ा हूँ हुजूर! हमरा बेटा को समान मिले बहुते देर हो गिया, पर हमर नाम अभी नहीं लिया हुजूर!" रामपीड़ित ने दोनों हाथ जोड़कर चौकीदार से कहा। "जाओ यहाँ से। बाहर जाकर बैठो। जब तुम्हारा नाम आएगा तो तुम्हें बुला लिया जाएगा। यहाँ भीड़ इकट्ठा मत करो।" चौकीदार ने फिर डाँटा। रामपीड़ित वहाँ से चार कदम पीछे हटकर खड़ा हो गया। वह आधा-एक घंटा तक वहीं खड़ा रहा, पर न उसका नाम आया और न उसके पोते-पोती का। लाउडस्पीकर से आवाज आई- "मुखिया टोली खत्म। अब महतो टोली वाले तैयार रहें।" रामपीड़ित परेशान हो गया। उसका बदन काँपने लगा। पाँव थरथराने लगे। वहीं भीत के सहारे वह बैठ गया। थोड़ी देर बाद उठा और काँपते हुए उसने चौकीदार से शिकायत की। चौकीदार उसे कमरे के अंदर बाबू साहब के पास ले गया। बाबू साहब ने वोटर लिस्ट खोलकर देखा तो उसमें रामापीड़ित का नाम था ही नहीं। बाबू साहब हैरान होकर बोले, "इसमें में तो तुम्हारा नाम है ही नहीं। यह तो बता रहा है कि तुम्हें मरे हुआ चार साल हो गया है। जाओ तुम्हारा नाम इसमें नहीं है। हम तुमको राशन और पैसा नहीं दे सकते हैं।" रामपीड़ित वहीं ग़श खाकर बैठ गया। टेबल के सहारे खड़े होकर बोला, "हुजूर! हम आपको भूत दिखाई दे रहा हूँ? हम आपको जिंदा नहीं लग रहा हूँ हुजूर?"

"तुम वोटर लिस्ट के मुताबिक मर चुके हो रामपीड़ित। रोने-धोने से काम नहीं चलेगा। मेरे हाथ में नहीं है कि मैं तुम पर रहम करके राशन और पैसा दे दूँ। यहाँ तुम्हारे जैसे बहुत हैं। बवाल हो जाएगा। किसी को एक दाना नहीं मिलेगा। बवाल खड़ा करना नहीं चाहते हो तो यहाँ से चले जाओ।"

"ठीक है हुजूर! हम चला जाऊँगा। पर मेरे दोनों पोते और पोती का भी नाम नहीं आया है। ऊ सब तो है न लिस्ट में?" रामापीड़ित ने हाथ जोड़कर बाबू साहब से अपने पोते-पोती का नाम देखने को कहा।

"क्या नाम है उसका?" बाबू साहब ने पूछा।

"जी भरत, सतरोहन और रमपियरिया।"

"हाँ!तुम्हारे बड़े पोते भरत का नाम तो है इसमें।"

"त उसका नाम काहे नहीं आया? उसको भी नहीं मिलेगा का हुजूर?" बड़े कातर भाव से रामापीड़ित ने बाबू साहब से पूछा। "उसको कैसे मिलेगा? वह तो अभी कुँवारा है। उसको नहीं मिलेगा। तुम जाओ यहाँ से।" बाबू साहब ने भारी आवाज में कहा।

"हुजूर! हमर बड़का पोता त बीस साल का हो गिया है। उसका नाम भोंटर लिस्ट में भी है। त उसको काहे नहीं मिलेगा हुजूर? आपने सिंह जी के दस बरिस के बेटे को पचास किलो चावल और पाँच सौ रुपया दिया। पंडित जी के पंडह साल के बेटा को दिया। ऊ दोनों त हमरा सतरोहना से भी छोटा है! आपने त हमरा बड़का पोता का भी नाम नहीं लिया। काहे हुजूर?" रामपीड़ित ने जैसे ही इतना कहा कि बाबू साहब भड़क गए।

"मैंने दिया है उसको? मेरे हाथ में है जो तुम पटर-पटर बोल रहे हो? गार्ड! भगाओ इसे यहाँ से! नहीं जाता है तो जड़ दो दो-चार लाठी इसकी पीठ पर! सारी अक्लमंदी निकाल दो इसकी! हाथ पकाराओ तो सीधा गला पकड़ लेते हैं ये लोग! भगाओ इसे यहाँ से!" बाबू साहेब आग बबूला हो गए। गार्ड आया और धक्के मारकर रामपीड़ित को कमरे से बाहर कर दिया। रामपीड़ित फफक पड़ा। रोता हुआ कमरे से बाहर आया। आते ही रामप्यारी को सीने से लगाकर जोर-जोर से रोने लगा। रामप्यारी ने बाबा के कंधे पर रखे गमछे से उसकी आँखें पोछी। राम लखन ने चावल की बोरी कंधे पर रखी सब घर की तरफ चल पड़े। रामापीड़ित को दिन के उजाले में भी रास्ता धुँधला दिखाई पड़ रहा है। उसकी आँखों से आँसू का बहना बंद नहीं हो रहा है। लोगों की साइकिलों पर दो-दो, तीन-तीन बोरियाँ लदी देखकर उसका कलेजा फटा जा रहा है।

कहानी

मोची

सारिका ठाकुर

जेठ की चिलचिलाती धूप अपने पड़ाव पर थी। रास्ता सूनसान... सब अपने घरों में कैद हो, मानो प्रतीक्षा कर रहे थे मौसम के अनुकूलन की। सड़कों पर एक भी वृक्ष न थे, तो छाँव और हवा की क्या गुंजाइश। किसी गटर के किनारे पोल से दुबक कर बहते नाली के पानी में कुत्ते बेसुध सोए पड़े थे, मानो सोए बगैर काम न चल सकता हो। उसी सड़क पर नंगे पांव कांध में बक्सा लिए चल रहा था वहा घाम में पसीने से शरीर लथपथ है, आंखों पर कुछ बूंद टपक उसे और परेशान कर देते हैं। वह हाथ से पसीना पोछ आंख खोलने का प्रयास करता है और बीच बीच में बोल पड़ता है-

"मोची... मोची..."

"सिलवाइए, जूता चप्पल सिलवाइए....."

और इधर उधर देखता है, पर उसकी आवाज सुनने वाला भी कोई नहीं। कुत्ते भी कनखी मार कर देख फिर अपनी प्रारंभिक अवस्था में लौट जाते हैं। तभी एक दरवाजा खुलता है। वह आस से ठहर जाता है, पर मोहल्ले की एक महिला जूठन फेक उसे घूरकर चली जाती है। कुत्ते आहट पाकर लुझ पड़ते हैं और वह मूक बना देखता भर रहता है। अचानक एक ही स्थान पर खड़े-खड़े उसके पैर जल उठते हैं और वह उससे बचने के लिए पैर बढ़ाता है और फिर धीमें स्वर में कह उठता है-

"क्या भाग्य का खेल है! साथ एक जोड़ी चप्पल भी नहीं और इहो टूट गया। टूटा सो टूटा, पहनने लायक भी नहीं बचा। चार पैसा की आमदनी भी नहीं..."

वह सोच रहा था, कुछ पैसा आ जाए तो आज लौट पड़े, क्योंकि आज उनकी हिम्मत मानो जवाब दे रही थी। तभी एक घर का किवाड़ खुलता है और पैंतीस वर्षीय महिला निकलती है। महिला धीमें स्वर में बोल उठती है:

"बाबा! चप्पल सी देंगे?"

उसकी आंखों में आशा की चमक आ गई, मानो आज का काम हो गया और रोटी का इंतजाम भी...। झट हुलस कर बोला- "हां बेटा! सिलने ही तो आए हैं। लाओ, लेते आओ"

स्त्री चप्पलों का ढेर लेकर आती है। करीब आठ जोड़ी चप्पल। मानो कितने वर्षों से जमाए रखा हो उसने उनके सामूहिक इलाज हेतु। वृद्ध खुश था, कि ईश्वर के घर देर है,

सारिका ठाकुर महात्मा गाँधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र में पी-एच.डी. शोधार्थी हैं।

अंधेर नहीं। मोल-भाव हुआ और सत्तर रूपये में बात तय हुई। कुछ देर रुक कर अंगड़ाई लेती हुई वह भीतर चली गई।

काम तो वाकई बड़े देर का था। धूप भी वैसी ही, उमस अब भी वैसी ही और उस पर लू... । वह वहीं दरवाजे पर अपना टूटा छाता निकालकर, लगा बैठ गया और ऑपरेशन शुरू किया। बीस वर्षों का अनुभव साथ दे रहा था, पर ना उसका मन साथ देता। पैरों के छल्ली होने, पेट भूख के मारे ममोड़ने और उम्र के तोड़ने से वह कुछ शिथिल पड़ता जा रहा था। विवशतावश हिम्मत बांध काम में जुड़ जाता। रह-रह मन में विचार उठते- "कल बीमार भी पड़ा तो रोटी को न सोचना पड़ेगा। आज पेट भर सब खाएंगे... । वह कितनी खुश होगी..."

उनकी कोई संतान न थी। बस पत्नी ही सहचरी और सर्वस्व। जीवन रुपी ईश्वर का सत्कार कर रहे थे हर हाल में। इन्हीं सब पर सोचते-सोचते उसने काम सार दिया था। दोपहर भी बीतने वाली थी। सड़कों पर हल्की चहल-पहल शुरु थी। चट काम सार उसने आवाज दिया-

"हां बेटी! सिल गया।"

आवाज ना आने पर दरवाजे की कुंडी बजाई। महिला आंख मलती बाहर आई.

"हो गया बाबा?"

"हां! हां! देख लो बेटी। जहां तक बन पड़ा कर दिए। अभी चलेगा बहुत दिन।"

"हाँ! तो नया था। खाली सिलाई टूटा था।"

वह अपना सामान भरने लगे। महिला ने चालाकी करके एक जोड़ा चप्पल घर की तरफ फेक दिया। उसने ध्यान नहीं दिया।

"पैसा दे दो बेटी। बहुत समय हो गया। जल्दी जाना है"

"हाँ! अब तो जल्दी जयबे करेंगे।"

वह अचंभित देखता भर रहा। अचानक इस मृदुल ध्वनि में कर्कशता कैसे आ मिली। महिला बोले जा रही थी: "ऐसे कैसे दे-दें। हाँ?"

उसकी आँखे तन गयीं। क्रोध झलकने लगा और अलग ही व्यवहार में पेश आना शुरु कर दिया उसने। वृद्ध ने विनय के स्वर में कहा: "क्या हो गया बेटी?"

"बप! बप! बेटी मत कहिए। आपको बाबा क्या बोल दिये, मन बढ़ गया!"

"ऐसा क्या किया हमने?"

"क्या किये? सात जोड़ा दिए थे न? आपलोग विश्वास के लायक नहीं है। सात सौ का चप्पल था।" अब वृद्ध का ध्यान जोड़ों पर गया। वाकई सात ही थे। वह हतप्रभ हो गया और इधर उधर नजर दौड़ाने लगा। महिला का क्रोध परवान पर था। वह चुप होने का नाम ही नहीं लेती।

उसने सहम कर कहा: "देखो बेटी! तुम ही भीतर ले गई होगी देखते-देखते! और कोई आया नहीं है।"

तब तक वह और बुरी तरह से उस पर टूट पड़ी: "हे राम! हमको चोर कहते हैं। छोटे जात का आदमी। हम चोर हैं?"

"नहीं! नहीं बेटी! मेंरी इतनी जुर्रत। हम तो..."

"चुप! एकदम चुप! अभी बुलाए मोहल्ले वालों को? यहाँ घुसना बंद हो जाएगा।"

"नहीं बेटी! हम तो इस धूप में दर-दर भटक कर चार पैसा कमा कर गुजर-बसर करते हैं। गरीब के पेट में लात मत मारो बेटी।"

आसपास के लोग एकत्र हो चुके थे और वृद्ध को संदेह की दृष्टि से देख रहे थे। वह चुपचाप दोनों हाथ जोड़े खड़ा मानो अपराधी हो। आंखों से आंसू झर रहे थे। हृदय दुःख से फटा जा रहा था। एक के पूछने पर मानो अवसर मिलते ही वह गढ़ी-गढ़ी बातें सुनाना शुरू कर दी। शाम हो चला था। अब उसे ना भूख लगी थी और ना ही प्यास। कलेजा धक-धक कर रहा था। जाने क्या होगा? बात पूरे मोहल्ले में फैल गई। महिला ने झुंझलाकर कहा: "अब खड़ा काहे है? जाईए, भागिये यहाँ से"

पैसे....????

"पैसा? बच गये सही सलामत, सुकर मनाईए। नहीं तो पुलिस बुलाकर अंदर करा देते हम। हमको तो पहले ही शक था। खुद के पैर में चप्पल नहीं, का पता घरवाली का भी न हो। तो ई बहाने वही करने आए हैं। जाइये।" और मोहल्ले की स्त्रियों के साथ कथा बाचने में व्यस्त हो गई। उसके हाथों में शक्तियां मानो समाप्त हो गयी थीं। भीतर-भीतर कुछ टूट रहा था, जिनकी आवाज बाहर के शोरगुल में अपना अस्तित्व खो देती थी। आंखों से धार का बहना जारी था। मन कुछ चिंतित, कुछ सशंकित कि अब क्या? समय भी समाप्त हो चला है और हिम्मत तो आधे दिन ही साथ छोड़ चुकी थी। मानो शाम तक का मोहलत दी हो जैसे। धीरे से अपना बक्सा दोनों हाथों से उठा कांध पर पहुंचाने का असफल प्रयास करता, पर सफल ना हो पाता, पर अंततः सफलता हाथ लगी। उसी घर से एक छोटा बालक निकलकर हाथ लगा, कंधे तक पहुंचा उसे देखता भर रहा। मानो वह सत्य को पढ़ रहा हो उन डबडबी आंखों से... । बच्चे के सर पर हाथ फेर वृद्ध धीरे-धीरे आगे बढ़ गया। वह खड़ा उसे देखता भर रहा...

कहानी

ब्राह्मणो मम् दैवतम् !

डॉ. शक्तिराज

सुबह के चार बजने में थे। साइलु अपने घर के आँगन में झूले नुमा चारपाई पर सोने की असफल कोशिश कर रहा था। आँखों में गहरी नींद तो थी, पर नींद है कि उसे आ ही नहीं रही थी। उसे नींद न आने के तीन कारण थे। पहला यह कि जाड़े के दिन थे। घर के बाहर ठण्ड इतनी ज़्यादा थी कि मानो बदन में बहनेवाला खून भी जम जाय। दूसरा, उसके तन पर ओढ़ने के लिए कुछ भी नहीं था। घर के अंदर सो रहे पत्नी और बच्चों में से किसी को जगा सकता था वह, पर 'क्यों उनकी नींद खराब करें' इस विचार से उसने ऐसा नहीं किया। तीसरा कारण यह भी था कि उसे बस कुछ ही देर बाद काम पर जाना था।

उसे घर आये महज एक-डेढ़ घंटा ही हुआ होगा। देर रात तक तो वह, अपने गाँव मदनूर के सरपंच वेदप्रकाश जी के घर पर काम करता रहा। कल सरपंच जी के घर में शिव पूजा का विशाल कार्यक्रम था। बहुत ही भव्य-दिव्य कार्यक्रम। पंडित लोगों की मंडली ने मिल-जुल कर मुहूर्त निकाला था। विशेष बात यह कि कल ही के दिन पूरे गाँव में सत्यनारायण की पूजा भी थी। लेकिन सरपंच जी के घर विशेष पूजा का आयोजन था। साइलु काम का पक्का और ईमानदार था। इसीलिए सरपंच जी ने उसे अपने घर बुला लिया। सात-आठ दिन से वह ग्राम पंचायत की ड्यूटी कर के वेद पटेल (वेदप्रकाश) जी के घर पर काम करने जा रहा था।

विशेष पूजा के लगभग एक हफ़्ते पहले से ही दूर-दूर से पंडित-पुजारी लोग पटेल जी के घर आने लगे थे। घर का माहौल पूरी तरह से बदल गया था। पुजारियों का एक जत्था, जो बहुत पहले उनके यहाँ पहुँचा था। वह जैसा निर्देश देता पटेल जी का पूरा परिवार उसका पालन करता। उनके कहने पर छोटे-छोटे बच्चों तक से जबरन उपवास आदि करवाया जा रहा था। साइलु को ये नौटंकी देख कर बहुत गुस्सा और हंसी आती। वह मन ही मन कहता कि "ये लोग शरीर से नहीं बल्कि अपने जेहन से अपाहिज़ हैं।" पुजारियों ने जहाँ पूजा का मंडप बनाने को कहा था साइलु ने वहाँ बहुत ही शानदार मंडप बनाया। पूजा के दिन भोर होने से पहले ही वह कई तरह के फल-फूल-पत्ते आदि ले आया और पुजारियों के हवाले कर दिया। वे साइलु के काम को देख कर बहुत प्रसन्न हुए।

डॉ. शक्तिराज वर्तमान में टी. जी. टी. हिंदी विषय, तेलंगाना स्टेट मॉडेल स्कूल एण्ड जूनियर कॉलेज, कामारेड्डी, तेलंगाना में कार्यरत हैं।

पूजा शुरू हुई। गाँव के सम्मानित लोग, नए-पुराने मित्र, राजनीति के धुरंधर नेता, मेहमान आदि से घर और घर का पूरा परिसर भर गया था। मेहमानों को बैठने के लिए बड़े-बड़े टेंट ओढ़ कर उसमें कुर्सियां बिछाई गई थी। घर का वातावरण मंत्रोच्चारणों से गूँज उठा। कुछ देर बाद हवन भी शुरू हुआ, जिसके कारण घर में इतना ज्यादा धुँआ फ़ैल गया कि मानो ठंड के मौसम का कोहरा छा गया हो। छोटे बच्चों के रोने की आवाज़ मंत्रोंच्चारण में गुम हो रही थी। हवन का धुवाँ बढ़ता ही जा रहा था। ठीक से कुछ दिखाई भी नहीं दे रहा था। पूजा के लिए आये लोगों के आँखों की सिकुड़न देख कर ऐसा लग रहा था कि मानो सब के सब चीन के नागरिक हों। कुछ लोग अपनी आँखों को बेरहमी से मल रहे थे तो कुछ खाँस भी रहे थे। भीगी बिल्ली की तरह सब लोग चुप बैठे थे। इतने में "आग ! आग!" की शोर मच गई। हवन कुंड से उठने वाली चिंगारियों से आंगन में लगे टेंट में हल्की सी आग लग गई थी। लेकिन देखते ही देखते लोगों ने बाल्टियों और घड़ों में पानी भर भर कर उस हल्की सी आग को बुझाकर पूरा टेंट गीला कर दिया। पूजा के दिन ऐसा अपशकुन लोगों को अच्छा नहीं लग रहा था। लेकिन किसी की मजाल कि कोई सिर उठा कर बोल दें। सभी लोग इस बात को लेकर राहत की सांस ले रहे थे कि जान-माल का नुक़सान नहीं हुआ था। आग को अपना विकराल रूप लेने से पहले ही बुझा दिया गया। घटना के कारण पटेल जी का चेहरा थोड़ा सा निस्तेज हुआ। लेकिन थोड़ी ही देर बाद एक बुज़ुर्ग पंडित ने सभी लोगों की खुसर-फुसर सुन कर बड़ी अजीब बात कह दी। "जय हो बम भोले!" लोगों का अटेंशन उनकी ओर चला गया। वे बोले "शिव जी के विशेष पूजन के अवसर पर इस तरह की आग लगने वाली घटना का घटनाशास्त्रों में बहुत ही शुभ संकेत माना जाता है। आप निश्चिंत रहें। साक्षात शिव जी ही इस भव्य दिव्य पूजा में अपनी उपस्थिति दे गए हैं। वे खुद अपनी तीसरी आंख खोल कर इस हवन में अग्नि छिड़क गए हैं।" फिर क्या था, कुछ लोग "शिवजी की जय !" के नारे लगाने लगें तो कुछ लोग "महादेव की जय!" अन्य कुछ लोग "हर हर महादेव !" की पुनरावृत्ति करने लगे। घर का माहौल ही कुछ अलग था। इस पूरे घटनाक्रम को साइलु देख रहा था। वह सोच में पड़ गया कि "पटेल जी अमीर हैं इस लिए उनके घर में आग लगना भी अच्छा होता है। अगर यही घटना किसी ग़रीब के घरमें घटती तो ये पुजारी लोग न जाने क्या क्या सुनाते!"

कुल मिलाकर आज पटेल जी के घर में पुजारियों का ही बोल-बाला था। उनके कहने पर बैठना और उन्हीं के कहने पर उठना। वेद पटेल का पूरा परिवार, जो हमेशा जंगल के शेर की तरह व्यवहार किया करता था, आज वह सर्कस के शेर की तरह अपनी पूँछ को दोनों टाँगों के बीच लाने को मजबूर था। सरपंच जी के घर वालों पर खुले बदन में धागा बंधे और कच्छा पहने हुए लोगों का कब्ज़ा था।

> कल-परसों तक सरपंच जी के घर का ही एक सदस्य समझे जाने वाले और घर में बे रोक टोक कहीं भी घूमने-फिरने, घर के सदस्यों को छूने तथा कहीं पर भी बैठकर खाने-पीने वाले साइलु के साथ आज सब लोग 'टच मी नॉट' पौधे की तरह व्यवहार करने लगे थे। आज वह उस पूजा के मंडप को छूना तो दूर उसके करीब भी नहीं जा पा रहा था, जिसे वह अपने ही हाथों से बनाया था। साइलु को बहुत अजीब लग रहा था इस तरह का व्यवहार। वह अपने आप से पूछने लगा कि "इस विशाल पूजा-पाठ से किसे लाभ होने वाला है? भगवान शिवजी को? सरपंच के परिवार को? गाँव वालों को? पूजा में शामिल अतिथियों को? या हवन के धुंवे से ख़राब हुई आँखों का इलाज़ करनेवाले वैद्य को? या फिर इन पंडितों को?"

हवन के समाप्ति के बाद भोजन की व्यवस्था की गई थी। साइलु के साथ-साथ पंचायत के अन्य लोग वेटर की तरह मेंहमानों को खाना परोस रहे थे। वैसे कहने को तो यह कार्यक्रम निजी था। लेकिन उसमें काम करने वाले सब ग्राम पंचायत के सरकारी लोग ही थे। सेक्रेटरी से लेकर सफाई कर्मचारी तक लगभग सभी लोग उनके घर पर अपनी-अपनी सेवाएँ दे रहे थे। साइलु और उनके साथियों का, जो साफ-सफाई करना, पोछा लगाना और लोगों के द्वारा खाये हुए झूठे पत्तलों को उठाने का काम करते थे, बहुत ही बुरा हाल था। सबसे ज्यादा वे ही काम कर रहे थे। 'फोर्थ केटेगरी' के लोगों से जबरन काम करवाने का पुराना रिवाज़ यहाँ भी अपने चरम पर था। पुरे गाँव में सफाई से संबंधित कार्य, चाहे वह नालियों को साफ करने का हो या सडकों की सफाई का, साइलु और उसके साथी ही करते थे। गाँव को साफ़ रखना साइलु का अपने नौकरी के प्रति समर्पण भाव और कर्त्तव्य था तो गाँव के प्रथम नागरिक सरपंच जी के घर को साफ-सुथरा रखना उसकी मज़बूरी थी।

पूजा-पाठवाला प्रोग्राम तो कब का ख़त्म हो गया था। लेकिन घर की साफ़-सफाई, पोछा और बर्तन माँजना इन सभी

कामों से निपटते निपटते रात के तीन-साढ़े तीन बज चुके थे। सरपंच जी के घर से अपने-अपने घर वापिस लौटने वालों में अंतिम व्यक्ति साइलु ही था।

साइलु की उम्र यही कुछ चालीस-पैंतालीस वर्ष होगी। पति-पत्नी दोनों अशिक्षित हैं। एक छोटा-सा घर है उनका। दो संतान-बेटी और बेटा ऐसा छोटा-सा परिवार। दोनों बच्चे पढ़ने में तेज। औरों की तुलना में उन्हें पढ़ने-लिखने के लिए सुविधाएँ बहुत कम थीं फिर भी वे अव्वल थे। गाँव वाले कहा करते थे कि "खानगी (प्राइवेट) इस्कूलों में अपने पोट्टों (बच्चों) कु पढ़ाने जितनी इसकी औकात नै है इसके पास। इसके पोट्टे सरकारी इस्कूलों में पढ़ते। फिर भी हमारे बच्चों से हुशार है साले! हमारे बच्चों के जैसा इसके पोट्टों कु टिवशन नै है कुछ भी नै है फिर भी साला...!" अपने बच्चों को इस तरह शार्प बनाने में साइलु और उसकी पत्नी सावित्री का बहुत बड़ा योगदान था। वे दोनों बहुत मेहनती थे। साथ ही साथ तार्किक भी। समय के वे बहुत पाबंद थे। मेंहनत किये बिना लोगों को बेवकूफ़ बना कर अपना पेट भरना उन दोनों को भाता नहीं था। वे अपनी मेंहनतको ही सर्वस्वमानते थे।उन्हें कभी किसी मंदिर में, गिरजाघर में या किसी मज़ार पर माथा टेकते हुए किसी ने देखा नहीं था।

हाँ ! तो मैं बता रहा था कि साइलु को नींद नहीं आ रही थी। जैसे-तैसे वह सो भी जाता पर पाँच सवा-पाँच बजे उसे झाड़ू हाथ में लिए काम पर भी तो जाना था। कल के प्रोग्राम में साइलु के द्वारा दिन और रात तमाम काम करने की बात पंचायत सेक्रेटरी और सरपंच वेदप्रकाश जी दोनों को मालूम थी। लेकिन किसी के मन में उसे सुबह के काम पर जाने से 'एक्सक्यूज़' देने का ख़याल नहीं आया। उसका शरीर पूरी तरह से थक गया था। बाहर ठण्ड बढ़ रही थी। कुछ देर बाद काम पर जाना है इसकी भनक किसी घड़ी के अलार्म की तरह उसके कानों में सुनाई दे रही थी। कुछ देर वह चारपाई में करवटें बदलता रहा। अब तक वह नींद न आने के कारण परेशान था। लेकिन जैसे जैसे समय बीतता गया वैसे वैसे उसकी पलकें बोझिल होकर झुकने लगीं। उसे यक़ीन हो गया कि अब यदि नींद आ जाती है तो उसे काम पर जाने में देर होगी ही। ऐसा सोच कर वह नींद को भगाने के लिए अपनी चारपाई से उठा। ठंडे पानी से ही हाथ-मुँह धो लिया। कुछ देर चारपाई पर बैठे अपने घर के बंद किवाड़ को निहारते रहा। ठंड के कारण बदन काँप रहा था। उसने एक बहुत बड़ी जम्हाई कुछ इस अंदाज में ली कि मानो पुरे ठंड को निगल लेना चाहता हो। लेकिन दूसरे ही क्षण वह अपने बड़े मुहँ से अंदर लिए हुए हवा को "आय्य्य....आय्य...आय..!" कहते हुए बाहर कर दिया। ठंड को बर्दाश्त करना अब उससे नहीं हो रहा था। इसलिए वह खटिया से उठ कर सूखी लकड़ियाँ आदि इकट्ठा कर जलाने लगा। वह आग को अपने दोनों हाथों में कैद करने की चेष्टा कर रहा था। कुछ देर बाद, जब आग की लपेटें पूरी तरह से शांत हो गईं, वह उठा और झाड़ू लेकर ग्राम-पंचायत की ओर चल पड़ा।

गाँव में लोगों की चहल-पहल बढ़ रही थी। कोहरा छाया हुआ था। वह ग्राम-पंचायत में पहुंचा। अन्य लोग भी पहुँचें थे। उनका मुखिया हन्मन्लू सबको किन-किन गली-मोहल्लों में जाकर झाड़ू लगानी है और नालियों की सफ़ाई आदि करनी है बारी-बारी बता रहा था। साइलु की बारी आई तो हन्मन्लू ने कहा- "अरे साइलु !"

"हाँ बोलिये!" साइलु ने कहा। उसकी आवाज़ में जाड़े की नमी थी।

मुखिया ने अपने हाथ में थामी हुई सूचि देखते हुए बोला- "आज न...! तू..ऊ ऊ...! ऐसा कर, गांव के बाहरवाले दक्षिण मुख हनुमान और राम मंदिर के परिसर में झाड़ू लगा ले !"

"ठीक है साब" - ऐसा कह कर वह आगे बढ़ा।

"अरे सुन!" - हन्मन्लू ने उसे रोका।

"हाँ बोलिए" - साइलु पीछे मुड़ा। अपने दाहिने हाथ में पकड़े लंबे झाड़ू को बाएँ हाथ के बगल में रख कर दोनों हथेलियों को रगड़ने लगा ताकि हथेलियाँ गर्म हो जाय। मुखिया बोलने लगा- "मुझे पता है कि तू कल रात हमारे लौट आने के बाद भी काफी देर तक सरपंच जी के घर पर काम करता रहा। इसीलिए आज तुझे बहुत कम काम दे रहा हूँ। तुझे सिर्फ राम मंदिर के चारों ओर के परिसर में झाड़ू लगाकर चले जाना है बस्स!"

साइलु हन्मन्लू की असलियत बहुत अच्छी तरह जानता था। उसकी बात अभी पूरी हुई भी नहीं थी कि साइलु ने कहा- "मैं जानता हूँ साब! कि काम कितना कम है। कल 108 घरों (परिवारों) ने मिलकर लछमीनारायण (लक्ष्मीनारायण) की पूजा की थी। पूरा मंदिर कचरे के ढेर में बदल गया होगा। कल के उस पूजा-पाठ में इस्तेमाल में लाये गए केले के पत्ते झाड़ू मारकर जमा नहीं कर सकते। पहले उनकु हाथों से उठाकर दूर फेंकना पड़ता। फिर झाड़ू लगाना पड़ता। किस नज़र से तुमको ये काम कम दिखता है मुखिया जी?" अब साइलु की आवाज में जाड़े की नमी नहीं थी।

"अरे ! ऐसा नै है रे...!" मुखिया ने साइलु की आवाज में आई गर्माहट को भाँप कर कहा। वह अपनी सफ़ाई देने ही वाला था कि साइलु ने "चलता मैं!" ऐसा कहकर अपनी बाँई काख में थामें झाड़ू को फिर से दाहिने हाथ में पकड़कर राम मंदिर की ओर कदम बढ़ाने लगा।

दिन निकल आ रहा था । फिर भी हल्का-सा कोहरा छाया हुआ था । लोग अपने-अपने काम में मशगूल थे । जहाँ-तहाँ अलाव जल रहे थे । चारों ओर धुआँधार वातावरण था । साइलु अब बस थोड़ी ही देर में राम मंदिर पहुँचने वाला था । वह जैसे-जैसे मंदिर के करीब आने लगा वैसे-वैसे उसे मंदिर के चबूतरे पर एक धुंदली-सी आकृति नजर आने लगी । वह आश्चर्यचकित होकर, मन ही मन सोचने लगा कि "मंदिर के पुजारी तो कभी इतनी जल्दी आते नहीं यहाँ । और तो और आज न ही कोई विशेष पूजा-पाठ भी है यहाँ । मंदिर के चबूतरे पर दिखाई देने वाली उस अस्पष्ट आकृति की ओर देखते हुए और कुछ सोचते हुए वह आगे बढ़ रहा था । जब वह मंदिर के परिसर में पहुँचा तो वहाँ केले के पत्तों और पूजा की सामग्री आदि की सड़ती गंधनाच रही थी । सहसा उसे यकीन हुआ कि वह आकृति किसी बूढ़े आदमी की है । उसने देखा कि राम मंदिर के चबूतरे पर वह बूढ़ा आदमी अपने घुटनों को छाती से चिपकाए हुए बैठा है । साइलु ने यह भी गौर किया कि कभी वह अपने सिर को दोनों घुटनों में रख कर जोर-जोर से और सिसक-सिसक कर रोता, तो कभी वह अपने सिर को शतुरमुर्ग-सा ऊपर उठा कर इधर-उधर देखने लगता । साइलू उस बूढ़े व्यक्ति के करीब आ गया । उसने देखा कि बूढ़े व्यक्ति ने रंग-बिरंगी कपडे पहन रक्खे थे । गले में कई रुद्राक्ष की मालाएँ थीं । माथे पर चन्दन का बड़ा-सा टीका था । उसने अपने सिर के सफ़ेद बालों को किसी साधु-संत की तरह ऊपर की ओर बाँध रक्खे थे । उसका यह अवतार साइलु को विचित्र-सा लग रहा था । उसे लगने लगा कि यह बूढ़ा आदमी किसी नाटक मंडली या किसी सर्कस में काम करता होगा और वहीं पर किसी से लड़-झगड़ कर, बिना कपडे बदले भाग आया होगा । साइलु उस बूढ़े आदमी के पास खड़े होकर पूछने लगा- "अरे भाई ! कौन हो तुम? कहाँ से आये हो? और ऐसे फूट-फूट कर रो क्यों रहे हो?"

लगातार दो-तीन सवाल पूछे जाने पर बूढ़ा आदमी, जो घुटनों में अपना सिर दबाकर रो रहा था, अपना रोना बंद कर अपने आपको थोड़ा-सा सम्हाल लिया । अपनी सफ़ेद और लंबी दाढ़ी के बालों पर हाथ फेरते हुए साइलु की तरफ देखने लगा । तभी साइलु ने गौर किया कि उसकी आँखें एकदम लाल थीं । वह फिर सोच में पड़ गया कि शायद बहुत देर तक रोते रहने के कारण आँखें लाल हुई होंगी या रात भर न सोने की वजह से या फिर ठर्रा वगैरह पी रक्खी होगी उसने । तभी बूढ़ा आदमी अपनी आँखें हथेलियों से पोंछते हुए साइलु के सवालों का जवाब दिया कि – " हम ब्रह्मा हैं वत्स...! ब्रह्मा! हम स्वर्गलोक से यहाँ पधारे हैं, और इस समय हम बहुत दुखी हैं ।"

इतना सुनते ही साइलु को पूरा यकीन हो गया कि यह कोई गयी हुई चीज है । और पक्का वह किसी नाटक मंडली में काम करता होगा । फ़िलहाल बहुत पी रखने के कारण उसे कुछ याद नहीं आ रहा है । बूढ़े व्यक्ति को फटकार लगाते हुए व्यंग्य में साइलु ने कहा- "ओ...ओ...! ब्रह्माण्ड के कर्ता-धर्ता ! चल..! अब अपनी नौटंकी बंद कर के अपने घर का रास्ता पकड़ । अगर तुझे किसी ने यहाँ ऐसे पिये हुए हालात में देख लिया न..? तो याद रखना पूरा स्वर्गलोक याद आ जायेगा ।"

"अरे...मुर्ख..!" उस बूढ़े ने अपनी लाल-लाल आँखें फाड़कर इतने जोर से चिल्लाया कि मानो कान के परदे फट-से जाय । साइलु स्तब्ध रह गया । वह शक की नज़र से उसे देखते हुए सोचने लगा कि "इस बूढ़े आदमी में इतनी ताक़त कि पूरा मंदिर ही गूँज उठे? ज़रूर कुछ तो गड़बड़ है ।" बूढ़ा आदमी एकदम गुस्से से साइलु की तरफ देख कर जोर से चिल्लाते हुए बोल पड़ा- "हमने कहा था न...! कि हम ब्रह्मा हैं, स्वर्गलोक के रहनेवाले !"

तभी साइलु ने तर्क के साथ धीमी आवाज़ में कहा- "ठीक है, ठीक है! अगर तुम असल में ब्रह्मा ही हो तो फिर ऐसे फूट-फूट कर रोने का क्या मतलब? लोग कहते हैं कि यह पूरा गोला (ब्रम्हाण्ड) तो तुम्हारे ही कब्ज़े में है । ऐसा भी कहते हैं कि तुम ही पूरे बिस्व (विश्व) के सुख-दुःख के कर्ता-धर्ता हो । फिर ऐसे... यहाँ...मंदिर के चबूतरे पर बैठ कर रो...ना...!" उसने हिचकिचाते हुए फिर से कई सारे सवाल जड़ दिए । इतने सारे सवाल पूछे जाने के बाद वह मंदिर के चबूतरे से नीचे उतरा और धीरे धीरे आगे बढ़ते हुए एक विचित्र-सी हँसी हँसते हुए बोलने लगा- "हाँ ! हाँ ! यह सच है कि हम ही इस सृष्टि के सुखकरता-दुखहरता हैं, किंतु... किंतु...!" बीच में ही उसने अपनी बात रोक दी । थोड़ी देर चुप रहा । साइलु भी चुप चाप उसकी ओर देखने लगा । कुछ देर बाद वह अपनी दोनों बाहों को फैलाकर सिर को आसमान की तरफ उठाया । सड़क के बीचों-बीच लंबी-लंबी छलाँग लगाते हुए दौड़ने लगा । साथ ही साथ जोर-जोर से रोने भी लगा । ऐसे ही दोनों बाहें फैलाये, रोते और छलाँग लगाते हुए कुछ दूर जाने के बाद वह बहुत ही जोर-जोर से चिल्लाते-रोते हुए कहने लगा- "देवाधीनं जगत्सर्वम्, मंत्राधिनंच दैवतम्, ते मंत्रा: ब्राम्हणाधिनं, ब्राह्मणो मम दैवतम् !"

साइलु उस रोते-उछलते-कूदते आकृति की ओर देख रहा था । उसके मस्तिष्क में एक विचारपूर्ण और तार्किक सवाल हिलोरे मारने लगा कि "क्या सच में 'इन लोगों' के पाखंड से देश का बहुसंख्यक जनसमुदाय और तथाकथित भगवान भी त्रस्त हैं ?"

कहानी

सरस्वती

रमेश चन्द्र

सरस्वती को आनुवंशिकी में निरक्षरता पहली विरासत के रूप में मिली थी। यूँ उसके निरक्षर माँ-बाप ने उसका नाम कुछ सोच-समझकर रखा था, परंतु उन्हें न मालूम था कि उसका अर्थ क्या है। घर में एक कैलेंडर था। उस पर सरस्वती देवी की सुंदर-सी मूर्ति बनी थी। इसलिए उसकी सुंदरता को देखते हुए उसने अपनी बेटी का नाम उसके नाम पर रख दिया था। विद्यादेवी को यह भी नहीं पता था कि वह विद्या की देवी है।

विद्या के क्षेत्र में विद्या की देवी नामा सरस्वती पाँचवीं कक्षा तक ही पहुँच पाई थी। पाँचवीं कक्षा में भी वह पहुँच तो गई थी, परंतु उसे पास नहीं कर पाई थी। विद्यादेवी की नजर में उसके फेल होने का कारण कुछ और ही था। एक बार जब उसके भाई ने उससे कारण पूछा तो विद्यादेवी ने कहा- 'भाई छोरी पास तो हो जाती पर म्हारा भाग ही माड़ा था।'

'क्यों क्या बात हो गई? बीमार हो गई थी क्या?' भाई ने पूछा।

'नहीं, बीमार तो नहीं हुई।'

'तो पेपर नहीं दे पाई क्या?'

'नहीं, पेपर भी खूब अच्छी तरया दिए।'

'तो कोई और बात हो गई?'

'नहीं, कुछ भी बात नहीं हुई।'

'तो फिर क्या हुआ?' भाई ने जोर देकर पूछा।

'इसकै साथ गड़बड़ी हो गई।' विद्या देवी ने लंबी सांस लेकरकहा।

'क्या गड़बड़ी हो गई?'

'भाई इसनै नकल ना मिली!'

विद्यादेवी का भाई अपना सिर थामकर रह गया। उसने उसे समझाने की कोशिश की, परंतु वह नहीं समझी। उलटे उससे बोली- 'ना भाई, इसके साथ तो गड़बड़ी हुई सै। जब सारी छोरी पास हो गई तो के या ही ना पास हो थी? तू ही देख, वा चमारा की छोरी भी पास कर दी, पर या फैल कर दी। इस बार मास्टराँ नै बड़ा जुल्म करा। छोरी कै आगै-पीछै अलग-अलग क्लाशाँ की छोरी बैठा दी। किसी तै पूछण भी ना पाई।

रमेश चन्द्र हिन्दी साहित्य के वरिष्ठ साहित्यकार हैं। वर्तमान में केंद्रीय नागर विमानन मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा गठित हिन्दी सलाहकार समिति के सदस्य के रूप में कार्यरत।

अर उठ कै जाण लागी तो उठण ना दी। किसी तै बोलै तो बोलण ना दी। जगह-जगह पुलिस वाला खड़ा कर दिया। तू ही बता, इसकै साथ जुल्म हुया कै ना? जालमाँ नै इतनी सुथरी छोरी भी फैल कर दी!'

भाई अपनी हँसी रोके न रोक सका। लेकिन विद्या देवी थी कि बोलती ही जा रही थी। उसने फिर कहा- 'अर जुल्मियाँ नै इतणा तै भी ना सआरी। म्हारा खुशिया देवर कह रहा था उन नै छोरी का पर्चा भी तो सब तै बाद में ही देख्या। छोरी नै के नम्बर मिलते? तब तक सारे नम्बर ही खत्म हो गए? छोरी फैल ना हो तो के करै? अर हुया ना जुल्म?'

विद्या देवी का भाई बहन की अज्ञानता पर अंदर ही अंदर सोचता रहा। उसे इस बात का बड़ा दुख हुआ कि अनपढ़ व्यक्ति कितने अज्ञान में रहता है। उसे जैसे चाहे कोई बहका दे। और भाई को तो यह भी मालूम था कि इसने उसका नाम तो सरस्वती देवी रख दिया था, परंतु यह उसे पढ़ने बिल्कुल नहीं देती थी। हमेशा घर के कामों में ही लगाए रखती थी।

> उसे इस बात से कोई लेना-देना नहीं था कि औरतों की दशा सुधारने के लिए कितने समाज-सेवकों ने दहेज, सती, अशिक्षा, बाल-विवाह, पर्दा, कन्या वध जैसी कितनी ही प्रथाओं को खत्म करने के लिए अपना जीवन होम कर दिया। उसे यह भी नहीं पता था कि इन सब बातों का ज्ञान शिक्षा से होता है। परंतु यह वह बहुत अच्छी तरह जानती थी कि लड़की की शादी के लिए उसका सुंदर होना और दो-चार क्लाश पास कर लेना काफी है। सरस्वती में ये दोनों गुण थे। इसलिए स्कूल से हटा लेने और उसका जीवन होम करने के लिए विद्यादेवी के लिए यही बात काफी थी। वैसे भी वह उसको 'गुणवंती' बनाना चाहती थी। खाना बनाना, खेत के काम करना, कढ़ाई-सिलाई करना और छोटे बच्चों को खिलाना। गुणवती होने के लिए ये काम आने जरूरी हैं।

राजस्थान की मरु भूमि में रहने वाली विद्यादेवी को शहर जाने का कभी मौका नहीं मिला था। एक बार सरस्वती बीमार हो गई तो विद्यादेवी को उसे खुद ही शहर ले जाना पड़ा था। खुशिया देवर ने जब देखा कि भाभी शहर जा रही है तो उसने बड़े गंभीर भाव में कहा- 'भाभी छह नम्बर बस में जाना और सरस्वती को रसवंती के बटेऊ जसवंत सिंह के पास दिखा देना, उसका ये पता है।' फिर उसने उससे एक मजाक भी कर दिया- 'और सुन भाभी, बस में जूती उतार कर चढ़ना, नहीं तो टैक्स लग जाएगा!'

विद्यादेवी की सांस में गाँव की संस्कृति रची-बसी थी। उसने देवर की बातें सच मानकर गांठ बांध ली। गाँव के बस स्टैंड पर खड़ी होकर वह गिनने लग गई कि कितनी बसें चली गई हैं। यह पहली बस है, यह दूसरी है, यह तीसरी, यह चौथी...! काफी देर बाद जब देवर भी बस-स्टैंड की तरफ आया तो उसने पूछा- 'भाभी बस नहीं आई क्या?'

'आई थी, एक तो देख वा जा रही।'

'यहाँ रुकी नहीं?'

'रुकी थी।'

'तो बैठी क्यों नहीं?'

'देवर, वा तो चौथी ही बस थी। थमनै ही तो बताई थी छह नम्बर बस में जाणा।'

भाभी की बात सुनकर देवर फिर हँसते-हँसते रुका। उसने समझ लिया था कि वह छह नंबर बस को छठी बस समझ गई थी। उसने बताया- 'बसें गिनती के हिसाब से थोड़े आती हैं। सब अपने-अपने टाइम के अनुसार आगे-पीछे आती हैं। या ही तो छह नम्बर बस थी।'

'तो मन्नै के पता? मैं कोई पढ़ी-लिखी हूँ?' विद्यादेवी ने कहा।

इतने में खुशिया को एक और बस आती दिखाई दे गई। उसने उसे बताया कि यह भी छह नम्बर बस है। इसमें बैठ जाना। विद्या देवी जूती हाथ में लेकर बस में चढ़ गई और बस में खाली सीट होने पर भी नीचे बैठ गई। कंडक्टर ने उसे सीट पर बैठने के लिए कहा तो वह बोली- 'बेटा, जनानी नीचै ही बैठा करै है।'

'नीचै क्यूँ बैठा करै है? ताई तू ऊपर बैठ।' कंडक्टर ने कहा।

'अरै जनानी नीचै ही ठीक है ना?'

'ना ताई, तू ऊपर बैठ, रास्ता रुकै है।' 'अरै ऊपर कैसे बैठ जाऊँ माणसा धोरै? तन्नै शर्म ना आवै पराए मर्दां धोरै बैठाती हाण? यो तेरा ताऊ थोड़ा है जो इस धोरै बैठ जाऊँ? इसनै खड़ा कर दे तो बैठ भी जाऊँ।'

'इसको कैसे खड़ा कर दूँ? और जनानी भी तो आदमियाँ धोरै बैठी हैं?'

'और जनानियाँ का के है? वे तो माणसाँ तै भिड़ कै चालै है! मैं इस बुड्ढ़े धोरै कहतराँ बैठ जाऊँ?' विद्यादेवी ने फिर तपाक से कहा।

'ठीक है ताई, ना बैठ तेरी मर्जी।'

विद्यादेवी वहीं बैठी रही। वह कंडक्टर से बोली- 'हाँ छोरा, मैं उरै ही ठीक हूँ। तू किराया बता कितणा लागै है?'

विद्यादेवी को यह नहीं मालूम था कि बस में कितना किराया लगता है। परंतु वह हर अनपढ़ औरत की भाँति दमड़ी को दाँत से पकड़ती थी। उसे यह तो पता लग गया था कि बच्चों की आधी टिकट लगती है, परंतु आधी टिकट का मतलब नहीं समझती थी। कंडक्टर ने पूछा- 'कितणी टिकट चाहिए?'

'डेढ़ टिकट दे दे, और के सारी बस खरीदूँगी?'

'आधी टिकट किसकी है?'

'सरस्वती की!'

'कौण सरस्वती?'

'अरै या बैठी, तुन्नै ना दिक्खै?'

'कितणी उमर है इसकी?'

'भाई या बड़ा छोरा तै दो साल बाद पैदा हुई थी।'

'कौण बड़ा छोरा?'

'म्हारा जेठ का छोरा?'

'तो मैं क्या करूँ उसका? तू इसकी उमर बता।' कंडक्टर ने खीझकर कहा।

'तो फेर न्यू जाण ले के या मार-काट आले साल तै तीन साल बाद पैदा हुई थी।'

'कौण सा मार-काट आला साल?'

अरै हिंदू-मुसलमानाँ की लड़ाई ना हुई थी?'

खीझते हुए सरस्वती की उम्र का अंदाजा लगाकर कंडक्टर ने उसकी आधी टिकट काट दी। विद्यादेवी आधी और पूरी टिकट में अंतर नहीं समझती थी। कंडक्टर से तपाक से बोली- 'रै छोरा, थमनै इस छोरी की पूरी टिकट फाड़ दी?'

'यह आधी ही है।' कंडक्टर ने कहा।

'आधी कैसे है, पूरी की पूरी ना दिख रही?' फिर उसने टिकट के दो फाड़ किए और आधा भाग कंडक्टर को देते हुए बोली- 'ला, आधे पैसे वापस कर!'

जब और लोगों ने भी समझाया कि कंडक्टर ने आधी टिकट के ही पैसे लिए हैं तो वह उन्हें भी शक की नजरों से देखने लगी। यह बात उसकी समझ में अभी भी नहीं आ रही थी कि वह दूसरी बची आधी टिकट का क्या करे। इतने में उसने पास में एक छोटा सा बच्चा बैठा देख लिया। दूसरी आधी टिकट उसे देते हुए बोली- 'ले छोरा। इसनै तू दिखा दिए!' फिर उसकी माँ की तरफ देखते हुए बोली- 'थमनै इसकी टिकट लेण की जरूरत ना है!'

बस की टिकट लेते ही उसकी दूसरी चिंता जसवंत सिंह डॉक्टर का पता जल्दी से जल्दी जान लेने की थी। उसने अगली सीट पर बैठे एक सरदारजी को पते वाली पर्ची दिखाते हुए कहा- 'सरदारजी, यो जसवंत सिंह डॉक्टर का पता बताइए।'

सरदारजी ने कहा- 'पता तो इस पर पहले ही लिखा है।'

'अरै पता तो लिखा है, मैं के पढ़ी-लिखी हूँ? तू ये बता कि इस डॉक्टर की दुकान कित है?' विद्यादेवी ने कहा।

सरदारजी का नाम खुशवंतसिंह था। उसने सोचा जसवंत सिंह डॉक्टर भी सरदार ही होगा। उसने अपने आप ही अपना अनुमान सही मानते हुए विद्यादेवी की तरफ आशा से भरकर देखते हुए पूछा- 'माई, ये जसवंत सिंह सरदार हैं?'

'भाई, सरदार क्यों है, आदमी है!' विद्यादेवी ने कहा।

'माई, मैं कब कहता हूँ वह आदमी नहीं है? तू ये बता कि वह सरदारजी है?' सरदारजी ने फिर पूछा।

'सरदारजी, तेरा दिमाग खराब तो ना है? तू अच्छे-भले आदमियाँ नै सरदार बणावै है?' विद्यादेवी बोली।

सरदारजी अपना गुस्सा रोकते हुए बोला- 'तो क्या मोना है?'

परंतु विद्यादेवी 'मोना' शब्द का अर्थ भी नहीं जानती थी। उसने सोचा यह सरदारजी नीचे की तरफ बड़ी-बड़ी लटकी हुई मूँछों से ठीक से नहीं बोल पा रहा है और यह बोना पूछा रहा होगा। अतः वह बोली- 'सरदारजी, वो बोना ना है, पूरा छह फुट का जवान है!'

'माई मैं पुछिआ कि की वे मोने हन?' सरदारजी ने जोर लगाकर रुक-रुक कर फिर कहा।

विद्यादेवी सोचने लगी यह सरदार कभी सरदारजी पूछ रहा है, कभी बौना, कभी मोना। फिर कुछ सोचकर बोली- 'सरदारजी, अपणी दाढ़ी-मूँछ हटा कै बोल! म्हारा बटेऊ तो इनमाँ तै कोई सा भी ना है।'

'वो तुम्हारा बटेऊ है?'

'ना रसवंती का बटेऊ है।'

'रसवंती कौन?'

'म्हारे पड़ोस की छोरी!'

अब सरदारजी कुछ समझने लगे। वे समझने लगे कि वह इनका बटेऊ है तो सरदारजी न भी हो। फिर भी जसवंत सिंह नाम सुनकर वह शंका में ही पड़ा रहा और एक बार फिर पक्का करने के लिए विद्यादेवी से बोला- 'माई, पक्का है ना तुम्हारा बटेऊ सरदार नहीं है?'

'अरै सरदार ना है, तेरा तै कितणी बार बताई ना है, ना है! तन्नै फेर वा ही रट लगा राखी है? हम अपणे बटेऊ नै ना जाणाँ के?'

विद्यादेवी ने झुंझलाकर सरदारजी के हाथ से पर्ची ही छीन ली। उसने कहा- 'इसनै तो एक ही रट लगा राखी है सरदार है, बोना है, मोना है? पता ना यो सरदार किस तर्या का आदमी चाहवै है। फिर वह सरदारजी की तरफ देखते हुए बोली- 'अरै अपणी तरया का तो ना पूछ रहा?' सरदारजी उसे देखता ही रह गया। फिर उसने पर्ची दूसरे आदमी को देते हुए कहा- 'ले भाई, तू ही बता। इसनै तो नाम पूछण में ही इतणी देर लगा दी।

दूसरे आदमी ने पर्ची देखी। संयोग से उसे डॉक्टर जसवंत सिंह का पता मालूम था। इसलिए उसने विद्यादेवी को तुरंत बता दिया। विद्यादेवी ने उससे पर्ची लेकर सरदारजी से कहा- 'सरदारजी आदमियाँ और सरदारजी में यों ही फर्क होवै है।' सरदारजी अपना सिर धुनकर रह गया।

आखिर विद्यादेवी किसी न किसी तरह शहर पहुँच ही गई। पूछते-पूछते जसवंत सिंह के क्लीनिक के पास भी पहुँच गई। परंतु क्लीनिक के सामने होने पर भी फिर किसी से क्लीनिक का पता पूछने लगी। तब सरस्वती ने कहा- 'माँ, यह रहा क्लीनिक!'

'तुझे कैसे पता?'

'मैंने क्लीनिक का नाम पढ़ लिया!'

'नाम पढ़ लिया?'

'हाँ, मैंने नाम पढ़ लिया।'

विद्यादेवी को विश्वास ही नहीं हुआ कि इतनी छोटी-सी लड़की भी नाम पढ़कर पता लगा सकती है। वह असमंजस में पड़ी रही। जब तक उसने दूसरे आदमी से क्लीनिक का नाम पक्का नहीं कर लिया, तब तक वह क्लीनिक में नहीं गई। फिर वह सरस्वती से बोली- 'बेटा, मुझे तो हिंदी भी नहीं आती यह तो अंग्रेजी थी।'

'नहीं माँ हिंदी में ही लिखा था।' सरस्वती ने कहा।

'हिंदी में? बेटा मुझे तो अंग्रेजी ही दिखाई दी।' विद्यादेवी ने कहा। सरस्वती ने मुहावरों में 'काला अक्षर भैंस बराबर' पढ़ रखा था। तब उसका मतलब नहीं समझ पाई थी, अब समझ गई थी।

डॉक्टर के क्लीनिक पर पहुँचने पर विद्यादेवी को नम्बर की एक पर्ची दे दी गई। क्लीनिक में एक-एक करके नम्बर बोले जाने लगे। डॉक्टर ने सारे मरीज देख लिए परंतु विद्यादेवी वहीं की वहीं बैठी रही। जब डॉक्टर जाने लगा तो वह कंपाउंडर से बोली- 'रै छोरा! मेरा नम्बर क्यूँ ना आया?'

कंपाउंडर ने उसकी पर्ची देखते हुए कहा- 'ताई तेरा नम्बर तो कितनी पहले चला गया। मैंने कितनी बार बोला था?'

'हमनै के पता था म्हारा नम्बर के था?'

विद्यादेवी सरस्वती को डॉक्टर को दिखाने के बाद इसी प्रकार जूझती-जूझती, शहर के लोगों को कोसते-कोसते गाँव वापस पहुँच गई।

कुछ दिनों बाद गाँव में एक घटना घट गई। स्कूल में दसवीं में पढ़ने वाली एक लड़की को किसी लड़के ने छेड़ दिया और गाँव की निरक्षर औरतें लड़के की बजाय लड़की को ही बदनाम करने लग गईं। तब सरकार के साक्षरता कार्यक्रम को धत्ता बताकर विद्यादेवी ने सरस्वती को विद्या रूपी स्वाति नक्षत्र की उस बूँद से वंचित कर दिया, जिसकी चातक रूपी मनुष्य जीवन भर आशा करता रहता है। माँ को नहीं मालूम था कि संसार में वेद, पुराण, दर्शन, जातक-कथाओं, रामायण, गीता, कबीर के वचन, नानक की वाणी, ईशा मसीह के संदेश जैसी विद्याएँ भी हैं या एजटेक, सिंधु घाटी आर्यन जैसी सभ्यताएँ रहीं हैं या कि आधुनिक काल कितने राजे-महाराजाओं के इतिहास का परिणाम है या यह कितने सतत विकास के बाद आया है। उसे इस बात से कोई लेना-देना नहीं था कि औरतों की दशा सुधारने के लिए कितने समाज-सेवकों ने दहेज, सती, अशिक्षा, बाल-विवाह, पर्दा, कन्या वध जैसी कितनी ही प्रथाओं को खत्म करने के लिए अपना जीवन होम कर दिया। उसे यह भी नहीं पता था कि इन सब बातों का ज्ञान शिक्षा से होता है। परंतु यह वह बहुत अच्छी तरह जानती थी कि लड़की की शादी के लिए उसका सुंदर होना और दो-चार क्लाश पास कर लेना काफी है। सरस्वती में ये दोनों गुण थे। इसलिए स्कूल से हटा लेने और उसका जीवन होम करने के लिए विद्यादेवी के लिए यही बात काफी थी। वैसे भी वह उसको 'गुणवंती' बनाना चाहती थी। खाना बनाना, खेत के काम करना, कढ़ाई-सिलाई करना और छोटे बच्चों को खिलाना। गुणवती होने के लिए ये काम आने जरूरी हैं।

...और सरस्वती गाँव की गोबर-कूड़े से भरी जिंदगी में अपना बचपन बिताते हुए जवान हो गई। जवानी में उसका रूप इस प्रकार निखरकर सामने आया जैसे काले बादलों को हटाकर चाँद निकला हो। परंतु सरस्वती के सौंदर्य की अभी सोलह कलाएँ भी पूरी नहीं हुई थीं कि पिता विदुर ने उसे घूँघट में ढक दिया। सरस्वती का दूल्हा उससे थोड़ा अधिक पढ़ा था। आठ पास था, परंतु किशोरावस्था से ही शराब का आदी था। उसे रोज मारता-पीटता और बिना किसी बात के गालियाँ देता। उसने सरस्वती का जीना दूभर कर दिया। सरस्वती दो साल में ही दो बच्चे लेकर अपने घर वापस आ गई। मासूम कली खिलने से पहले ही मुरझा गई। माँ-बाप के पास कुछ दिन उसके ठीक-ठाक निकले। परंतु बाद में वह भाभियों और माँ को भी अखरने लगी। सांसारिक व्यवहार है। बेटी ससुराल आती-जाती रहे तो ही

अच्छी लगती है। अतः आए दिन सब उसी के साथ नोक-झोंक करने लगे। उसे समझ नहीं आ रहा था कि क्या करे। उसके साथ की कुछ लड़कियाँ अभी पढ़ ही रही थीं और वह बेचारी अपढ़ दो बच्चों का भार ढो रही थी। ऐसे समाज में कभी उसकी भाभियाँ उस पर हाथ उठातीं, कभी माँ, कभी बाप और कभी भाई। उसके बच्चे उसे अक्सर पिटते देखते। उसे सबसे लोहा लेना पड़ता। अपने परिवार में वह एक अनचाही वस्तु हो गई थी। उसके परिवार में अपढ़ता और अज्ञानता के कारण शीलता, नम्रता नाम की कोई चीज नहीं थी। परंतु ईश्वर ने उसे और ही तरह के संस्कार दिए थे। वह सबसे शीलता से पेश आना चाहती थी और नम्रतापूर्वक व्यवहार करना चाहती थी। परंतु उसके अनपढ़ परिवार वाले उसकी मितभाषिता और नम्रता को उसके घुन्नेपन और जिद के रूप में लेते थे। सरस्वती अपने ही परिवार में घुल न पाई। उसमें न पढ़ पाने की एक टीस थी। उसने अपनी माँ के साथ एक ही दिन शहर जाकर देख लिया था कि अनपढ़ आदमी को जिंदगी में कितना जूझना पड़ता है। न वह किसी को अपनी बात समझा सकता है, न किसी की बात समझ सकता है। जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश तेज होने पर भी उल्लू को दिखाई नहीं देता और वह अंधेरे को ही अपना साथी बनाता है, उसी प्रकार अशिक्षित व्यक्ति के सामने सब कुछ होते हुए भी वह अज्ञानी बना रहता है और डरा-डरा रहता है। वह दूसरों पर आश्रित बना रहता है और लोग उस पर हँसते रहते हैं। लोग सरस्वती के सामने पढ़े-लिखे लोगों को सर, मेंडम आदि कहते, परंतु उसके माँ-बाप को रूखे ढंग से बोलते। इसी प्रकार पढ़ी-लिखी लड़कियों को वे बेटी कहकर बोलते, परंतु वह और लड़कियों से ज्यादा लंबी-तगड़ी होने पर भी वे उसे छोरी-छोरी कहकर बोलते। यह बात उसे बहुत बुरी लगती। उसने देखा कि शिक्षा के बिना लोग किसी की कद्र नहीं करते। वे उनकी सहायता भी नहीं करते और उन्हें मनमाने ढंग से बेवकूफ बनाते रहते हैं। वह शिक्षित और अशिक्षित दोनों तरह के मनुष्यों की जिंदगी के रूप निकटता से देख रही थी। उसे अंधकार से भरी जिंदगी रास नहीं आ रही थी। इस दौरान उसने यह भी देखा कि माँ-बाप शादी के बाद बेटे की पढ़ाई पर पर तो खर्च कर देते हैं, परंतु बेटी की पढ़ाई पर नहीं। यूँ उसने माँ के शहर में जूझते समय ही ठान लिया था कि वह तो खूब पढ़ेगी, परंतु असहाय उम्र में जब उसे पढ़ाई से उठा लिया गया था तो वह कुछ नहीं कर पाई थी। परंतु अब वह बड़ी हो गई थी और पढ़-लिखकर कुछ बनना चाहती थी। परंतु उसके सामने यह समस्या थी कि वह पढ़े या अपने बच्चों का पेट पाले। ऊपर से उसके अनपढ़ माँ-बाप पढ़ाई के ही विरुद्ध थे। फिर भी उसका मन उस पर पढ़ने के लिए बार-बार दबाव डालता रहा। इसलिए उसने पढ़ने का मन बना लिया।

एक दिन वह पड़ोस के किसी लड़के से पढ़ने चली गई, परंतु यही बात उसके लिए बवाल का विषय बन गई। पढ़ाई की महत्ता बार-बार समझाने से भी न समझने वाले विदुर और विद्यादेवी भला ब्याही-थ्याही लड़की का पड़ोस के लड़के से पढ़ना कैसे स्वीकार कर सकते थे? उन्होंने उसे उसके पास जाने से मना कर दिया। फिर सरस्वती ने लड़के की बहन से पढ़ना शुरू किया तो उससे भी उन्होंने न पढ़ने दिया। वे सोचने लगे कि सरस्वती बिगड़ती जा रही है। उनका तो सोचना ही यही था कि पढ़-लिखकर आदमी बिगड़ जाता है। इसलिए उन्होंने उसके पढ़ने पर ही पाबंदी लगा दी। सरस्वती के लिए जहाँ अपने अनपढ़ माँ-बाप का कहना मानने के सिवाय और कोई चारा न था, वहाँ उसकी अंतरात्मा भी उसे पढ़ने के लिए बार-बार उकसा रही थी। वह तो केवल यही सोचती रहती कि जब और लड़कियाँ पढ़ रही हैं तो वह क्यों नहीं पढ़ सकती? इसलिए अब उसने लुक-छिपकर पढ़ना शुरू कर दिया। कापियों में लिखने की बजाय उसने सलेट पर लिखना शुरू किया, ताकि उसके पढ़ने का कोई प्रमाण न रहे। परंतु पढ़ने-लिखने जैसी चीज को अधिक दिनों तक छिपाया नहीं जा सकता। अतः उसके माँ-बाप को भी पता लग गया। वे उसके और विरुद्ध हो गए और उसे पढ़ती देख कभी उसे जोर से डाँटते, कभी मारते। परंतु वह घर का सारा काम करते हुए, अपने बच्चों को पालते-पोसते हुए सबकी मार खाते हुए पढ़ती जा रही थी। धीरे-धीरे उसने आठवीं तक की पुस्तकें पढ़ डालीं। एक दिन उसे आंगनबाड़ी की शिक्षिका से पता लगा कि वह आठवीं के फार्म प्राइवेट रूप से भी भर सकती है। शिक्षिका की सहायता से उसने अपनी कमाई से आठवीं के फार्म भर दिए। माँ-बाप के विरोध के बावजूद अब वह उस शिक्षिका से ही लुक-छिपकर पढ़ने लगी। परंतु अब उसके सामने एक और कड़ी परीक्षा थी। उसकी आठवीं की परीक्षा का केंद्र पास के शहर में पड़ा था और माँ-बाप की अनुमति के बिना वह कई दिनों तक वहाँ रोज अकेली जा नहीं सकती थी। उसे पता था कि यह अनुमति मिलनी भी नहीं है। इसलिए उसने परीक्षा भी गुपचुप देने की योजना बना ली। सरस्वती पहले दिन शिक्षिका को साथ ले जाकर परीक्षा तो दे आई, परंतु पूरे दिन उसके बच्चे घर में अकेले रहने के कारण उसके माँ-बाप को पता लग गया। उसके शहर से आते ही उन्होंने उसे आड़े हाथों ले लिया। सरस्वती चुपचाप उनकी बातें सुनती रही, क्योंकि उसे अगले दिन की परीक्षा देने भी जाना था और उसकी तैयारी भी करनी थी। उसके माँ-बाप ने उसे अगले दिन जाने से सख्त मना कर दिया। परंतु वह अपनी मेंहनत को यूँ बेकार

नहीं जाने दे सकती थी। वह ढीठ बन गई। उसके माँ-बाप उसे रोज जाने से मना करते, उसके साथ झगड़ा करते और वह सबके साथ लड़-भिड़कर चली जाती। उसके आने के बाद वे फिर झगड़ा करते। ...और उन्होंने उसके अकेले शहर जाने पर उसे गाँव में बदनाम कर परीक्षाओं के बीच ही उसका सामान अपने घर से बाहर फेंक दिया। परंतु उसने अपने आपको साधे रखा। उसके विचार में एक तरफ तो यह उसके लिए अच्छा ही हुआ, क्योंकि अब वह शेष परीक्षाएँ बिना किसी विरोध के दे सकती थी। दूसरी तरफ उसके लिए रहने की भी समस्या थी। पड़ोस के एक समझदार व्यक्ति धर्मसिंह ने उसे यह सोचकर अपने घर रख लिया कि गाँव की बेटी अपनी ही बेटी होती है, वह इस तरह अकेली कहाँ जाएगी और दो-चार दिनों में उसके माँ-बाप का गुस्सा ठंडा हो ही जाएगा। परंतु क्षिप्र और विद्यादेवी का गुस्सा कभी ठंडा नहीं हुआ। सरस्वती कई वर्षों तक उसी व्यक्ति के पास रहे रही। उसने अपनी सेवा से उनका दिल जीत लिया। इसी दौरान उसने आठवीं और दसवीं की परीक्षाएँ पास कर लीं। उसने धर्मसिंह द्वारा दिए गए एक छोटे से प्लाट पर अपनी कमाई से एक कमरा भी बना लिया। अब वह अलग रहने लग गई। उसके माँ-बाप उसे इस तरह अपने हाथों से निकलते देख उसे और बदनाम करने लगे। जिस उम्र में कई लड़कियों की शादी भी नहीं होती, उस उम्र में सरस्वती अपने दो बच्चों सहित ऐसा संघर्षभरा जीवन जी रही थी। लोग नाते-नाती देखकर प्रसन्न हो जाते हैं, परंतु अज्ञानता से भरे उसके माँ-बाप को अपने नाते-नातियों पर भी प्यार नहीं आया। फिर भी सरस्वती ने हिम्मत नहीं हारी। वह पढ़ती ही गई, पढ़ती ही गई। उसने बीए और एमए दोनों परीक्षाएँ पास कर लीं। अब उसने अपनी कहानी को उलट दिया था। एक समय था जब वह बच्चे पैदा कर रही थी और उसकी सहेलियाँ पढ़ रही थीं। परंतु अब वह पढ़ रही थी और उसकी सहेलियाँ बच्चे पैदा कर रही थीं। अपनी लगन और साहस से उसने गोबर से लथपथ अज्ञानता से भरी जिंदगी को उलटबासी की तरह उलट दिया था। अब वह एक सुशिक्षित महिला थी। अब वह गाँव की दूसरी लड़कियों को पढ़ाती थी। पास के जिस शहर में उसकी माँ उसे दवाई दिलाने के लिए जूझती हुई ले गई थी, उसी शहर के एक पब्लिक स्कूल में पढ़ाने के लिए वह बड़ी आसानी से आ-जा रही थी। उसने अपने घर के आंगन में भी एक छोटा-सा स्कूल खोल लिया था। अपनी माँ की तरह अब उसे जिंदगी के हर मोड़ पर जूझना नहीं पड़ रहा था। उसे अब किसी बात से डर नहीं लगता था। वह सबसे खुलकर बातें करती थी। वह हर रोज समाचार-पत्र मंगाती थी। समाचार-पत्रों में कभी-कभी उसके लेख भी छपते थे। अब वह एक सम्मानपूर्ण जिंदगी जी रही थी। उसकी भाभी या भाई अब उसे डाँट नहीं सकते थे। वे उसके सामने याचक से बने रहते थे। उसके बच्चों को भी वे सम्मानपूर्वक देखते थे। सरस्वती का वक्ष गर्व से तना रहता। उसके मुख पर आत्म-विश्वास, आत्म-निर्भरता और ज्ञान का तेज रहता। उसने गाँव के और लोगों को भी लड़कियों को पढ़ाने और उनकी शादी कम उम्र में न करने का मार्गदर्शन दिया। वह गाँव की चहेती बेटी बन गई थी। उसके बच्चे अब उन कक्षाओं को कब के पार कर चुके थे, जहाँ कभी उसकी जिंदगी समाप्त-सी हो गई थी। परंतु सरस्वती ने उस जिंदगी की तरफ पीछे मुड़कर नहीं देखा। वह अब एक पल के लिए भी अपने आपको उस करुणाजनक जिंदगी में नहीं ले जाना चाहती थी। वह तो अपने को और ऊँचा उठाने के लिए नई से नई परीक्षाएँ देती रहती थी। उसने केवल आगे बढ़ना सीखा था। वह गाँव में सरस्वती की धारा की तरह बह रही थी, सबको जिंदगी का कोई न कोई नया पल देते हुए। उसने गाँव के लोगों को जिंदगी जीने का नया ढंग सिखाया था। अपने उदाहरण से उसने लोगों को कन्याओं की भ्रूण-हत्या के विरुद्ध चेतने को भी विवश कर दिया था।

इस प्रकार सरस्वती ने गाँव को एक नया जीवन और नई विचारधारा दी। परंतु उसका अपना जीवन अभी सुचारू रूप से चलने ही लगा था कि आमोद-प्रमोद के इसी माहौल में एक दिन पास के थाने से दो सिपाही उसे पूछते हुए आ धमके। गाँव में आते ही वे कई लोगों से सरस्वती के चाल-चलन के बारे में पूछने लग गए। यह खबर गाँव में आग की तरह फैल गई। सिपाही उसके बारे में पूछते-पूछते जब तक सरपंच के घर पहुँचे, तब तक वहाँ लोगों का जमघट लग चुका था। लोगों में बहुत कुतुहल था। सब यह सोचकर हैरान थे कि आखिर सरस्वती ने ऐसा क्या कर दिया। कुछ लोग तो यह भी सोचने लगे कि सरस्वती ने गाँव की नाक कटाने का कोई काम तो नहीं कर दिया? यदि ऐसा हुआ तो हद हो जाएगी। कुछ लोग सोचने लगे ब्याही-थ्याही लड़की को गाँव में रखना ही ठीक नहीं था। सबके बीच काना-फूँसी शुरू हो गई। जो जैसा सोच सकता था, उसने वैसा ही सोचा। गाँव की औरतों की तो बात ही अलग थी। उनमें से कुछ कह रही थीं कुलछिणी होगी, शहर अकेले ऐसे थोड़े ही जाती है? कई-कई लड़के साथ लगे रहते हैं। किसी के साथ काला मुँह किया होगा या उलटे धंधे करती होगी। इतनी उम्र हो रही है, ऐसे ही थोड़े रहती होगी। जरूर यह अपने पेट में किसी का पाप ढो रही होगी। यह गाँव की और लड़कियों को भी बिगाड़ेगी। इसे गाँव से भगा देना चाहिए था, यह तो चुड़ैल है आदि, आदि। उसके माँ-बाप लोगों की ऐसी बातें सुन-सुनकर सरस्वती पर गुस्सा कर रहे थे। वे सोच रहे थे-'इस लड़की को तो पैदा होते ही मार देना चाहिए था या जब यह शहर

जाने लगी थी तभी मार देते, बड़ी गलती हो गई, यह म्हारी नाक कटा रही है, अभी थोड़ी देर में पता नहीं के बात निकलैगी। पुलिस इसनै इभी पकड़ ले जागी और हम कहीं के ना रहैंगे। हे भगवान्, ऐसा होण तै पहले हमनै इस संसार तै ही ठा ले। हम किस-किस को क्या कहेंगे, किस-किस को जवाब देंगे। भगवान तूने ये दिन क्यों दिखाया? हमनै ऐसा कौण-सा पाप कर दिया था जो या लड़की म्हारै पैदा हुई। अच्छा रहा हमनै तो इसकै पहले ही धक्का दे दिया था, कुछ तो बचाव होगा। हम तो लोगाँ तै पहले ही कहै थे कि या छोरी ठीक ना है। म्हारा इस तै कोई मतलब ना है। हम तो इब भी अपणा पल्ला साफ झाड़ लेंगे। कह देंगे हमनै ना है इस तै कोई लेणा-देणा। इसके साथ जैसा चाहो वैसा सलूक करो। 'उन्हें अब अपने बचाव की बात सूझ गई थी। इसलिए ऐसा सोच वे अपने आपको ढाढस देकर सिर ऊँचा करके खड़े हो गए।'

कानाफूँसी के इसी वातावरण में जब सिपाही बोलने लगे तो सब चुप हो सुनने लगे। सिपाहियों ने जोर से पूछा-'सरस्वती कौन है?'

सब दंग रह गए। कुछ लोग और लुगाइयाँ एक-दूसरे को कहने लगे- 'देखा, वही बात निकली ना?'

सरपंच ने कहा- 'विदुर की लड़की है।'

'उसे इधर बुलाओ!'

लोग डरकर और निस्तब्ध होकर देखने लगे। परंतु अपना नाम सुनते ही सरस्वती तेज चाल चलते हुए निर्भीकता से आगे आ गई। कुछ औरतें कहने लगीं- 'देखो कितणी बेशर्म है, खुद ही भागी आ रही है।'

सिपाहियों ने सरस्वती से पूछा- 'तू क्या करती है?'

इस प्रश्न पर गाँव के लोगों को और अधिक शक हो गया।

'शहर के मॉडल स्कूल में पढ़ाती हूँ।'

'कितने दिनों से?'

'छह महीनों से!'

'यह फोटो तुम्हारा ही है ना?'

'जी हाँ, मेरा ही है।'

'तुमने कभी कोई ऐसा-वैसा काम तो नहीं किया?'

'कैसा?'

'कोई गलत काम?'

'नहीं।'

'तुम्हारे विरुद्ध किसी थाने में कोई केस है?'

'नहीं।'

फिर उन्होंने गाँव के सरपंच और पंचों से पूछा - 'इसका चाल-चलन ठीक है?'

'जी ऐसी तो कोई बात नहीं।' सरपंच ने कहा।

'किसी से झगड़ा तो नहीं करती?'

तब उसके माँ-बाप कहने को हुए- 'हमसे करती है!' परंतु उन्हें धर्मसिंह ने चुप कर दिया।

फिर सरपंच ने कहा- 'नहीं, कभी नहीं।'

सिपाही पूछे जा रहे थे और लोग हैरानी से सुने जा रहे थे। उनका धैर्य यह जानने की व्यग्रता में चुकता जा रहा था कि सरस्वती ने कौन सा बुरा काम किया है। तभी सिपाहियों ने सरपंच से कहा- 'सरपंच जी, सरस्वती आपके गाँव की बड़ी महान बेटी है। इसने तो गाँव का नाम ही रोशन कर दिया! ऐसी लड़की भला किस गाँव को मिलती है? यह तो समझो इसे वरदान में मिली है। इसने आईएएस परीक्षा पास कर ली है। हम इसकी कैरेक्टर वैरीफिकेशन करने आए थे। अब यही तुम्हारी डीसी बनेगी। पूरे हलके में कोई डीसी लड़की नहीं है। यह हलके की पहली डीसी लड़की होगी। गाँव ने कोई पुण्य किया है जो इस लड़की ने यहाँ जन्म लिया है। यह तो देवी है, साक्षात् सरस्वती देवी...! 'सिपाही कहे जा रहे थे। लोगों के आश्चर्य की कोई सीमा नहीं थी। वे सरस्वती की उपलब्धि से सम्मोहित होते जा रहे थे। उन पर जादू का-सा असर हो रहा था। कुछ लोग खुशी के मारे फूले नहीं समा रहे थे। किसी की आँखें खुशी के आसुँओं से लबालब थीं तो कुछ कहे जा रहे थे- 'सरस्वती बेटी अफसर बन गई, सरस्वती डीसी बन गई, सरस्वती..., म्हारे गाँव की छोरी...। 'पूरे गाँव का माहौल ऐसे बदल गया था जैसे भयंकर तूफान की जगह बरसात आ गई हो, जैसे सारे देव फूल बरसा रहे हों। लोगों की खुशी ने इतना व्यापक रूप ले लिया था मानो यह खबर पूरे देश में फैल गई हो। तभी सिपाहियों ने कहा- 'अरे भाई कुछ मिठाई-विठाई खिलाओ, लोगों का मुँह मीठा कराओ। कितनी अच्छी खबर है! 'तब कुछ लोग पहले तो सरस्वती के माँ-बाप की तरफ देखने लगे, परंतु उनसे कोई प्रतिक्रिया न देख वे मंद पड़ गए। उसके अनपढ़ माँ-बाप सरस्वती की उपलब्धि को समझ ही नहीं पाए थे। तब सरपंच ने खुश होकर पूरे गाँव को अपनी तरफ से मिठाइयाँ बाँटीं। उसने सिपाहियों का झोला भर दिया। सिपाही चले गए, परंतु गाँव में खुशी का यह माहौल हमेशा के लिए रह गया। लोग सरस्वती को हाथों-हाथ ले रहे थे। फिर भी उसके माँ-बाप समझ ही नहीं पा रहे थे कि आखिर सरस्वती अचानक इतनी बड़ी कैसे हो गई। दूर-दूर के गाँवों से लोग सरस्वती को देखने आने लगे थे। उसके यहाँ हमेंशा जमघट लगा रहने लगा। बहुत जल्दी सरस्वती ने नई जिम्मेदारी संभाल ली। परंतु अभी उसे अपनी जिंदगी की एक और कमी दूर करनी थी। उसके माँ-बाप ने उसे शुरू में बेशक पढ़ाई से हटा लिया था, परंतु उसने स्वयं एक गुणात्मक जिंदगी

जियी थी। उसने अपने माँ-बाप से कई बार कहा था कि उसके बच्चों को उनके बाप से मिला दो, परंतु उसके माँ-बाप अपने शराबी दामाद से बहुत नफरत करते थे। परंतु अब वह अपने पैरों पर खड़ी हो गई थी और अब अकेले अपने बल पर ही कुछ भी करने की हिम्मत रखती थी। अतः वह अपनी जिंदगी के बिखरे पन्नों को संवारने के लिए भी चल पड़ी। उसके मनोबल को देखते हुए गाँव के कुछ लोग भी उसके साथ हो लिए; कौन जाने उसे सहारा देने के लिए या उससे सहारा पाने के लिए?

सरस्वती गाँव के लोगों को साथ ले ससुराल पहुँच गई। उसकी ख्याति उससे पहले ही ससुराल पहुँच चुकी थी। ससुराल वालों ने उन्हें हाथों-हाथ लिया। एक ही दिन में ससुराल में सरस्वती का डंका बज गया। शाम को सरस्वती की मुलाकात अपने पति से भी हुई। तो सरस्वती की आँखों में आंसू आ गए। न जाने उसकी हालत देखकर या चोदह वर्षों बाद उससे मिलने के कारण। परंतु उसने अपने आंसू बहने नहीं दिए। उसने वे आंसू समेंट लिए। वह प्रण कर चुकी थी कि वह अपनी बीती जिंदगी पर कभी आंसू नहीं बहाएगी, बल्कि अपनी बीती जिंदगी को तो उसने अपने वर्तमान का आधार माना। उसने चेहरे पर आत्म-विश्वास लाते हुए पति से कहा- 'मैं आपको लेने आई हूँ। बच्चे आपसे मिलना चाहते हैं। उन्हें सहारा दो। आप चलेंगे न?'

> वह सकारात्मकता में, बिगड़ी हुई व्यस्थाओं को ठीक करने में विश्वास रखती थी, उन्हें बिगाड़ने या और अधिक बिगड़ने देने में नहीं।

सरस्वती का पति अपनी महिमावान पत्नी के इतनी मीठे वचन सुनकर पानी-पानी हो गया। उसके सामने अब वह अपने आपको बहुत छोटा समझ रहा था। उसके हाथ जुड़ गए। इन हाथों से वह न जाने अपने अपराधों की क्षमा मांग रहा था या सरस्वती की कर्मठता को स्वीकार कर रहा था। उसकी आँखें आंसुओं से भरी थीं। सरस्वती ने उसके आंसू पौंछे और उसके जुड़े हाथ अपने हाथों में लेते हुए कहा- 'पीछे मुड़कर नहीं देखना है। बस कल मेरे साथ चलना है।' पति ने आंसू भरी आँखों और ग्लानि भरे मस्तक को सरस्वती की गोद में रखकर जैसे हामी भर दी।

पति को लेकर सरस्वती अपने घर आ गई। अपने साहस से उसने गाँव की विचारधारा को ही मोड़ कर रख दिया। घर आकर उसने अपने पति के बारे में किसी को कुछ ऐसा-वैसा नहीं कहने दिया। उसने यही देखा कि जब हमने इनको दुबारा अपना लिया है, तो ये ही मेरे पति हैं, मेरे बच्चों के पिता हैं, मेरे परिवार के मुखिया हैं, अब ये आठ पास नहीं हैं, आईएएस अफसर के पति हैं। वह उसकी भी गरिमा बनाए रखना चाहती थी। वह उसे झुकने नहीं देना चाहती थी। अपने पति का मान वह अपना मान समझती थी। उसे विश्वास था कि एक दिन वह अपने पति को भी सूर्य से आँखें मिलाने और हिमालय के सामने सीना तानने लायक बना देगी। उसने अपने माँ-बाप को भी क्षमा कर दिया। उसने यही सोचा कि मेरा असली सम्मान भी तभी होगा, जब लोग मेरे माँ-बाप का सम्मान भी करेंगे। वह उनके साथ फिर घुल-मिलकर उन्हें खुशी के पलों का आनंद दिलाने लगी।

शराब छोड़ने का डाक्टरी कोर्स पूरा कराकर सरस्वती पति और बच्चों के साथ वापस ससुराल रवाना हो गई, क्योंकि उसे अपने ससुराल को गरिमा देनी थी। वह समझती थी कि उसके पति को असली गरिमा तभी मिलेगी, जब वह अपने घर रहेगा, घर-जमाई बनकर नहीं। उसे स्वयं को और उसके बच्चों को भी असली सम्मान अपने घर में ही मिलेगा। उसके सास-ससुर को भी सम्मान तभी मिलेगा। वह किसी को नीचा नहीं दिखाना चाहती थी। वह अपने कारण किसी की बेइज्जती नहीं होने देना चाहती थी।

गाँव वालों ने उसे भाव-भीनी विदाई दी। उसकी अनुपस्थिति में उन्होंने एक अलग ही बात देखी। पौराणिक सरस्वती बेशक सूखकर प्रवाहहीन हो गई थी, परंतु गाँव की सरस्वती गाँव में अभी भी बहे जा रही थी। गाँव का हर आदमी अब अपनी बेटियों को पढ़ा रहा था, उन्हें इज्जत से बोल रहा था। अब हर आदमी उनमें सरस्वती का चेहरा देख रहा था। गाँव के हर परिवार ने सरस्वती का फोटो अपने घर में टांग लिया था। पौराणिक कथाओं की तरह गाँव का हर आदमी अपनी हर छोटी लड़की को सरस्वती की कथा सुनाता था, उसकी पूजा कराता था। सरस्वती हर घर में बस गई थी। गाँव का हर आदमी अब उसे अपने गाँव की बता कर गौरव महसूस करता था। कोमल-सी वह बेल जो कभी अपनी कोमलता से लरज कर टूट जाने के डर से पेड़ का सहारा ढूँढ़ा करती थी, आज वही पूरे गाँव की आशाओं की स्रोत-स्रविनि बन गई थी। जब वह डीसी दरबार लगा लोगों की समस्याएँ सुलझाने लगी, तो उसके माँ-बाप भी समझ गए कि बेटी भार नहीं, अपनी शक्ति होती है।

कहानी

नागरमोथा

डॉ. मृत्युंजय कोईरी

खेतों में उगने वाले घासों में नागरमोथा सबसे जिद्दी है। इसका जड़ कंद बन जाता है। घास का एक भी कंद जिस खेत में आ गया। उस खेत में साल भर के अंदर पूरा फैल जाता है। फिर उसे उघाड़ना नामुमकिन है। नागरमोथा का कंद पेट में गैस से होने वाले दर्द पर दवा का काम करता है। इसके साथ बाऊ-अदरक को मिला देने से रामवाण बन जाता है। नागरमोथा और बाऊ-अदरक को अलाव से जलाने के बाद चक्की से पिसकर चूर्ण बना लिया जाता है। आदमी से लेकर गाय-बैल और बकरी तक के पेट में गैस होने पर गुड़ के साथ दो-तीन खुराक खिला देते ही पेट का दर्द छूमंत्र हो जाता है।

हरीश कुमार के पिताजी जैसे-तैसे अपना नाम लिख लेते। एक बार हरीश के पिता सभा में अपनी बात रखी। जिस पर गाँव के मालिक राजा साहब और अन्य गणमान्य लोग हँस पड़े। वहीं एक व्यक्ति ने कहा, 'अरे ! देखो ! मूर्ख दल का आदमी आज विद्वान बनकर आया है। वह अपनी मूर्खता का परिचय दे रहा है। हहहह! ह! ह! ह! हहह! कर सब हँसने लगे।' वह विचारणीय व सकारात्मक बात कह रहे थे। पर पड़ोसी और हिस्सेदारों में कई पढ़े-लिखे न होने के कारण गाँव की किसी सभा में अपनी बात रखने का अधिकार नहीं। उनकी हँसी के बीच ही पिता ने मन-ही-मन प्रण कर लिया। 'यदि मैं एक असली धरती पुत्र हूँ, तो मेरा पुत्र को इतना पढ़ाऊँगा! इतना पढ़ाऊँगा ! कि गाँव का कोई व्यक्ति न पढ़ा हो !'

हरीश बचपन से पिताजी के साथ खेत में काम करता है। पाँच वर्ष के उम्र में गाँव के सरकारी स्कूल में प्रवेश करा दिया। पिताजी पुत्र को खेती-बाड़ी के साथ-साथ पढ़ाई में भी मन लगाने का निर्देष देते हैं। हरीश का ध्यान पढ़ाई और खेती-बाड़ी दोनों में लगता था। स्कूल जाने से पहले और स्कूल से घर आने के बाद पिताजी का साथ देने खेत चला जाता है। दो-तीन खेतों में नागरमोथा बहुत ज्यादा था। हरीश कुदाल से खोद-खोद कर नागरमोथा का कंद को चुनता है। जब दूसरे दिनशेष जगह का नागरमोथा चुनने के लिए आया। तब देखा कि कल जिधर नागरमोथा का कंद को कुदाल से खोदकर हटाया था। उसी जगह नागरमोथा उग आया है। जिसका आधा कंद कट गया था केवल

डॉ. मृत्युंजय कोईरी हिन्दी साहित्य के युवा कथाकार हैं। वर्तमान झारखंड में रहते हैं।

घास। हरीश बाकी खेत का नागरमोथा हटाने के बजाय पुनः उगे नागरमोथा को कुदाल से खोद कर हटाने लगा। जब फिर अगले दिन आया है। तब भी देखता है कि उसी जगह पिछले दिन के बराबर उग आया है। वह जहाँ फेंका था। वहाँ पर भी उग आया है। हरीश क्रोध में आकर कुदाल से सब को खोद डाला। लेकिन पुनः उग आता है। पन्द्रह दिनों तक नारगमोथा को खोदता रहा। पर हर दिन उग आता है।

हरीश एक दिन पड़ोस के दादाजी के साथ बकरी और गाय-बैल चराने चला जाता है। दादाजी से नागरमोथा का जिक्र करता है। दादाजी हँसते हुए कहा, 'नागरमोथा! नागरमोथा! .....! वह कभी मरने वाला नहीं है! वह अमृत पीकर आया है। तुम उसे लाख खोद लो! या उसके कंद को उखाड़ फेंको! पर उसका छोटा सा कंद भी छूट जाये, तो पूरा खेत में पुनः फैल जाता है।'

'दादाजी पर उसे खत्म कैसे किया जा सकता है? मैं, कोशिश करके थक चुका हूँ! कोई उपाय है, तो आप बताने की कृपा करें।'

'हरीश देखो! मैं नागरमोथा से आधारित एक घटना बता देता हूँ। फिर तुम स्वयं ही उसका उपाय खोज लेना। एक किसान हर दिन पेड़ के नीचे बैठकर सुबह और दोपहर का खाना खाता। किसानिन पेड़ के आस-पास प्रति दिन झाड़ू करतीं और गोबर से लिपतीं। किंतु एक नागरमोथा ठीक किसान के थाली के सामने उग आता। खाना खाते समय प्रतिदिन घास को तोड़ डालता। पर दूसरे दिन पुनः उगता। एक दिन क्रोध में आकर नागरमोथा के ऊपर ही थाली रख दी। पन्द्रह दिनों तक उसी थाली में खाना खाता रहा। सोलहवाँ दिन नागरमोथा थाली को छेद करके निकल जाता है।'

गाँव के प्राईमरी स्कूल से हरीश पाँचवीं कक्षा तक की पढ़ाई पूरी की। गाँव से तीन किलोमीटर दूर मिडिल स्कूल जामुदाग में नामांकन कराया। बड़े घर के बच्चे साइकिल में स्कूल जाते। वे लंच में समोसा, पकौड़ा और रसगुल्ले आदि खाते। हरीश गाँव के गरीब किसान पुत्रों के साथ पैदल स्कूल जाता। और दोस्तों के साथ लंच के समय नलकूप में पानी पी लेता। स्कूल से घर आने के क्रम में हरीश और उनके सभी मित्र पचास-पचास पैसे की इलायची दाना खरीदते। तब पचास पैसे में सौ ग्राम इलायची दाना मिलती। रास्ते में चना की भाँति एक-एक दाना मुँह में डालते। ठीक बीच सुनसान जगह के आस-पास समाप्त हो जाती। सभी इलायची दाने के समाप्त होते ही दौड़ने लगते। सुनसान जगह में सात बहनी नामक भूत रहती हैं। वे दोपहर के समय ही निकलती हैं। बच्चा को खाना देने के बहाने ठगकर, अपनी शक्ति से जमीन के अंदर ले जातीं। सात बहनी बालक से शादी करने की जिद करती। यदि बालक या व्यक्ति सबसे छोटी से शादी करूँगा, कहा तो एक-दो दिन जीवित रह सकता है। क्योंकि सभी बड़ी बहनें दामादजी को छू नहीं सकतीं। और तब तक घर वाला किसी गुनी-ओझा को बुला लिया, तो वह अपने मंत्र की शक्ति से शायद बचा सकता है। यदि वह सबसे बड़ी बहन को शादी करने को तैयार हो गया। फिर बाकी छह बहनें जीजाजी-जीजाजी कहकर एक साथ गुदगुदाने लगतीं। गुदगुदाने की हँसी से वह बच्चा या व्यक्ति हँस-हँसकर मर जाता है। दोपहर के समय सब्जी छौंकने की आवाज सुनाई देती है। यह बात हरीश और उनके मित्र को भी पता है। इसीलिए, सब डर के मारे एक-ही दौड़ में उस स्थान से आगे निकल जाते हैं।

प्रखंड के एक मात्र एस.एस. हाईस्कूल सोनाहातू में नौवीं कक्षा में दाखिला कराया। गाँव से हाईस्कूल की दूरी आठ किलोमीटर है। गर्मी का दिन था। हरीश और उनके साथी पहला दिन पैदल चला जाता है। घर लौटते-लौटते हरीश का पैर बहुत अधिक दर्द करने लगा। एक-दो मित्र के पैर में फफोला हो गया। सुबह हरीश का पैर फुल कर हाथी का पैर बन गया। तीन-चार दिनों तक आँगन में भी चलना-फिरना मुश्किल हो गया। हरीश के मित्र अपने पिता से धान बेचकर सेकेण्ड-हेण्ड साइकिल खरीदवा लिये। पैर ठीक होने पर हरीश अपने पिताजी का बाजार जाने वाली साइकिल लेकर चला जाता है। और सभी मित्र अपनी-अपनी नई साइकिल में। हरीश बाजार के दिन अपने मित्र की साइकिल में चला जाता है।

मैट्रिक पास करते ही हरीश अनुमंडल के एकमात्र पी.पी.के. कॉलेज बुण्डू के इंटरमीडिएट सेक्षन में दाखिला कराया। गाँव से कॉलेज की दूरी लगभग बीस किलोमीटर है। पिताजी सुबह मार्केट से करीब नौ-दस बजे आते। सब्जी नहीं बिकने पर कभी-कभी बारह भी बज जाता। तब पिताजी ने सबसे प्रिय बैल की जोड़ी को बेच दी। व्यापारी बैल ले जाने के लिए आ जाता है। हरीश और पिताजी बैल के सिंगों में तेल लगा रहे। उधर दोनों बैल के आँखों से आँसू निकलने लगे। फिर दोनों पिता-पुत्र हाथ में पैसा लेकर रोने लगे। जब व्यापारी दोनों बैल को एक ही रस्सी में बाँध कर ले जाने लगे। तब बैलों ने आशीर्वाद के रूप में अपना गोबर छोड़ गये। माँ टोकरी में गोबर को उठाती हुई रोने लगी। उस दिन दोपहर को कई खाना नहीं खाया। रात को दोपहर का खाना थोड़ा-थोड़ा खाकर सो गये। पिताजी अगले दिन हरीश के लिए सेकेण्ड-हेण्ड साइकिल सात सौ रुपये में खरीद दी। और बाकी पैसों से हाट जाकर एक जोड़ी बैल खरीद कर ले आये। दोनों बैल, पहले बैल की तरह ही दिखते हैं। एक किसान ने कहा, 'हरीश के

पिताजी तुम उन दोनों बैल को ही पुनः खरीद कर लाये हो क्या? दोनों का सिंग, पूँछ, पैर, गर्दन, रंग-ढंग और चाल-चलन में कोई पहचान नहीं सकता।'

हरीश प्रतिदिन घर से कॉलेज पढ़ाई करने चला जाता है। इंटर में प्रथम श्रेणी हासिल की। बी.ए. में नामांकन पी.पी.के. कॉलेज बुण्डू में ऑनर्स हिन्दी में कराया। सुबह खेत में पिता का साथ देने के बाद कॉलेज चला जाता। अपनी लगन और मेंहनत से बी.ए. में प्रथम श्रेणी के साथ प्रथम स्थान प्राप्त की। हरीश राँची विश्वविद्यालय, राँची के हिन्दी विभाग में नामांकन कराया। माँ ने सोना का लॉकेट खरीदने के लिए कानाचूका में एक-एक रुपये करके रखी थी। वह आज कानाचूका को फोड़कर पाँच हजार रुपये निकाल दी। बाकी दो हजार और किताब-कॉफी खरीदने के लिए पन्द्रह सौ रुपये पिताजी ने धान बिककर दिये। तब जाकर राँची में रहने की व्यवस्था हो पायी। हर महीना हरीश पैसा लेने घर चला आता। पिताजी साइकिल से जामुदाग धान बिकने चलते जाते और पैसा लाकर देते। जब हरीश एम.ए. के द्वितीय वर्ष में था। तब बहुत बड़ा अकाल पड़ जाता है। एक भी खेत में धान की फ़सल नहीं हुई। पिताजी अपना सपना पूरा करने के वास्ते दस डिसमिल का खेत बेच दी। फिर भी हरीश की पढ़ाई में किसी प्रकार की अड़चन आने नहीं दी। हरीश भी पिताजी के परिश्रम व खेत को बेकार जाने नहीं दिया। एम.ए. में अपनी मेहनत से प्रथम श्रेणी के साथ प्रथम स्थान प्राप्त की।

विभाग में पहला स्थान प्राप्त करने पर एक वर्ष अध्यापन का कार्य मिलता है। पर हरीश को चार महीने तक अधिसूचना नहीं मिली। वह आर्थिक तंगी से गुजर रहा। प्राइवेट स्कूल में महीना चार हजार तनख़्वाह पर योगदान करने पर मजबूर हुआ। जहाँ सुबह सात बजे से शाम पाँच बजे तक रूकना पड़ता। प्रतिदिन चार-पाँच कक्षाएँ लेते-लेते मुँह और गाल दर्द करने लगता। किंतु उसके बाद भी घर जाने की अनुमति नहीं। बैठकर विद्यार्थी की कॉपी मूल्यांकन कराया जाता। हरीश पैसों के लिए मन और शरीर को जबरन रोके रखा। कभी भटकने नहीं दिया। पिता के परिश्रम और विश्वास पर खरा उतरना चाहता था।

पी-एच.डी. करने के संदर्भ में दो दिन का अवकाश लिया। पहला दिन किसी प्रोफेसर से मुलाकात नहीं हुई। दूसरे दिन एक प्रोफेसर ने कहा, 'आज मैं बहुत व्यस्त हूँ। तुम कल आकर मिलो!' हरीश प्रिंसिपल से और एक दिन का अवकाश देने के लिए फोन से आग्रह किया। प्रिंसिपल पूरी बात सुने बिना ही फोन रख दिये। हरीश पिता के सपना को साकार करने के वास्ते प्रोफेसर से मिलने चला जाता है। प्रोफेसर ने कहा, 'मेरे पास अभी खाली नहीं है। यदि मेरे साथ ही करना है, तो कुछ दिन रूकना पड़ेगा। या जल्दी है तो अन्य प्रोफेसर से कर लो!'

हरीश चौथे दिन स्कूल चला जाता है। अपनी क्लास में नये शिक्षक को पढ़ाता देख। वह सीधे प्रिंसिपल के कक्ष में जाकर पूछा, 'सर मेरे वर्ग में कौन क्लास ले रहे हैं? उसे इससे पहले कभी नहीं देखा है। क्या? नये शिक्षक बुला लिये हैं।'

प्रिंसिपल चुपचाप पैसा गिनने लगे। हरीश के हाथ में बीस दिन का बाकी पैसा हाथ में थमाते हुए केवल इतना ही कहा, 'कल से मत आना! तुम अपना पी-एच.डी. का काम करो आराम से!' हरीश सॉरी सर! सॉरी सर! कह कर माफी मांगता रहा। पर प्रिंसिपल हाँ! से हूँ! तक नहीं बोले। हरीश के ज्यादा आग्रह करने पर गार्ड को आवाज दी, 'सूरजा बाबू मेरे कमरे में कोई पागल व्यक्ति चला आया है। इसे जल्दी बाहर निकालो! यह मेरा दिमाग खा रहा है।'

'जी हजूर! जी हजूर! कहाँ है? किधर गया? मैंने किसी पागल को अंदर आने ही नहीं दिया है।'

'यहाँ देखो! चेयर में चुम्बक सा लटका बैठा है।'

'सर! ये हिन्दी वाले शिक्षक हैं।'

'ये! किसी विषय के शिक्षक नहीं हैं। यह एक पागल व्यक्ति है। कुछ देर पहले ही मुझे मारने पर उतारू हो गया था। तुम्हें आवाज देते ही डर से चुपचाप बैठा है। इसे पकड़कर बाहर निकाल दो! और इज्जत से नहीं निकलता है, तो घसीटते हुए गेट से बाहर निकाल दो! यह मेरा आदेश है।'

सूरजा को हरीश के बाँह में पकड़कर गेट से बाहर निकालना अत्यंत दुख पहुँचा। सूरजा की आत्मा कह रही है कि आज मैं एक शिक्षक को ही नहीं। बल्कि स्वयं को भी इस स्कूल से बाहर निकाला है। हो-न-हो किसी दिन मुझे भी इसी तरह पागल-शराबी या भिखारी बनाकर, मेरे जैसे गार्ड को आदेश देकर स्कूल से बाहर निकाल दिये जाऊँगा। सूरजा शाम पाँच बजे स्कूल से छुट्टी होने के बाद घर जाने के लिए गेट के सामने खड़ा होकर ऑटो का इंतजार कर रहा। दस मिनट तक ऑटो नहीं आने पर सामने पेड़ के चारों ओर ईंट से घेर कर बनाया गया। उस चबूतरा पर बैठने के लिए जा रहा। दिन भर प्रिंसिपल के कमरे के बाहर खड़े होकर और अपने प्रिय शिक्षक को स्कूल से बाहर निकालने पर अधिक थका-हरा महसूस कर रहा है। चबूतरा के पास से किसी व्यक्ति की आह! आह! .....! की आवाज आ रही। सूरजा चबूतरा के पास चला जाता है। जहाँ हिन्दी के शिक्षक हरीश चबूतरा में लेटे बुखार से कराह रहे हैं। सूरजा ऑटो से सीधे हॉस्पिटल लेकर चला गया। हॉस्पिटल में डॉक्टर साहब के द्वारा दवाई और सलाइन देने के दो घंटे बाद हरीश ने कहा 'मैं कहा हूँ?'

सूरजा उनके सामने आकर सारी बातें बता दी।

हरीश की आँखों से आँसू निकलने लगे। वहीं आगे कहा, 'आप आज मेरे लिए भगवान बनकर आये। अन्यथा मेरा बचना संभव नहीं था। भगवान! आपको और आपके परिवार को सुखी रखे। मैं, आपका जितना भी आभार प्रकट करूँ, कम पड़ेगा। आपका आभार प्रकट करने के लिए हिन्दी के शब्द कोश में कोई शब्द ही नहीं है।' हरीश पुनः रोने लगा।

'सर! मैं एक गार्ड होने का केवल धर्म निभाया है। मैंने कोई बड़ा काम नहीं किया है। आज आपको स्कूल से निकाल दिया गया। कल मुझे भी निकाला जा सकता है। ये! तो प्राइवेट स्कूल वालों का काम है। एक को निकालकर दूसरे को कम वेतन पर रखना। यही तो उनकी नीयत है। आपसे पहले भी कई शिक्षकों को निकाल दिये गये हैं। वेतन बढ़ाने की बारी आते ही छोटे-से-छोटे कारण पर निकाल देते हैं। आपका भी शायद अब एग्रीमेंट पेपर के अनुसार एक-दो महीने में वेतन बढ़ाने की होगी?'

'जी! दो महीने के बाद ही आठ हजार करने की बात थी। पर आप कब से हैं?'

'मैं, पीछले चार साल से हूँ। लेकिन एक बार भी वेतन नहीं बढ़ा दिये हैं। मैं, मजबूरी में कर रहा हूँ। कहीं काम मिलते ही यहाँ से चला जाऊँगा। अच्छा! ठीक है, बातें होते रहेगी। मैं, डॉक्टर साहब से मिलकर आता हूँ। यदि दवा लिखकर डिस्चार्ज कर देंगे, तो रात में रूम जाकर थोड़ा आराम किया जा सकता है। सुबह पुनः स्कूल जाना है।'

'हाँ! हाँ! मैं, अब ठीक हो चुका हूँ। डॉक्टर से डिस्चार्ज करा लीजिए!'

सूरजा डॉक्टर से डिस्चार्ज कराके हरीश को रूम लेकर चला जाता है। वह भी रात भर हरीश के रूम में रूका। और सुबह उठकर सात बजे स्कूल चला गया। सूरजा के स्कूल जाने के बाद हरीश को चुपचाप बेड में लेटा देख हरीश का रूममेंट खाना खाने के लिए कहा। पर हरीश भूख नहीं है, कहकर इनकार कर दिया। रूममेंट का बार-बार आग्रह करने पर थोड़ा-सा खाना खाकर सो जाता है। हरीश स्कूल से नहीं निकालने का आग्रह प्रिंसिपल से करता है। प्रिंसिपल ने कहा, 'मैंने कल ही कह दिया था कि कल से स्कूल मत आना! तुम अपना पी-एच.डी. का ही काम करना आराम से! फिर आज आ गया।'

हरीश क्रोधित होकर कहा, 'मैं एक किसान का पुत्र हूँ। आज मैं, पुस्तक और कमल की सौगंध खाकर प्रण लेता हूँ कि अपने पिता के साथ खेती-बाड़ी ही करूँगा! पर प्राइवेट स्कूल में पढ़ाने नहीं जाऊँगा! खेती-बाड़ी करके एक ही वक्त खाऊँगा! पर कम-से-कम गर्व से जी पाऊँगा!'

हरीश को नींद में बड़बड़ाते हुए देख, रूममेंट हरीश को हिलाने-डुलाने लगा और कहा, 'क्या? नींद में बड़बड़ा रहे हो! उठो.....' हिलाने-डुलाने से हरीश की आँखें खुली। वह अपने बेड पर लेटा और सामने रूममेंट को देख। आँखें मसल-मसल कर देखने लगा। फिर रूममेंट से पूछा, 'क्या? मैं, सपना देख रहा था।'

'जी हैं! मैंने आपको जगाने की बहुत कोशिश की। पर आप न जाने क्या-क्या बड़बड़ा रहे थे?'

शाम चार बजे एक मित्र का फोन आता है। मित्र कहता है, 'आज नेट का परिणाम जारी होने वाला है।' हरीश भी यूजीसी नेट के इम्तहान में बैठा था। दोनों मित्र यूजीसी नेट का परिणाम देखने स्मार्ट कैफे चले जाते हैं। हरीश के रिजल्ट में नेट क्वालिफ़ाइड फॉर असिस्टेंट प्रोफेसर लिखा। हरीश यूजीसी नेट पास की। अब वह सहायक प्रोफेसर बनने की योग्यता प्राप्त की। उनकी खुशी साफ झलक रही। तुरंत यह खुशखबरी घर में दी। वहीं उनके मित्र के फेल होने का दुख भी हुआ।

हरीश के मन में पुनः एक बार आगे की पढ़ाई करने की इच्छा जागी। दूसरे ही दिन पी-एच.डी. के शोध-निर्देशक के लिए विभाग और कॉलेज के प्रोफेसरों से मिलने लगा। छह महीने में एक मैडम ने हाँ की और सिनोप्सिस तैयार करने का आदेश दी। साल भर में प्री-रजिस्ट्रेशन की संगोष्ठी सम्पन्न हुई।

खेती करने में असमर्थ पिता से पैसा माँगने में संकोच कर रहा। हरीश नौकरी की तलाश में जुट गया। तीन-चार प्राइवेट विश्वविद्यालय में साक्षात्कार दी। साक्षात्कार में एक्सपर्ट से लेकर कुलपति तक तारिफ करते। सब एक महीना के अंदर फोन करके बुला लिये जायेंगे। वहीं आगे कहते, 'आपका सौ प्रतिशत निश्चित है।' विकास विश्वविद्यालय के कुलपति ने स्वयं कहा, 'आप का ओके है! केवल सर्टिफिकेट जाँच करा लो!' सात-आठ महीने तक कहीं से फोन नहीं आया। बाद में पता चला कि विकास विश्वविद्यालय के कुलपति ने हरीश की जगह पर अपने मित्र की गर्लफ्रेंड को रख ली। हरीश को कहीं नौकरी नहीं मिलने पर निराश होकर रूम खाली करके गाँव जाने की तैयारी में था। वहीं सुबह अखबार में देखा कि एक मॉइनोरिटी कॉलेज में हिन्दी के तीन सहायक प्रोफेसर की विज्ञापन छपी है। इससे पहले दो मॉइनोरिटी कॉलेजों में अप्लाई किया था। पर साक्षात्कार के लिए बुलाया नहीं गया था। फिर भी अप्लाई करके साक्षात्कार की तैयारी में जुटा। साक्षात्कार में एक्सपर्ट प्रश्नों का जवाब सुन बहुत खुश हुए। किंतु हिन्दी के अध्यक्ष डॉ. ए. के. घोष ने जवाब पर असंतुष्टि जाहिर नहीं कर पाने पर अंत में पर्सनालिटी पर प्रश्न उठाते हुए कहा, 'प्रोफेसर का विषय ज्ञान के साथ-साथ

पर्सनालिटी भी होना आवश्यक है। जिसे विद्यार्थी का मन लगा रहता है। और हरीश में कोई पर्सनालिटी नहीं है।' साक्षात्कार के परिणाम आने के बाद पता चला कि तीनों में से दो यूजीसी नेट क्वालिफ़ाइड हैं। डॉ. ए. के. घोष दोनों के गाइड हैं। दोनों से तीन-तीन लाख करके साक्षात्कार से पहले ही लिये थे। उनके पिता सरकारी ऑफिसर हैं। तीसरा कैंडिटेड डॉ. घोष के साला की बेटी है। जो इस वर्ष एम. ए. पास की है। नेट के इम्तहान में दो बार फेल कर चुकी है।

केन्द्रीय विश्वविद्यालय में अनुबंध पर सहायक प्रोफेसर के चार पद की विज्ञापन अखबार में छपी। हरीश को जानकारी मिली कि केन्द्रीय विश्वविद्यालय में कोई सोर्स-सिफारिश और रिश्वत का खेल नहीं होता है। केवल कैंडिटेड की पात्रता और ज्ञान की जाँच-पड़ताल की जाती है। एक्सपर्ट आपकी रुचि और विशेष क्षेत्र से प्रश्न करते हैं। हरीश मन-ही-मन सोचा कि ऐसा होता है, तो फिर मेरा चयन निश्चय हो जायेगा! साक्षात्कार के दिन सुबह उठकर पूजा-पाठ करके चला जाता है। जहाँ चार पद के लिए लगभग डेढ़ सौ कैंडिटेड पहुँच चुके हैं। और अब भी आ रहे हैं। सबको एक कमरे में बैठाकर क्रम से बीस-बीस कैंडिटेड ले जा रहे हैं। जहाँ सब लाइन में खड़े किये जा रहे हैं। हरीश से पहले साक्षात्कार देने वाले सभी कैंडिडेट दो से पाँच मिनट के अंदर वापस लौट रहे हैं। हरीश साक्षात्कार देने के लिए कुर्सी पर बैठा। एक्सपर्ट ने केवल नाम पूछा और केन्द्रीय विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष डॉ. आर.एस. पाण्डे 'अच्छा ठीक है!' कह दिये। हरीश उठकर बाहर निकला और सीधे रूम की ओर चल पड़ा। सप्ताह दिन के बाद वेबसाइट पर परिणाम घोषित किया गया। जिसमें चार पांडे जी का चयन हुआ। हरीश के गाइड का पति केन्द्रीय विश्वविद्यालय के अंग्रेजी विभाग के प्रोफेसर हैं। जो एक दिन बातों ही बातों में कहते हैं, "हिन्दी विभाग के नवनियुक्त चार सहायक प्रोफेसर में से दो डॉ. आर.एस. पाण्डे के क्लासमेंट हैं। वह दोनों एम.ए. में पचास प्रतिशत अंकों से पास किया है। बाकी दो में से एक पाण्डे जी का भतीजा है। वह दो बार में एम.ए. पास किया है। सात बार यूजीसी नेट की परीक्षा में बैठ चुका है। चौथा डॉ. आर.एस. पाण्डे की पत्नी का चचेरा भाई है। वह केन्द्रीय विश्वविद्यालय में ही पाण्डे के साथ पिछले ही वर्ष पी-एच.डी. में प्री-रजिस्ट्रेशन कराया है। डॉ. आर.एस. पाण्डे के क्लासमेट लम्बे समय से नौकरी का जुगाड़ कर रहा था। पर कहीं जुगाड़ नहीं कर पाया था। वे दोनों पाण्डे सर से कुछ दिन पहले से मिलने आ रहा था। शायद कुछ माल-पानी भी दिया होगा! क्योंकि पिछले कई दिनों से पाण्डे सर और कुलपति को साथ में लंच के समय बाहर जाते हुए देख रहे हैं।"

हरीश नौकरी की उम्मीद छोड़कर पी-एच.डी. का शोध-प्रबंध भी लिखना बंद कर दिया। वह अब रूममेट के साथ रात की पार्टी में कैटरर के साथ काम करने जाने लगा। उसी बीच झारखण्ड के सभी विश्वविद्यालयों में घंटी आधारित सहायक प्रोफेसरों की विज्ञापन निकली। हरीश राजधानी के प्रसिद्ध राँची विश्वविद्यालय के अलावे अन्य विश्वविद्यालय में अप्लाई कर दिया। राँची विश्वविद्यालय में साक्षात्कार बहुत अच्छा गया। हरीश बहुत खुश था। फिर भी वह एक और विश्वविद्यालय में साक्षात्कार देने के वास्ते चला गया। वहाँ एक एक्सपर्ट ने विशेष क्षेत्र पूछा और अन्य क्षेत्र से प्रश्न किया। हरीश के द्वारा विशेष क्षेत्र से प्रश्न पूछने का आग्रह करने पर उन्होंने कहा, 'क्या आप केवल अपना विशेष क्षेत्र ही पढ़ाएंगे या अन्य भी?"

"पाठयक्रम में जो भी रहेगा। मैं, पढ़ा लूँगा!" हरीश ने जबाब दिया।

"तो फिर .....!"

हरीश एक-दो प्रश्न को छोड़ बाकी सभी प्रश्नों का जवाब दिया। राँची विश्वविद्यालय से केवल हिन्दी से सात कैंडिटेड का चयन हुआ। जिसमें तीन एसटी, तीन एससी और एक बीसी का। जिस विश्वविद्यालय में एक-दो प्रश्नों का जवाब नहीं दे पाया था। उस विश्वविद्यालय में हरीश का मेंरिट लिस्ट में पहला नम्बर मिला। किंतु पोस्टिंग सुदूर ग्रामीण क्षेत्र के नये कॉलेज में। जहाँ न कॉलेज का पता, न ऑफिस और न कमरे का। विश्वविद्यालय के कर्मचारी से लेकर ऑफिसर तक को सही पता नहीं। बाद में उस क्षेत्र के एक चतुर्थ वर्गीय कर्मचारी से पता चला कि कॉलेज एक आवासीय विद्यालय के दो कमरे में संचालित है। शिक्षक और स्टाफ़ पेड़ के नीचे बैठकर ऑफिस का काम निपटाते हैं।

हरीश ग्रामीण क्षेत्र के विद्यार्थी को ज्ञान प्रदान करने के उद्देश्य से योगदान किया। दो कमरा होने के कारण हरीश बरसात के दिनों को छोड़ बाकी दिनों में पेड़ के नीचे बैठाकर क्लास लेता। विश्वविद्यालय के नियमानुसार एक दिन में चार क्लास लेनी है। पर हरीश प्रतिदिन चार से पाँच क्लास लेने लगा। विद्यार्थी गैस पेपर के भरोसे पास कर रहे थे। सेमेस्टर फोर-सिक्स के विद्यार्थियों को पाठयक्रम के पुस्तकों का नाम भी पता नहीं था।

प्रिंसिपल पहले पन्द्रह दिनों का पारिश्रमिक बिल नहीं भेज देते हैं। प्रिंसिपल का कहना है, "आप रुटीन तैयार नहीं किया है। और पाँच तारीख के बाद विश्वविद्यालय के पास बिल भेजने पर विश्वविद्यालय बिल को डस्टबीन में डाल देती है। केवल पन्द्रह दिनों की तो बात है! इसको छोड़ दीजिए! अब इस महीना के लिए मास्ट्रर रुटीन में क्लास दर्ज कराके अलग से अपना विभाग का रुटीन तैयार कीजिए! मैं, मास्ट्रर रुटीन के अनुसार ही

बिल पास करूँगा!" हरीश पन्द्रह दिनों का पैसा छोड़कर प्रिंसिपल के निर्देशानुसार ही रुटीन तैयार करता है। मास्ट्रर रुटीन के अनुसार एक दिन में एक या दो ही क्लास दिखा सकता है। भले वह एक दिन में चार या पाँच क्लास लेता हो! विद्यार्थी का फॉर्म सत्यापित करना, मध्य-सत्रीय परीक्षा और अन्य काम भी करना पड़ता। महीना में दस से पन्द्रह हजार का बिल पास होता। ग्रीष्मावकाश, होली, दुर्गा पूजा और अन्य अवकाश पर एक भी रुपया नहीं मिलता। उस समय रूम का भाड़ा और खाना-पीना के वास्ते तरसना पड़ता है। दस से पन्द्रह हजार का पारिश्रमिक भी हर महीना नहीं मिलता। कभी तीन माह, तो कभी छह माह या कभी-कभी एक साल या डेढ़ साल के बाद। काम स्थायी प्रोफेसर से ज्यादा कराया जाता है। पर पैसा देने के समय घंटी गिन-गिन कर। हरीश अपना अनुभव और ग्रामीण क्षेत्र के विद्यार्थी के ज्ञानवर्द्धन के लिए रूका था। एक दिन वह अपने पी-एच.डी. के काम पर राँची विश्वविद्यालय पूछताछ और एक मॉइनोरिटी कॉलेज में साक्षात्कार देने के वास्ते राँची जाना है। प्रिंसिपल डॉ. के.के. राम के पास तीन दिन अवकाश के लिए आवेदन लेकर जाता है। प्रिंसिपल केवल साक्षात्कार के दिन का अवकाश पास करते हुए अगले दिन सुबह दस बजे कॉलेज में उपस्थित होने का निर्देष दिये। हरीश रात को करीब बारह बजे राँची पहुँचा। सुबह नौ बजे साक्षात्कार देने निकला। साक्षात्कार में बेतु का प्रश्न पूछे गये। वह दूसरे दिन, भोर करीब चार बजे की पहली बस के लिए निकल पड़ा। पर पहली बस खराब होने के कारण दूसरी बस में जाना पड़ा। कॉलेज ढाई बजे पहुँचता है। संयोग से प्रिंसिपल नहीं आये थे। तब से हरीश का मन कॉलेज से टूट गया। वह दुखी रहने लगा।

अचानक एक दिन घर से फोन आया। माँ की तबीयत बहुत खराब है। हरीश एकलौता पुत्र है। पिता भी वृद्ध हो चले हैं। अस्पताल में पत्नी की देखभाल कर पाना असंभव है। हरीश क्लास से निकलकर प्रिंसिपल डॉ.के.के. राम के नाम एक आवेदन लिखा। "मेंरी पूज्यनीय माताजी की तबीयत बहुत खराब है। वे अस्पताल में एडमिट हैं। मेरे पिताजी भी वृद्ध हो चुके हैं। माताजी को मेरा अत्यंत आवश्यकता है। मुझे तत्काल जाना पड़ेगा.....।" प्रिंसिपल केवल दो दिन का अवकाश पास करते हैं। प्रिंसिपल डॉ. के.के. राम के इस निर्णय पर हरीश क्रोधित होकर एक सफेद पन्ना में इस्तीफा पत्र लिखकर थमा दिया और गिड़गिड़ाते हुए कहा, "मैं जीवन भर घंटी आधरित सहायक प्रोफेसर की नौकरी नहीं करूँगा! इससे अच्छा मजदूरी है। गाँव में सुबह काम पर जाओ! शाम को घर लौटते समय पैसा लेकर आ जाओ!"

माताजी ठीक हो गयीं। हरीश माताजी को घर लेकर आ गया। दूसरे दिन कुदाल लेकर खेत जा रहा, तब पिताजी ने कहा, "बेटा! कॉलेज नहीं जाना है। कॉलेज से कब तब की छुट्टी लेकर आये हो?"

"मुझे कॉलेज नहीं जाना है!"

"क्यों?"

"क्यों क्या? मुझे नहीं जाना है बस!" कहता रोने लगा।

"बेटा! वहाँ क्या हुआ? रोता क्यों है?" कहते हुए पिताजी भी भावुक हो गए।

"पिताजी! मैं, कॉलेज से इस्तीफा देकर आ गया हूँ। प्रिंसिपल केवल दो दिन की छुट्टी दे रहे थे। आप ही बताये, मैं क्या करता?"

"अच्छा ठीक है! तुम चिंता मत करना! एक दिन तुम्हें अच्छे कॉलेज में सरकारी नौकरी मिलेगी!"

हरीश हर दिन खेत में काम करने लगा। खेत में उगे नागरमोथा के कंद को खोद-खोद कर निकाल रहा। कुछ का कंद छूट जाता। सुबह उस कंद से नागरमोथा का छोटा-सा पत्ता आकाश की ओस में भिंगा आसमान की ओर ताक रहा। हरीश यह देख सोच में पड़ गया, "एक घास को मैं, प्रतिदिन काट देता हूँ। पर उसे समाप्त नहीं कर पाता। वहीं बचपन में दादाजी की सुनाई कथा स्मरण हो आता है। जिसमें नागरमोथा किसान की थाली .....। हो-न-हो मैं भी एक नागरमोथा की भाँति ही संघर्ष को जारी रखूँ! यदि नागरमोथा थाली को छेद करके निकल सकता है तो मैं क्यों नहीं? किसी-न-किसी दिन ईमानदार एक्सपर्ट से मुलाकत होगी!"

हरीश पुनः खेती-बाड़ी के साथ शोध-प्रबंध का काम करने लगा। पी-एच.डी. की डिग्री भी मिल गई। उधर सरकार ने एक उच्चस्तरीय कमेटी की गठन की और राज्य के कैंडिटेड को पहली प्रथामिकता देते हुए विज्ञापन जारी की। साक्षात्कार का लाइव सीधे मुख्यमंत्री के पास। साक्षात्कार में कैंडिटेड को अकेडेमी, सेमिनार, आलेख, पुस्तक, अनुभव और साक्षात्कार आदि के टोटल मार्क्स का प्रिंटआउट दिया गया।

परिणाम की घोषणा हुई। जिसमें हरीश को पहला स्थान मिला। नियुक्ति पत्र स्वयं मुख्यमंत्री के हाथों मिली। पोस्टिंग भी मेंरिट के तहत दी गयी। हरीश को राजधानी का सबसे बेहतरीन कॉलेज मिला।

कहानी

वह निशानेबाज

श्याम सिंह

कैलाश बगल में थैला लटकाए जब इलाहाबाद बैंक का मोड़ पार कर रहा था, उसे रिक्शे पर बैठा एक युवक दिखा । वह लाउडस्पीकर से मेला गणेश चौथ शुरू होने का प्रचार कर रहा था ।" इसी माह की सात तारीख को गणेश भगवान की रथ यात्रा निकलेगी ।"

उस युवक के मुंह से ऐसा सुनते ही कैलाश का चेहरा खिल उठा। सुबह से भूखा होने पर भी उसके चेहरे पर अद्भुत संतुष्टि की चमक कौंध उठी। उसकी नजरें बरबस शून्य की ओर उठीं शायद कुछ खोजने के लिए। पूरे वर्ष उसके दिलों दिमाग पर इस बार गणेश चौथ के मेले से एयर पिस्टल खरीदने की इच्छा भादों की काली घटा की तरह छाई रही। कल ही उसने अपनी गुल्लक उठाकर देखी जो पूरी भर गई थी वह उसे फोड़कर रुपए गिनने की इच्छा यह सोचकर दबाए हुए था कि मेला शुरू होने से एक दो दिन पहले ही गुल्लक फोड़कर देखेगा, तब से ही यह इच्छा बरसने को आतुर बादल की भांति उमड़ रही है। अपने घर में छायी अभाव की धूप व भूख की अग्नि से बचाते हुए यह रुपए इकट्ठे किए हैं, मेले से एयर पिस्टल खरीदने के लिए।

कैलाश जब चंदौसी पब्लिक स्कूल में कक्षा चार में पढ़ता था, तब उसकी अंग्रेजी की मैम का लड़का अनु एयर पिस्टल से खेलता था। उसने भी एयर पिस्टल गणेश चौथ के मेले से खरीदी थी, वह तब कक्षा पांच में पढ़ता था। इंटरवेल में अनु एयर पिस्टल से निशाना लगाता था। सभी बच्चे उसके चारों ओर लगे रहते थे। वह बारी बारी से दूसरे बच्चों को भी एयर पिस्टल से निशाना लगाने के लिए देता था। कैलाश यह सब दूर से ही देखता था। वह बड़े ध्यान से देखता था कि कैसे अनु तथा अन्य बच्चे निशाना लगाते हैं। कोई एक बार सही निशाना लगाता तो कोई दो बार तो किसी किसी का छर्रा निशाने से अलग ही लगता। कैलाश को दूर खड़ा देखकर एक दिन अनु ने उससे कहा "अरे कैलाश तुम भी निशाना लगाओ ।" कैलाश ने भी निशाना लगाया। उसके लगातार पांच छर्रे निशान पर लगे। यह देख कर सभी सन्न रह गए, सभी ने उसका उत्साह बढ़ाया। अंग्रेजी की मैम दूर से यह सब देख रही थी। उन्होंने कैलाश को अपने पास बुलाया और कहा- "शाबाश! अगर तुम रोज निशाना लगाने की प्रैक्टिस करोगे तो बहुत अच्छा निशाना लगा सकते हो। एक बहुत अच्छे निशानेबाज बन सकते हो, राज्यवर्धन राठौर की तरह ।"

श्याम सिंह हिन्दी साहित्य के युवा कथाकार हैं । वर्तमान में विजय सिंह पथिक राजकीय महाविद्यालय कैराना, शामली में हिन्दी विषय के शोधार्थी हैं।

कैलाश जब घर आया तो उसने अपने पिता से एयर पिस्टल लाकर देने को कहा और स्कूल में अपने सही निशाना लगाने तथा मैम द्वारा शाबाशी दिए जाने की बात भी उसने अपने पिता जी से कही। कैलाश ने अपने पिता को बताया- "मैम कह रही थीं तुम रोज निशाना लगाने की प्रैक्टिस करोगे तो एक दिन राज्यवर्धन राठौर की तरह एक अच्छे निशानेबाज बन सकते हो।"

अपने पुत्र की वात्सल्य मिश्रित जिद के आगे पिता सिर्फ इतना कह पाए – "हां बेटा, अबकी बार गणेश चौथ के मेले से तुझे भी एयर पिस्टल लाकर दूंगा।"

चंदौसी फुब्बारा चौक पर जूता गांठने का कार्य करने वाले उसके पिता यह भी नहीं जानते थे कि राज्य वर्धन राठौर है कौन?

"गणेश चौथ का मेला कितने दिन बाद आएगा पापा ?"

कैलाश बार-बार अपने पिता से यही सवाल करता।

"बस कुछ ही दिन बाद आने वाला है बेटा।" उसके पिता हर बार यही जवाब देते। परंतु वे कुछ दिन शायद कभी ना आ सके। कैलाश के पिता क्षय रोग से पीड़ित थे कम आय की वजह से उनका इलाज नहीं हो सका। इधर कोई और कमाने वाला नहीं था। इसी वर्ष उनकी मृत्यु हो गई। कैलाश के परिवार के बाग को सींचने वाला बादल का एकमात्र टुकड़ा समय के सूर्य की गर्मी से पिघलकर बह गया।

कैलाश अपने भाई बहनों में सबसे बड़ा था। अपने पिता का सबसे प्यारा इसलिए उसे पढ़ने के लिए स्कूल भेजा। अब पिता जी के ना रहने पर घर का बोझ भी उसी के कंधों पर अधिक आया। शायद यह पिता से मिलने वाले अतिरिक्त प्यार की कीमत थी, जो उसे अपनी पढ़ाई छोड़कर चुकानी पड़ी। अब वह स्कूल की बजाय रोडवेज तथा रेलवे स्टेशन पर जूता पालिश करने जाने लगा, जैसा कि उसके मोहल्ले के बाकी बच्चे भी करते थे। उसकी मां चंदौसी बदायूं रोड पर स्थित कोल्ड स्टोरेज में आलू की छंटाई करने जाती ही थी। अब कैलाश के लिए स्कूल जाना सपने की बात हो चुकी थी।

वह रोज बड़े उत्साह से पैदल ही जूता पालिश करने रोडवेज तथा रेलवे स्टेशन पर जाता। स्कूल की सड़क पर यदि वह पहुंच जाता तो बड़ी वितृष्णा महसूस होती, मन एक तरह की खिसियाहट से भर जाता, परंतु एयरपिस्टल से खेलने का नशा, निशाना लगाने का जुनून अभी भी सीने में हिलोरें भरता। वह अपनी मां से भी एयर पिस्टल लाकर देने की ज़िद करने लगता।

उसकी मां समझाती- "बेटा अब तू समझदार हो गया है, यह सब बड़े लोगों के शौक हैं, पूरे दिन में इतनी मेहनत करने के बाद भी हम सौ दो सौ रुपए ही कमा पाते हैं, जोकि घर का खर्च चलाने के लिए भी पूरे नहीं बैठते फिर मैं तुझे पांच सौ रुपए का एयर पिस्टल कैसे खरीद कर दूं, फिर तू अकेला तो है नहीं।"

यह कहते कहते मां भावुक हो जाती और उसकी लाचारी की गवाही देने के लिए उसकी आंखों से दो चार आंसुओं के मोती झर पड़ते। एयर पिस्टल से निशाना लगाने की धुन निशानेबाज बनने का नशा कैलाश के बाल मन में लगी एक फांस थी, जो अब शायद नासूर बन चुकी थी, जिसके वशीभूत होकर वह कभी-कभी नाराज हो जाता था, मां से झगड़ा तक कर लेता। कभी वह रोटी खाना बंद कर देता, तो कभी बीमारी का बहाना कर घर में ही पड़ा रहता, परंतु लाचारी तथा वेबसी की गिरफ्त में फंसी उसकी मां उसका कुछ भी समाधान ना निकाल पाती।

> कैलाश के पास सिर्फ बीस रुपए थे। उसे अपनी बेबसी पर बहुत क्रोध आया। वह मेले में घूमता रहा। घूमते घूमते उसने सोचा- "क्यों ना इन पैसों को बचा कर रखा जाए और अगली बार के मेले तक मां से छुपा कर कुछ और पैसे इकट्ठे कर एयर पिस्टल खरीदा जाए।" यह विचार उसे गुल्लक बिकते देखकर आया। उसने एक रुपए में एक गुल्लक खरीदी और वह तुरंत घर आकर मां से आंख बचाकर एक एक रुपया कर, पैसे इकट्ठे करने में जुट गया।

एक बार जब गणेश चौथ का मेला आया। कैलाश की मां ने उसे बीस रुपए मेला देखने को दिए। कैलाश मेला देखने गया, मेले में उसे कुछ भी अच्छा नहीं लगा। वह खिलौनों की दुकान पर गया और एयर पिस्टल की तरफ देखता रहा। उसने कल्पना में ही उसे चला कर देखा। निशाना लगाया। खम्बे पर निशान लगाया। रजनीश ताऊ के दरवाजे पर लगा बल्ब, जो जलता तो ऐसा लगता जैसे हमारे घर की सारी खुशियां ही इसमें जल रही हैं। मां कहती- "इन्होंने तेरे दादा दादी के मरने के बाद बंटवारे में बड़ी बेईमानी की हमें अंदर का मकान दिया और खुद ने सड़क के किनारे का मकान कब्जा लिया, इसमें अब चार दुकानें भी बनवा लीं हैं। तेरे दादा दादी ने इन्हें पढ़ाया लिखाया और तेरे पापा दादा के साथ जूते बनाते, अब इन्हें नौकरी मिल गई। तेरे पापा इतने बीमार हुए मरते समय तक एक बार पूछा तक नहीं कि भाई तुझे क्या हुआ।"

मां के कहे अनुसार कैलाश के मन में रजनीश ताऊ के लिए नफरत का ज्वालामुखी सुलग रहा था। सबसे ज्यादा नफरत उसे

इस बल्ब से ही होती जो उनके दरवाजे पर जलता । उसने उसे कई बार छिपकर पत्थर से भी तोड़ा, परंतु मन को तसल्ली नहीं होती। वह यह सब सोच ही रहा था कि भीड़ में उसे किसी ने धक्का दिया तब वह यथार्थ के धरातल पर आया। एयर पिस्टल से निशाना लगाने का शौक उसे अपनी रगों में दौड़ रहे खून में घुलता जान पड़ रहा था। वह उससे विमुख होने के लालच को नहीं छोड़ पा रहा था। कभी वह उसे कल्पना में चला कर देखता, कभी खरीद लेता, कभी सोचता कि देखने के बहाने से लेकर भाग जाए, मेले में इतनी भीड़ है कौन देखेगा? परंतु पकड़े जाने का भय उसके रोंगटे खड़े कर देता, फिर मां पूछती- कहां से आए इतने पैसे? तो क्या जवाब देता?

सोचता हुआ वह चुपचाप एयर पिस्टल को देखता रहा, फिर उसने साहस कर उसका मूल्य मालूम किया। उसने सोचा कम से कम उसे एयर पिस्टल छूने तो मिल ही जाएगा, परंतु विक्रेता ने उसे बगैर दिखाएं ही कहा- "चार सौ रुपए का है।"

कैलाश के पास सिर्फ बीस रुपए थे। उसे अपनी बेबसी पर बहुत क्रोध आया। वह मेले में घूमता रहा। घूमते घूमते उसने सोचा- "क्यों ना इन पैसों को बचा कर रखा जाए और अगली बार के मेले तक मां से छुपा कर कुछ और पैसे इकट्ठे कर एयर पिस्टल खरीदा जाए।" यह विचार उसे गुल्लक बिकते देखकर आया। उसने एक रुपए में एक गुल्लक खरीदी और वह तुरंत घर आकर मां से आंख बचाकर एक एक रुपया कर, पैसे इकट्ठे करने में जुट गया।

आज जब उसने गणेश चौथ के मेले की शुरुआत की घोषणा सुनी तो वह खुशी से झूम उठा । वह तुरंत भागकर मां के पास जा पहुंचा, और मां को मेला शुरू होने की बात बतायी। उस दिन शाम बहुत धीरे धीरे चल कर रात के घर में पहुंची। शायद कैलाश की खुशी की खबर सुनकर उसने अपने पैरों पर मेंहदी रख ली हो। घर पहुंच कर कैलाश ने उल्टा सीधा खाना खाया और सो गया। रात में जब मां सो गई उसने अपने चारपाई के नीचे से गुल्लक उखाड़ी, उसमें से सब रुपए निकालकर गिने, जो पूरे चार सौ तीस रुपए थे। फिर सबको रखकर सो गया।

परंतु उसे नींद नहीं आ रही थी। मेले में जाकर एयर पिस्टल खरीदने की इच्छा उसके कमरे में नींद को घुसने ही ना दे रही थी। वह तो चौकीदार की तरह दरवाजे पर डट गई थी। अपने अलावा किसी और का कमरे में प्रवेश करना, उसके लिए गवारा नहीं था। एयर पिस्टल को हाथ में लेकर तरह-तरह की मुद्राओं में खड़े होना, घर में रखी विभिन्न वस्तुओं पर निशाना लगाना । रजनीश ताऊ के बल्ब को उड़ाना, एयर पिस्टल को कभी कंधे पर, कभी दोनों हाथों में लेकर फिल्मी हीरो की नकल करना आदि कल्पनाएं उसके मस्तिष्क में लहरों की तरह एक के बाद एक उठती जा रही थी। चार दिनों की दीवार को गिराते हुए सात तारीख आ धमकी। कैलाश सुबह उठा, अपना थेला उठाया और निकल पड़ा रेलवे स्टेशन की ओर। आज उसे ज्यादा ग्राहक मिलने की उम्मीद अतिरिक्त सुख था। मेला देखने के लिए दूर-दूर से लोग चंदौसी आते हैं। शाम होने से पहले ही कैलाश घर आ गया। आज उसे उम्मीद के अनुसार ही ग्राहक मिले थे। घर आकर वह नहाया, नए कपड़े पहने, अपने मोहल्ले के सभी बच्चों के साथ वह गणेश जी की रथ यात्रा देखने के लिए निकल पड़ा । सभी रथ यात्रा की स्वचालित, रंग बिरंगी विभिन्न आकार प्रकार की झांकियों को देखकर खुश हो रहे थे। वे झांकियों के विविध करतवों की आनंद बरसा में भीगे जा रहे थे। सारी चंदौसी बिजली के प्रकाश की ड्रेस में सजी एक फैंसी गुड़िया की तरह लग रही थी । जगह जगह बिजली के खंभों पर लाउडस्पीकर लगे हुए थे, जो पल-पल गणेश जी की रथ यात्रा किस गली में, इस मोहल्ले से गुजर रही है इसकी खबर दे रहे थे तथा बीच-बीच में आरती तथा भक्ति गीत कानफोडू आवाज मैं बज रहे थे। परंतु कैलाश को यह सब नीरस लग रहा था। उसे तो मेले में जाकर एयर पिस्टल खरीदने की धुन थी।

रथ यात्रा गुजर जाने के बाद जनसमूह आसपास के गांव से आकार गलियों में होता हुआ मेला ग्राउंड की और जाने के लिए उमड़ने लगा। कैलाश भी उस जन समूह में समा गया। लोगों के अगल बगल से होता हुआ, कैलाश अपने छोटे-छोटे पैरों से मेले की ओर बड़ा जा रहा था जैसे कोई मछली अपने पखों से पानी को चीरती अपने शिकार की ओर लपकती है।

मेले में पहुंचकर उसने खिलौनों की दुकानों को अपनी पैनी दृष्टि से खंगालना शुरू कर दिया। बहुत सी दुकानें पार कर दी पर उसे एयर पिस्टल कहीं भी दिखाई ना दिया। उसे निराशा और असफलता का नशा सा होने लगा। कई दुकानदारों से उसने मालूम किया- "एयर पिस्टल है आपके पास क्या?"

"नहीं" सभी ने यही जवाब दिया।

मेले में भीड़ बहुत थी, वह थक चुका था। एक बार मन में आया कि घर चला जाए, और कल फिर आकर देखें परंतु उसका मन कोई समझौता करने को तैयार नहीं था।

दूसरों को आइसक्रीम, चाट, जलेबी, टिक्की आदि खाते देख उसके मुंह में पानी भर भर आता परंतु उसने कुछ ना खाया। वह घूमता रहा। मेले की दूसरी तरफ एक बहुत बड़ी खिलौनों की दुकान लगी दिखाई दी, कैलाश फुर्ती से उधर गया। वहां जाकर उसने देखा कई एयर पिस्टल नए नए डिजाइन में रखे हैं। कैलाश का मन एयर पिस्टल देखकर उछलने लगा। उसकी सारी थकान

जाती रही । बहुत देर तक तो वह अपलक एयर पिस्टल की आकर्षक रचना को निहारता रहा।

उत्साह पूर्वक उसका मूल्य मालूम किया- "भाई साहब एयर पिस्टल कितने का है?" और उसे हाथ में देखने के लिए अपना हाथ आगे बढ़ाया।

"छः सौ रुपए का है यह"

दुकानदार ने उसे गौर से देखते हुए कहा और उसके हाथ में दिखाने के इशारे को नजरअंदाज कर दिया। दुकानदार के मुंह से यह शब्द सुनकर वह सन्न रह गया। जैसे किसी ने धकेल दिया हो और वह खाई में औंधे मुंह गिर पड़ा हो ।

उसकी तंद्रा भंग हुई जब उसने देखा उसके पीछे अपने पिता के साथ उसी की उम्र का एक अच्छे घर का लड़का खड़ा है और वह भी एयर पिस्टल को लेने की ज़िद कर रहा है । उसके पिता ने आगे बढ़कर दुकानदार से एयर पिस्टल की तरफ इशारा किया दुकानदार ने बिना मूल्य बताएं एयर पिस्टल उनके हाथों में रख दिया।

"कितने रुपए का है जी यह?" लडके के पिता ने पूछा।

"केवल छः सौ रुपए का" दुकानदार ने सहज भाव से उत्तर दिया।

लड़के के पिता ने छः सौ रुपए निकाल कर दुकानदार की ओर बढ़ा दिए । दुकानदार ने एक छर्रे का डिब्बा उन्हें देते हुए मुस्कुराकर रुपए रख लिए। वह लड़का एयर पिस्टल अपने हाथ में लेकर खुश होता हुआ आगे बढ़ गया।

कैलाश को सुनायी दिया कि .....उसकी अंग्रेजी की मैम कह रही हैं- "तुम्हारा निशाना ठीक नहीं" लगा कैलाश!

तुम एक अच्छे निशानेबाज.....?

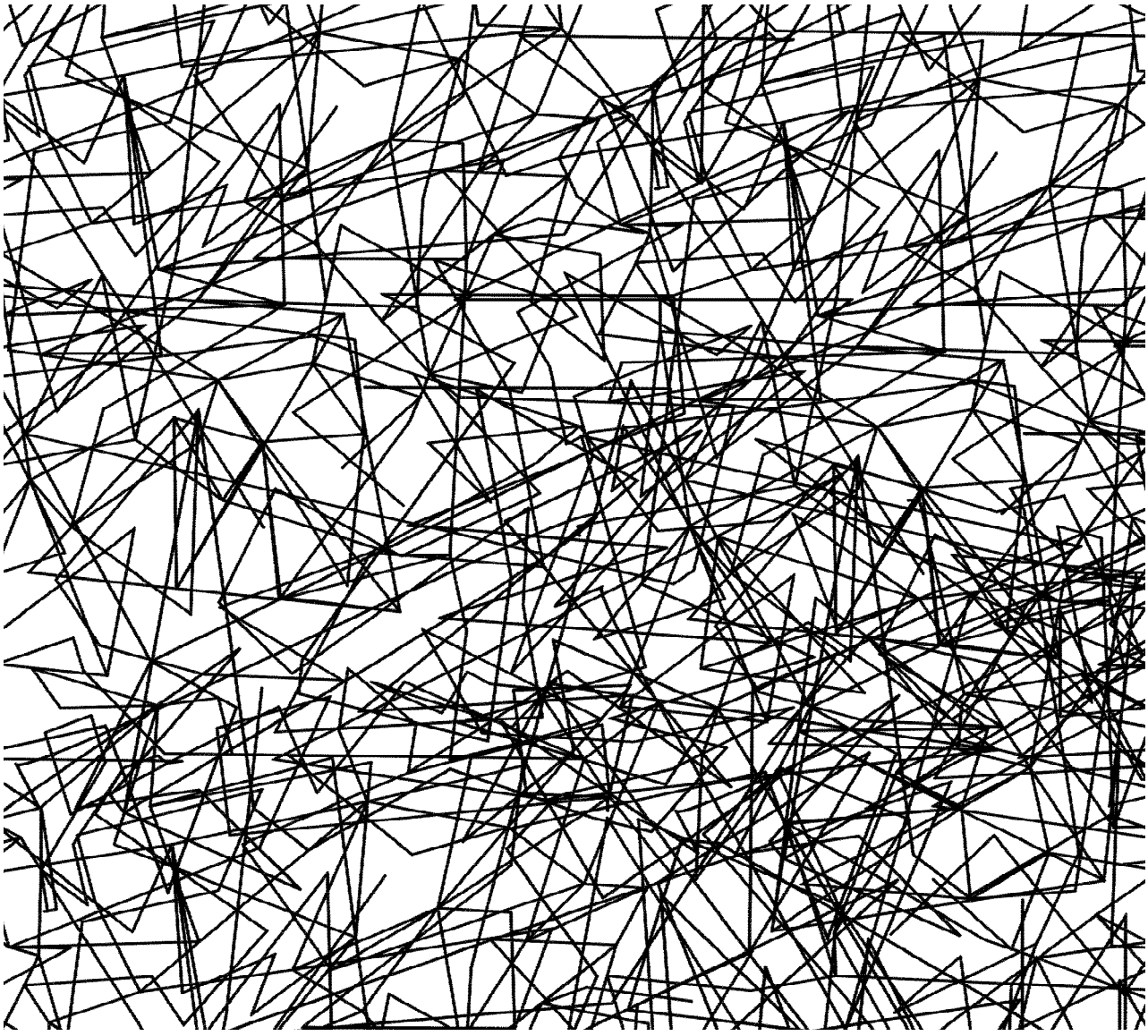

कहानी

रिश्ते का पंचनामा

श्यामल बिहारी महतो

श्यामल बिहारी महतो हिन्दी साहित्य के वरिष्ठ कथाकार हैं। इनकी कहानी संग्रह 'बहेलियों के बीच' भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित। वर्तमान में तारमी कोलियरी सीसीएल कार्मिक विभाग में वरीय लिपिक स्पेशल ग्रेड पद पर कार्यरत और मजदूर यूनियन में सक्रिय। बोकारो, झारखंड में निवास।

"मैं तुम्हें बेटा कहूं यासाढ़ू ...?" बाप रामदीन भरी पंचायत में इकलौते बेटे राधेश्याम से बार-बार पूछता रहा और बेटा राधेश्याम बार-बार यही कहता रहा- "आप मेरे बाप हो और बाप ही रहोगे....! राधेश्याम राधा की ओर देख रहा था और राधा-राधेश्याम की ओर ।

इतिहास के पन्नों में लिखा जाने वाला यह एक अनोखा और ऐतिहासिक पंचायत फैसला होने जा रहा था । ऐसा मामला न कभी किसी ने देखा था न सुना था । पंच हैरान और असमंजस में डूबे नजर आ रहे थे। पर पंचायत में औरतों की भागीदारी में कोई कमी न थी। उधर युवाओं के बीच हवाबाजी जैसा माहौल था। इन सबसे बेखबर रामदीन कपार पर हाथ धरे एक कोने में बैठा हुआ था या यूं कहिए कि बेटे राधेश्याम ने उसे कोना पकड़ा दिया था। जहां रह-रह कर उसकी कानों में उसके बचपन के दोस्त महेश बाबू की कही बातें आ-आ कर टकरा रही थी जैसे कभी कभी पानी की लहरें पत्थरों से टकराती हैं।

"रामदीन, तुम दोनों हर वर्ष कृष्ण जन्माष्टमी के दिन राधा और राधेश्याम को राधा-कृष्ण बना देतो हो", अगर बड़े होकर ये दोनों सचमुच के राधा कृष्ण बन घूमने लगे तब क्या करोगे- कभी कभी बचपन की आदतें छूटने की बजाय और गहरी होती जाती है, ऐसा कई बार देखा सुना गया है...!"

"अरे नहीं महेश बाबू !" रामदीन हंसा था- "ऐसा थोड़े न होता है, बचपन खेलने कूदने का दिन होता है, बड़ा होने पर सब रिश्तों में बंध जाते हैं । तुम्हारी सोच फिजूल है ।"

"देखते है आगे आगे होता है क्या !"

घटना डोमनीडीह की है। इस गांव में ह्मेशा कुछ न कुछ नया प्रयोग होता रहा है। सालों पहले इसी तरह की एक पंचायत बैठी थी तब के सुमहतो की जमीन हड़पने के लिए उसकी इकलौती पुत्री को उसी गांव के घनश्याम ने अपहरण कर लिया और एक सप्ताह अपने साथ रखा। पंचायत बैठी। पंचों ने लड़की से इजहार लिया। लड़की बोली-

"घनश्याम ने मेरी इज्जत के साथ खेल लिया है अब दूसरे को खेलने कैसे दें। यही मेरा मरद होगा।" अंधे को क्या चाहिए दो आंखें। घनश्याम और उसका बाप यही तो चाहता था। उसके बाद कईयों ने। इस तरह का प्रयोग किया और सफल रहा था पर राधा और राधेश्याम वाला प्रयोग इस पंचायत के लिए बिलकुल लिए बिल्कुल नया था- नथ उतारने जैसा ही...! दो दिन पहले रामदीन थाने में जाकर बेटे राधेश्याम पर कूल खानदान को धोखा देने के मामले को लेकर केस कर दिया था। बयान पर लिखवाया- "मेरे बेटे राधेश्याम ने, हमारे कूल खानदान की नाक कटवा दी है। इन्होंने वो नीच काम किया है जो पीढ़ियों से हमारे खानदान में किसी ने आज तक नहीं किया है। मेरी चल अचल संपत्ति में अगर इसको हिस्सा चाहिए तो राधा को उसे छोड़ना होगा- उसे भूलना होगा....!"

बेटे ने बाप को ईंट का जवाब पत्थर से दिया। बयान में लिखवाया- "राधा मेरा बचपन का पहला और इकलौता प्यार है। राधा को मैं भूल जाऊं ये हो नहीं सकता और राधा मुझे भूल जाए- छोड दे यह मैं होने नहीं दूंगा। राधा है तो राधेश्याम है। राधा नहीं तो राधेश्याम भी नहीं। मैं बाप की संपत्ति को छोड़ सकता हूं, राधा को नहीं....!"

थाने के बड़ा बाबू का सर चकराने लगा। जीवन में इस तरह का पहला केस था। जवाब में लिखा "रामदीन, मामला बड़ा पेचिदा है, दोनों बालिग है और दोनों ने सांइस सीटी में शादी कर ली है। आज सांइस के आगे भूत-प्रेतों की कोई अहमियत नहीं रह गई है। कानून आपकी कोई मदद नहीं कर सकती है। आप पंचायत बुला लो। पंचायत ही इसका सही फैसला दे सकता है..!"

दौड़ा-दौड़ा रामदीन पहुंचा था अपनी ससुराल। बूढ़े ससुर से कहने लगा- "अब आप ही कुछ कर सकते हैं, राधा को समझा बुझाकर अपने घर ले आइए, वरना हम दुनिया में अपना मुंह दिखाने लायक नहीं रहेंगे..!"

"दामाद बाबू, पानी सर से ऊपर बहने लगा है, मेड़ बांधना संभव नहीं है अच्छा होगा खेत का किनारा ही खोल दो। गलत लाड़ प्यार का नतीजा कभी अच्छा नहीं हुआ है..!"

"बुढा सठिया गया है ....!" रामदीन कुढ़ते हुए ससुराल से निकल गया।

रामदीन रात भर करवटें बदलता रहा। सुबह हुई पर वह किसी नतीजे पर नहीं पहुंच सका था। बेटे ने क्या खूब सबक दिया था। उस लाड़ प्यार का जो उसे बचपन में मिला करता था।

राधा जब पांच साल की थी तो मां मर गई थी। भोज काज के बाद जब रामदीन पत्नी बेटे के साथ घर लौटने लगा था तो दरवाजे के सामने राधा टूअर जैसी खड़ी हो गई थी। चम्पा देवी बड़ी बहन थी और राधा सबसे छोटी। उसके सीने में मां जैसी फिलिंग्स जाग उठी। लपक कर उसने राधा को गोद में उठा लिया और साथ ले आई। राधेश्याम राधा से एक वर्ष बड़ा था। इस तरह दोनों साथ-साथ बढ़े और पढ़ें।

कृष्ण जन्माष्टमी के दिन चम्पा देवी राधा को राधा रानी बना देती और रामदीन राधेश्याम को कृष्ण की तरह सजा देता ! और दोनों पति-पत्नी खूब आनंदित होते। राधेश्याम को बांसुरी बजाना नहीं आता परन्तु राधा से चुहल करना उसे खूब आता था। यही चुहलबाज़ी और कृष्ण सा शरारत समय के साथ जाने दोनों को कब कितना करीब ले आया दोनों में किसी को पता नहीं ! पहले मिडिल स्कूल फिर हाई स्कूल और कॉलेज। एक ही मकसद एक ही लक्ष्य ! "दोनों जियेगें भी अब साथ साथ" जब ये कसम दोनों खा रहे थे तब दोनों कॉलेज के बाहर के एक होटल में समोसे खा रहे थे और ये गीत गुनगुना रहे थे- "छोड़ेंगे न हम तेरा साथ वो साथी मरते दम तक .." यह देख होटल वाला भी मुस्कुरा रहा था। यह अनोखा लगाव कब दोनों के लिए जरूरत बन गई, इसका एहसास तब हुआ जब एमसीए करने के बाद राधेश्याम को हैदराबाद की एक मल्टीनेशनल सॉफ्टवेयर कंपनी से बुलावा आ गया। जाने लगा तो राधा रास्ता रोक खड़ी हो गई "मेरा क्या होगा ! तुम्हारे बगैर मैं यहां पानी बिन मछली की तरह तड़प तड़प कर मर जाऊंगी...!"

"चिंतामत करो राधा रानी, ज्वाइनिंग और रहने की व्यवस्था होते ही मैं तुम्हें हैदराबाद घूमाने के बहाने बुला लूंगा। फिर सोचेगें आगे हमें क्या करना है..।" राधेश्याम चला गया। राधा को वृन्दावन सूना-सूना सा लगने लगा। दिन भर कमरे में पड़ी रहती। चम्पा देवी के बहुत कहने पर कभी थोड़ा बहुत कुछ खा लेती। पर खाने के वक्त भी उसका सारा ध्यान राधेश्याम पर

> राधा का राधेश्याम के पास पहुंचने के दो दिन बाद घर में रामदीन के हाथ राधा और राधेश्याम के लिखे कई पत्र हाथ लगे तो रामदीन नींद से जागा। पत्र से ही उसने जाना कि राधा और राधेश्याम जीवन के रास्ते में दोनों कितने आगे निकल चुके हैं। कदम दोनों का कितना आगे बढ़ चुका है। इतना तो द्वापर में कृष्ण राधा के कदम भी नहीं बढ़े थे। रामदीन ने घर में किसी से कुछ नहीं कहा। मन में तय कर लिया। लौटने दो दोनों को लौटा से पिटूंगा।

लगा रहता था। पन्द्रह दिन बीत चुका था पर राधेश्याम का न फोन न मैसेज। राधा पागल हुई जा रही थी। शाम को फोन करने का उसने तय कर लिया था तभी दोपहर को उसके फोन पर मैसेज आया- "अपने सारे समानों की पैकिंग कर लो, सीट कन्फर्म हो चुका है, कल शाम हैदराबाद एक्सप्रेस में बैठ जाना। मैं समय पर स्टेशन पहुंच जाऊंगा ...!"

राधेश्याम ने मां को अलग से मैसेज किया- "मां, राधा हैदराबाद की चार मीनार देखना-घूमना चाहती है, उसका रेलवे टिकट कन्फर्म है। कल शाम उसे हैदराबाद एक्सप्रेस में बिठा देगी- प्लीज मां!" बेटे के आग्रह ने चम्पा देवी को आगरे का ताजमहल देखने की याद ताजा कर दिया था। तभी चम्पा देवी को दोनों के प्यार को समझ लेनी चाहिए थी पर वो तो राधा को गाड़ी में बिठाने ऐसे चली आई जैसे कोई मां बेटी को ससुराल विदा करने आती है- अब भूगतो लो। अपना नाक अपने हाथ काटने चली।

राधा का राधेश्याम के पास पहुंचने के दो दिन बाद घर में रामदीन के हाथ राधा और राधेश्याम के लिखे कई पत्र हाथ लगे तो रामदीन नींद से जागा। पत्र से ही उसने जाना कि राधा और राधेश्याम जीवन के रास्ते में दोनों कितने आगे निकल चुके हैं। कदम दोनों का कितना आगे बढ़ चुका है। इतना तो द्वापर में कृष्ण राधा के कदम भी नहीं बढ़े थे। रामदीन ने घर में किसी से कुछ नहीं कहा। मन में तय कर लिया। लौटने दो दोनों को लौटा से पिटूंगा।

उधर राधा और राधेश्याम ने हैदराबाद सांइस सिटी में रिश्तों की टटटी करवा दी और एक मंदिर में जाकर दोनों ने शादी कर ली। इसकी सूचना राधेश्याम ने फोन पर अपने बचपन के मित्र सुदामा को दिया। जवाब में सुदामा ने कहा- "तुम दोनों गांव लौटना नहीं। तुम्हारे प्यार का भण्डाफोड हो चुका है, तुम्हारा बाप सांप की तरह फुफकार रहा है- "आने तो दो..!" और तुम्हारी मां अपने ममता की गला घोंटने की बात कहती फिर रही है- "प्यार करने के लिए राधा ही मिली थी उसे ..!" आगे क्या करोगे तुम जानो ...! और फोन कट गया था।

राधेश्याम राधा को लेकर नवरात्र में घर लौटा-पति पत्नी के रूप में ! घर के दरवाजे उन दोनों के लिए बंद मिला। "इस घर में इन दोनों के लिए कोई जगह नहीं है ..!" बाप दरवाजे पर खड़ा हो गया था।

सुदामा का घर ही उन दोनों के लिए ठिकाना बना था। पर कब तक ..? सामने बड़ा सवाल खड़ा हो गया था।

"रामदीन...वोरामदीन .. अरे भाई कहां खो गया है...?"

मुखिया जी ने आवाज लगाई तो रामदीन सहसा उठ खड़ा हो गया "जी मुखिया जी ..!"

"रामदीन आप एक बार फिर सोच लीजिए, दोनों जवान है और दोनों ने शादी कर ली है, आपको रखना है या नहीं...?"

"हमने कह दिया मुखिया जी, इन दोनों ने जो अपराध किया है उसे मैं क्या कोई शहर भी इन्हें रहने की जगह न दे।"

"ठीक है, आप बैठ जाइए..." मुखिया जी ने पूरी पंचायत पर एक नजर डाली फिर बोला- "राधेश्याम तुम दोनों ने जो अपराध और पाप किया है, एक पवित्र रिश्ते को कलंकित किया है, उससे पूरे समाज का सिर नीचा हुआ है। न छूटने वाला दाग़ लगाया है तुम दोनों ने। उसकी सिर्फ एक सजा हो सकती है ...!" मुखिया जी क्षण भर के लिए रूके थे। सामने राधेश्याम की मां एक औरत से उलझ गयी थी। रामदीन ने जाकर उसे शांत किया।

मुखिया जी कह रहे थे- "इस अपराध की एक ही सजा हो सकती है कि तुम दोनों को धक्के मार कर गांव से बाहर कर दिया जाए। लेकिन मैं इसके पक्ष में नहीं हूं। अपराध तो तुम दोनों ने किया है पर ऐसा भी नहीं कि उसे माफ नहीं किया जा सकता है। मेरा फैसला है कि धंसा हुआ मंडपथान को तुम दोनों एक महीने के अंदर फिर से खड़ा कर दो- नया बना दो, इससे तुम दोनों का अपराध की सजा भी माफ हो जाएगी और पाप भी कट जाएगा..! क्यों भाई लोग आप सबों की क्या राय है...?"

"आपने ठीक कहा मुखिया जी ..!"

"हां हां मुखिया जी हम सब भी आपसे सहमत हैं..।"

इससे पहले कि राधेश्याम कुछ कहता उसका बाप बोल उठा- "यह भी कोई सजा हुई, मैं सहमत नहीं हूं..!"

"यह पंचायत का फैसला है रामदीन केवल मेरा नहीं...!"

"हम तैयार हैं मुखिया जी...!" राधेश्याम ने कहा और राधा को लेकर सुदामा के घर की ओर बढ़ गया।

रात को रामदीन पत्नी चम्पा से कह रहा था- "हमारा प्लान कामयाब रहा। तुम जो चाह रही थी बहु के रूप में तुम्हें राधा मिल गई और मेरे इम्तिहान में मेरा बेटा पास हो गया...!"

"बड़ा कड़ा इम्तिहान लिया तूने मेरे बेटे का...!"

"सोने की तरह निखर भी तो गया...!"

"मां ! राधा मौसी को अपने घर की बहु बनाने के लिए आप दोनों ने इतना बड़ा खेल रचा ..!"

"देखा बेटी" संगीता दरवाजे के सामने खड़ी कब से उन दोनों की सारी बातें सुन रही है....!

कहानी

जलकुंभी

नज़्म सुभाष

नहरवल! हां यही नाम था उस गांव का। यहां के बुज़ुर्ग बताते हैं कि कभी यहां पर कई नहरें थीं जिससे पूरे क्षेत्र की सिंचाई होती थी। इसी वजह से इसका नाम नहरवल पड़ा। फिलहाल यहाँ ऐसी कोई विशेषता नहीं जिसके सम्मान में कलम तोड़ दी जाए सिवाय ऊबड़-खाबड़ सड़कें, गलियारों पर बहता नाली का गन्दा पानी, गांव के चारों तरफ तालाब जो अपने आप अस्तित्व में नहीं आये, लोगों ने घर बनाने के लिए मिट्टी निकाली तब बने। तालाबों के ऊपर फैली जलकुंभी जिसके अंदर सड़ता बारिश और घरेलू नालियों का गंदा पानी। ज्यादातर घरों में रहने वाले काहिल लोग, दिन-रात जमें रहने वाले जुंए के अड्डे, जिससे थोड़ी-थोड़ी देर पर उठते गाली-गलौज के ऊंचे-ऊंचे स्वर, जिन्हें गांव के लोग बड़े चाव से सुनते और उससे पूरे दिन की काहिली के फलस्वरूप जेहन में जड़ें जमा चुके अवसाद से निजात पाकर मजे लेते।

और इन सब के बीच शाम होते ही दारू की अवैध भट्ठियां धधक्ते हुए अपनी अजीब-सी दुर्गन्ध से पूरे गांव को अपने आगोश में लेकर झूमने को मजबूर कर देतीं। क्या छोटा, क्या बड़ा सभी उनकी शरण में आने को तत्पर रहते। भले ही ये अवैध भट्ठियाँ पूरे गांव के वातावरण में जहर घोलकर उसे पल पल मौत की आगोश में भेजने को व्याकुल हों मगर क्या मजाल है जो कोई इनके खिलाफ कोई शिकायत दर्ज कराये।

ये दारू की भट्ठियां उन निचली जातियों के घरों में चलती हैं जो करीब पांच साल पहले सौ-पचास रुपये में दूसरे के खेतों में इस उम्मीद से हाड-तोड़ मेंहनत करते थे कि शाम को परिवार के लिए रूखी-सूखी रोटी का ही सही जुगाड़ तो हो ही जाएगा। इन अवैध भट्ठियों के बारे में गांव के एक-एक बच्चे से लेकर करीब छह किलोमीटर दूर थाने पर भी सभी को खबर है, लेकिन जब थाने पर हर हफ्ते चढ़ावा चढ़ जाता है तो फिर क्या सही क्या गलत। पुलिसवालों का जब कभी मूड़ होता वो किसी आदमी को भेज देते।

वैसे गांव में लाख कमियों के बावजूद भी अगर कुछ आकर्षित करने वाला है तो वह है गांव में बना 'दुर्गा माध्यमिक जूनियर हाई स्कूल' जो यहां के स्व. प्रधान जी की याद को आज भी अपने दामन में समेंटे अत्यन्त सीमित साधनों द्वारा भी शिक्षा की स्वर्णिम ज्योति को चारों ओर जलाने में अग्रसर है मगर वह स्वयं भी इस मामले में कहीं

नज़्म सुभाष हिन्दी साहित्य के युवा कथाकार हैं। वर्तमान में इनका पता 356/केसी-208, कनक सिटी, आलमनगर लखनऊ है।

चूक गया है या उसकी दी हुई शिक्षा में कोई कमी रह गयी है जो यहीं के पढ़े हुए तमाम बच्चे अब या तो दारू की भट्ठी सुलगा रहे थे या हर रोज उन भट्ठियों की चौखट पर अपनी मखमली प्यास लेकर हाजिर होते।

अंधेरी रात की चादर ने पूरे गांव को अपने आगोश में समेंट लिया था। एकदम स्याह रात और हर तरफ कब्रिस्तान सा पसरा बोझिल सन्नाटा। कभी-कभी दूर से कुत्तों के भौंकने की आवाज आ जाती थी या फिर सियारों की हुक्की हुआं..मगर कुत्तों के भौंकने और सियारों की हुक्की हुआं भी इस बोझिल सन्नाटे को वक्ती तौर पर ही मात दे पा रही थी ।

ठंड अपने पूरे शबाब पर थी। सभी अपने-अपने घरों में दुबके हुए शायद सो भी रहे होंगे मगर सजीवन की आंखों से नींद वैसे ही गायब थी जैसे ऊंची-ऊंची अट्टालिकाओं वाले शहर में छप्पर गायब हो चुके हैं । वह इस वक्त अपने पांवों को पेट के बीच में समेंटकर हाथ बांधे हुए लेटा है। जमीन पर बनाया गया पुआल और उसके ऊपर लगा जूट के बोरों का बिस्तर, ओढने के लिए एक पुराना कम्बल जो कहीं-कहीं से फट गया था। गन्ने के पत्तों से बनी मड़ैया के भीतर जब शीतलहर का झोंका उसके शरीर में सिहरन पैदा कर देता तब वह कुनमुनाकर फिर से कम्बल को ठीक से ओढने की कोशिश करने लगता। कम्बल शायद छोटा था, सर ढकता तो पैर खुल जाते और पैर ढकता तो सर। फिलहाल, उसके मस्तिष्क में इस समय एक अजीब-सा अन्तर्द्वन्द घमासान मचाये था। बावजूद इसके वह किसी ठोस नतीजे पर पहुंचे ऐसी स्थिति अभी तक न आयी थी। "आखिर उसे क्या करना चाहिए?" यही एक सवाल था जो लगातार उसके जेहन में बिजली की माफिक कौंध रहा था।

> मनरेगा जैसी योजनाएं भी मात्र कागजों में सिमटी हैं प्रधान गांव के ही लोगों को फर्जी मजदूर बनाकर एकाउंट में आये पैसे में से एक दो महीने का पैसा उन्हें देकर बाकी सब चट कर जाता है। लाखों रुपया आता है हर साल.. कहां जाता है.. सब इन्हीं हरामखोरों के पेट में। और तुम भूखे पेट आदर्शवाद की माला जपते हो। यथार्थवादी बनो सजीवन! अब वो वक्त नहीं रहा जो कोई तुम्हें रोटी देने आयेगा। रोटी तुम्हें खुद छीननी पड़ेगी...कैसे भी, अगर नहीं छीन सकते तो भूखे मर जाओगे।'

दरअसल हुआ ये कि आज सुबह गांव के राजाराम ने उसे अपने घर पर बुलाकर उसके सामने प्रस्ताव रखा कि यदि वह उसकी बनायी हुई दारू ग्राहकों तक पहुंचाये तो बदले में वह उसे दस रुपये प्रति बोतल कमीशन देगा। उसने ऐसा घटिया काम करने से मना कर दिया तब राजाराम ने उससे कहा कि वह इस बारे में सोच-समझ कर फैसला करे आखिर दस रुपये प्रति बोतल कोई घाटे का सौदा नहीं। वह इस समय इसी उधेड़बुन में था। क्या वह दारू बेचने का काम कर ले? मगर क्या उसका हृदय ऐसे घिनौने काम की गवाही देगा जहाँ लाखों लोग दारू की चपेट में आकर अपना घर बरबाद कर देते हों बीवी-बच्चों को मारते-पीटते हों और जरा-जरा सी बात में गाली-गलौच करते हैं। उसने खुद कई औरतों को फांसी लगाते या ज़हर खाकर मरते देखा है। अभी रामसुहावन की औरत ने इसी चक्कर में जहर खा लिया था । आखिर रोज-रोज की हाय-हाय, किचकिच कब तक सहती....ये तो अच्छा था प्रधान ने अपने रुतबे का प्रयोग करके पंचनामा करवा दिया अन्यथा ससुरालियों ने तो हत्या का मुकदमा दर्ज कराने की पूरी कोशिश की थी।

वह सोच ही रहा था कि उसकी दबी कुचली इच्छाओं ने उसकी हंसी उड़ाई। उसे लगा जैसे कोई उससे कह रहा है- बहुत आदर्शवादी बनते हो, ये फटे बोरों के ऊपर सर्द रात काटना, अपनी बेबसी पर आंसू बहाते कम्बल में अपने अस्तित्व को समेटना बहुत अच्छा लगता होगा क्यों संजीवन? तुम्हें दूसरों की तो बहुत चिन्ता हो रही लेकिन तुम्हारी चिन्ता है किसी को...?

"किसी को नहीं..." उसे स्वयं से ही जवाब मिला था।

क्या अबतक किसी ने पूछा कि तुमने कुछ खाया है या भूखे ही लेटे हो...। प्रचंड शीतलहर में ये जर्जर मड़ैया तुम्हारा अस्तित्व अगर बचा भी पाएगी तो कब तक? कहीं ऐसा न हो कि भूख और शीतलहर से तुम भी किसी दिन सर्द हवा की तरह ठंडे हो जाओ। क्या मरना चाहते हो?

'नहीं...नहीं, मैं मरना नहीं चाहता... अभी मेरी उम्र ही क्या है मात्र तीस साल।' जैसे ख्वाब से जागा हो वह, इतनी सर्द रात में भी उसके माथे पर पसीना चुहचुहा आया।

'तो फिर क्यूं नहीं मान लेते राजाराम की बात?'

'लेकिन मैं ऐसा काम नहीं कर सकता।'

'मगर क्यों? जानते हो तुम्हारे जैसे लोगों के लिए सरकार ने कई योजनाएं चलायीं लेकिन किसी योजना का फायदा मिला तुम्हें...नहीं न...कभी नहीं मिलेगा। अरे! गरीबी रेखा से नीचे वाला राशनकार्ड तक तो बना नहीं तुम्हारा...जानते हो क्यूं? क्योंकि प्रधान की नज़रों में तुम गरीब नहीं, और चार गांव आगे वाला धनीराम जिसके पास सत्तर बीघा खेत है वह गरीब है...

उसके पास है गरीबी रेखा से नीचे वाला राशन कार्ड। तुमने भी तो कई बार उनके खेतों में बेगार में काम किया दिन भर हाड तोड़ मेहनत की लेकिन क्या बना तुम्हारा राशन कार्ड और क्या उन्होंने बनावाया?

मनरेगा जैसी योजनाएं भी मात्र कागजों में सिमटी हैं प्रधान गांव के ही लोगों को फर्जी मजदूर बनाकर एकाउंट में आये पैसे में से एक दो महीने का पैसा उन्हें देकर बाकी सब चट कर जाता है। लाखों रुपया आता है हर साल.. कहां जाता है.. सब इन्हीं हरामखोरों के पेट में। और तुम भूखे पेट आदर्शवाद की माला जपते हो। यथार्थवादी बनो सजीवन! अब वो वक्त नहीं रहा जो कोई तुम्हें रोटी देने आयेगा। रोटी तुम्हें खुद छीननी पड़ेगी...कैसे भी, अगर नहीं छीन सकते तो भूखे मर जाओगे।'

घंटों चले विचारों के अन्तर्द्वंद ने उसे यथार्थवादी बना दिया। अब वह भूखा नहीं मरेगा। नहीं चाहिए उसे मुफलिसी पर आंसू बहाती जर्जर मड़ैया...नहीं चाहिए उसे बोरों का बिस्तर। अगर वह ग्राहकों तक दारू नहीं पहुंचायेगा तो कोई और पहुंचायेगा। फिर वह क्यूं नहीं? बहुत दिन भूखा मर चुका वह, अब नहीं मरेगा।

अन्धेरा छंट रहा था। सुबह होने वाली थी ... और उसके हृदय का अन्धेरा ... वो भी छंट चुका था। अब उसकी जिन्दगी में भी एक नयी सुबह होगी इसका उसे यकीन था।

आज वह चालीस बोतलें ग्राहकों को बांटकर आया था। सौ-सौ के चार नोट जेब में पड़े थे। कितनी गर्माहट महसूस हो रही थी उसे.. महसूस हुआ जेब की गर्माहट के साथ उसके लहू में भी नयी ऊर्जा का संचार हो चुका है। चार सौ रुपये... बिना किसी खास मेहनत के... अबसे पहले वह सौ-पचास रुपये में दूसरे के खेतों में हांड-तोड़ मेहनत करता था। अब थूकेगा भी नहीं खेत मालिकों के ऊपर... अगर वह यूं ही एक साल तक काम करता रहा तो अपनी मड़ैया की जगह पक्का मकान बनवा लेगा। अब उसकी भी किस्मत बदलने वाली थी।

वाकई में उसने जो सोचा था कर दिखाया। उसके पास अच्छी-खासी धनराशि एकत्र हो चुकी थी। उसने एक पक्का कमरा बनवा लिया था रहन-सहन भी एकदम बदल गया। जहां पहले वह हवाई चप्पलों की भी कई बार मरम्मत करवाता था वहीं अब उसके पैरों में चमड़े के जूते देखे जा सकते हैं। अब वह एक दिन में ही पांच छः सौ रुपये कमा लेता है वो भी बिना किसी खास मेहनत के....।

दरअसल यह दारू सस्ती भी थी और इसकी तीव्रता भी बहुत ज्यादा थी। इसी वजह से पियक्कड़ इसे ही ठेके वाली शराब की अपेक्षा तरजीह देते। जिसके फलस्वरूप वह लगातार बुलंदियों पर चढ़ता रहा।

उसे यह काम करते हुए लगभग एक साल पूरा होने वाला था। आज के दस दिन बाद होली है। उसे दारू के आर्डर पहले से ही मिलने लगे थे। आज भी उसे अस्सी बोतल का आर्डर मिला है, आधे पैसे एडवान्स में ही मिल गये। आधे माल पहुंचाने के बाद मिलेंगे। होली में दारू की खपत कुछ ज्यादा ही होती है। यूं तो इसकी तमाम वजहें हैं मगर सबसे बड़ी वजह है हुडदंग...होली वाले दिन गले तक दारू भरे लोगों की कुंठा देखते ही बनती है। इनकी कुंठा से शायद ही कोई छूटता हो। उसे याद आता कि कैसे होली के दिन अधिकतर पियक्कड़ गांव की मुख्य सड़क पर झुंड बनाकर इकट्ठा होते और जो भी उधर से निकलता उसे रंगों से सराबोर कर देते। खासकर महिलाओं को देखते ही इनकी लार बहने लगती। सालभर की दबी हुई कुंठाएं उफान मारने लगतीं। ऐसे में महिला के साथ का आदमी भले ही हाथ-पैर जोड़े और गिड़गिड़ाए कि हमें चाहे जितना रंग लगा लो बस औरतों को बख्श दो मगर शायद ही कोई पियक्कड़ इनकी करुण पुकार सुनता हो बल्कि यह कहा जाए तो ज्यादा सही होगा कि उसकी गिड़गिड़ाहट पर इन्हें और मजा आता। और ये किसी शिकारी की तरह झुंड के जाल में फंसी महिला के साथ क्या-क्या न कर डालते .....कभी छाती दबा दी तो कभी गुप्तांगों में ऊपर से ही उंगली घुसेड़ दी.....तो कई बार मारपीट तक...यहां तक कि दस बारह साल की बच्चियों के साथ भी यही सब.....और साथ वाला आदमी जो किसी का पति होता किसी का भाई या पिता...तमतमाता जरूर मगर इस झुंड का मुकाबला अकेले वो कैसे करे? थोड़ा-बहुत हाथ पैर चलाता भी तो मारा जाता...अगर महिला कहती कि उसके साथ बत्तमीजी हुई है तो लोग पूछते क्या?

अब इन गले तक दारू चढ़ाये और आंखों से ही मादा देह का बलात्कार करने को आतुर लाल डोरे वाले लफंडरों के

> मथुरा का इशारा पाते ही उसके पूरे जिस्म पर लाठियां बरसने लगीं और वह जानवरों की तरह चिल्लाता रहा। उसने लाख कहा कि उसका कोई कसूर नहीं। उसने किसी को ज़हर नहीं दिया। उसने तमाम कसमें खा डालीं कि वह भविष्य में फिर कभी दारू न बेचेगा मगर जिस घर के दो-दो चराग अभी-अभी बुझे हों वो भला इन कसमों की क्या कद्र करता लिहाजा उसकी न किसी को सुननी थी न किसी ने सुनी।

बीच वह इस "क्या" का क्या जवाब दे....दो चार जद्दबद्द गालियां- कि 'अपनी महतारी-बहिनिया से पूछ' के सिवाय उसके पास कोई उत्तर न होता मगर उसकी बेबसी आंखें जरूर बयां करती रहतीं। मगर गांव वालों के लिए यही तो दिन होता जब वह अपनी कुंठाओं का होली के बहाने सार्वजनिक प्रदर्शन कर पाते थे लिहाजा नशे के सुरूर की तैयारी जरूरी थी।

अभी चार दिन पहले ही पुलिस वाले अपना हिस्सा ले जा चुके हैं। राजाराम ने उसे कल ही बताया था। अब उसे कोई डर नहीं बेखटके गांक्गांव सप्लाई करेगा। इस बार उसे भी हफ्ते भर में सात-आठ हजार रुपये कमा लेने हैं। पिछली बार तो चार हजार ही कमा पाया था मगर तब वह नया था। अब तो वह खिलाड़ी हो चुका है। लेटे-लेटे वह यही सब सोच रहा था कि दरवाजे पर दस्तक हुई।

'कौन है?' अन्दर से ही पूछा था उसने। इस वक्त रात के करीब बारह बज रहे थे।

'हम मथुरा।' बाहर से आवाज आयी।

उसने दरवाजा खोला मगर ज्यूं ही वह बाहर निकलकर आता उससे पहले ही दो आदमियों ने उसका शर्ट पकड़कर उसे बाहर खींच लिया। वह जमीन पर गिरते-गिरते बचा।

'ये क्या बदतमीजी है?' घूरते हुए बोला था वह।

"चटाक्" एक थप्पड़ उसके गालों पर पड़ा।

'चल मेरे साथ'

दूसरे आदमी ने उसके कान पर देसी कट्टा लगा दिया।

'ये ... ये... क्या तरीका है... कहां ले जा रहे हो मुझे? आखिर मेरा कु...सूर क्या है?'

वह तीन आदमियों से घिरा होने के बावजूद समझ नहीं पा रहा था कि एकदम से आखिर हो क्या गया है। अलबत्ता उसे इतना यकीन हो चुका था कि जरूर कुछ गलत होने वाला है। वह चाहता था भाग ले मगर कैसे? अगर भागता भी तो किसी भी समय गोली उसके शरीर के पार निकल जाती।

'कसूर... पूछता है साला... बताता हूं... पहले साथ तो चल...।' उनमें से एक गुर्राते हुए बोला।

'मगर इतनी रात को कहां ले जा रहे हो... दादा...कौन सी गलती हो गयी मुझसे? तुमने आज दारू मंगायी थी और आज ही हमने घर पहुंचा दी। फिर क्यूं?'

गला रुंध गया था। आंखों से आंसू छलक आये। उसे मालूम था कि मथुरा बहुत खतरनाक आदमी है, दो-दो कत्ल कर चुका है। आज वह उसके चंगुल में आया है तो जरुर कुछ न कुछ होना है।

'साले! ज्यादा चूं-चप्पड़ करेगा तो गोली मार दूंगा... चुपचाप चल...'

मथुरा दांत पीसते हुए बोला।

उसने चुपचाप उनके साथ चलने में ही भलाई समझी। आधा घंटे बाद जब वह उनके गांव भीखमपुर पहुंचा तो रोने की आवाजें आ रही थी। उसके घर के बाहर तमाम भीड़ इकट्ठा थी। बोटी-बोटी कांप उठी उसकी। मथुरा ज्यूं ही उसे लेकर भीड़ के पास पहुंचा भीड़ तितस्बितर हो चुकी थी। सामने का दृश्य देखकर उसकी आंखें फटी की फटी रह गयी। मथुरा के दोनों लड़के मरे पड़े थे। तभी उसे पीछे से एक लात पड़ी।

"धड़ाम" की आवाज के साथ... वह जमीन पर गिर पड़ा। जैसे ही वह गिरा मथुरा की पत्नी ने चीखना शुरू कर दिया- "मार डाला इस हरामी ने मेरे दोनों लड़कों को... हरामी...दहिजार....मार डाला...मेंरी गोद सूनी हो गयी... कुत्ते तुझे दोजख में जगह न मिले...कीड़े पड़ें... कोढ़ फूटे..."

वह सजीवन के गालों पर थप्पड़ों की बरसात किये जा रही थी। सजीवन चुपचाप बैठा जाने कहां खो गया था। उसकी आंखें जैसे पथरा गयी थीं। उन थप्पड़ों का उस पर कोई असर नहीं था।

'क्या किया जाये दादा...इस कमीने का।' उनमें से एक आदमी चीखा। ठंड के दिनों में भी लोग इकट्ठा थे। कानाफूसी चालू थी।

कोई कहता- "इसे इतना मारो कि तड़प-तड़प कर मर जाये.. खुद अपनी मौत मांगे..."

कोई कहता- "पुलिस के हवाले कर दो। जब जेल की चक्की पीसेगा तब समझ में आयेगा। जहर बेचता है साला.. बरबाद करके रख दिया है पूरी चौहद्दी को।"

'मरना तो पड़ेगा ही इसे। मेरा पूरा बंश नास करके रख दिया।'

मथुरा भले ही सुबक-सुबक कर रो रहा था मगर आंखों में किसी घायल शेर की तरह अंगारे दहक रहे थे।

'नहीं दादा....ऐसा..म..त करो... मैंने दारू में ज़हर नहीं मिलाया...मैं... मैं तो सिर्फ दारू पहुंचा जाता हूं बनाता. तो राजाराम है। मुझे छो...ड़ दो मैं... बे..कु.. सूर हूं.. मैंने.. न ... हीं... मारा इनको... मेंरी... तो दुश्मनी भी नहीं... किसी से। मुझे.. छो..ड़ दो आपके पैर पड़ता हूं।' मथुरा के पैरों से लिपट गया था वह।

"भड़ाक्" उसके पेट पर एक जोरदार लात पड़ी तो हृदय विदारक चीख निकल गयी। उसे ऐसा महसूस हुआ जैसे पसलियां

पीठ में धंस गयी हैं..आंखों के सामने लाल-पीले दायरे गर्दिश करने लगे थे।

मथुरा का इशारा पाते ही उसके पूरे जिस्म पर लाठियां बरसने लगीं और वह जानवरों की तरह चिल्लाता रहा। उसने लाख कहा कि उसका कोई कसूर नहीं। उसने किसी को ज़हर नहीं दिया। उसने तमाम कसमें खा डालीं कि वह भविष्य में फिर कभी दारू न बेचेगा मगर जिस घर के दो-दो चराग अभी-अभी बुझे हों वो भला इन कसमों की क्या कद्र करता लिहाजा उसकी न किसी को सुननी थी न किसी ने सुनी।

लगातार लाठियां बरसती रहीं तड़ातड़.अब तो वह कराह भी न पा रहा था। कहर ढा रही इन लाठियों के बीच खून से लथपथ उसका जिस्म पिटता रहा और कुछ देर बाद वह निर्जीव हो गया।

लाठी भांजती भीड़ का जब गुस्सा शांत हुआ तो उसे होश आया कि सजीवन तो कब का मर चुका है।

"दादा अब क्या किया जाए?" अचानक किसी ने मथुरा से मुखातिब होकर कहा।

"इसकी लाश अगर यहां बरामद होगी तो हम सब फंसेंगे" मथुरा ने लाश को हिकारत से देखकर थूकते हुए कहा।

"फिर आप ही बताइए क्या करें?"

"इसकी लाश को ले जाकर इसके गांव के किनारे तालाब में डाल दो। लोग यही समझेंगे दारू पीकर उसमें गिर गया होगा।"

सुझाव वाजिब था। रात के सन्नाटे में तीन लोग लाश ठेलिया में लादकर ले गए और तालाब में फेंक दिया। फेंकते ही जलकुंभी काई की तरह फट गई और छपाक् की आवाज के साथ लाश पानी के अंदर.....।

"कफन भी नहीं मिलेगा साले को!"

एक ने दांत पीसते हुए कहा तो बाकी दोनों ने सहमति में सिर हिला दिया। ये और बात है कि जलकुंभी ने शायद उनकी बातें सुन ली थी। उसे लाश पर दया आई और उसने एकाएक लाश को अपनी हरी-हरी पत्तियों से ढक लिया। मानो लाश पर सफेद की बजाय हरा कफन ओढ़ा दिया गया हो। मौत एक शाश्वत सत्य! कोई इसके अस्तित्व पर प्रश्नचिन्ह नहीं लगा सकता मगर यह मौत.....?

तीन दिन बीत चुके हैं। सजीवन की किसी को कोई खबर नहीं है। तालाब से सड़ी लाश की दुर्गंध उठने लगी है मगर दारू की भट्ठियों से उठने वाली दुर्गंध में वह दबकर रह जाती है। आखिर कौन है उसकी मौत का जिम्मेदार? अवैध दारू की भट्ठियां! न न.....वह तो आज भी शाम ढलते ही अपने शबाब पर होती हैं। अगर आप पीना चाहें तो नहरवल में आपका स्वागत है।

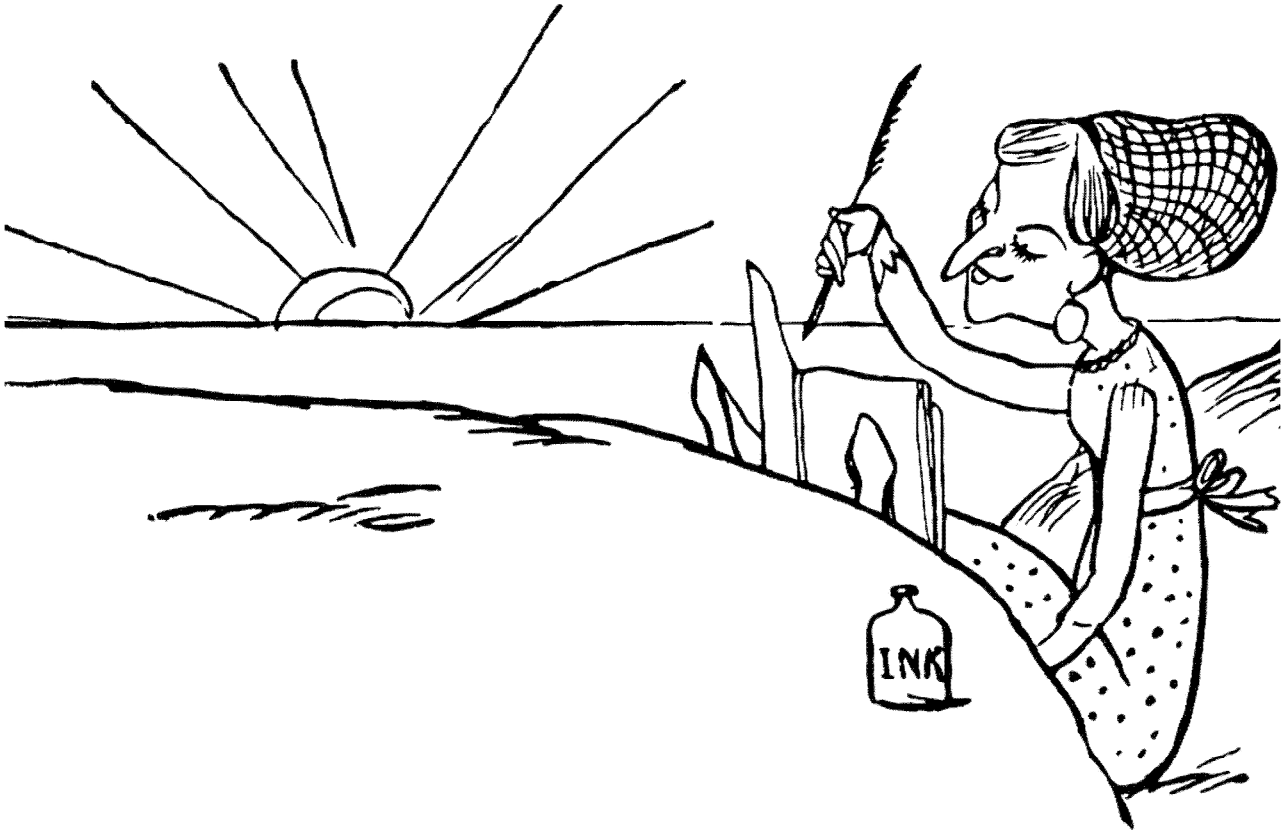

कहानी

वनग्राम की लड़कियाँ

रमेश गोहे

रमेश गोहे युवा कवि और कथाकार हैं । इनकी एक काव्य संग्रह 'पगडंडियां' प्रकाशित । वर्तमान में हिन्दी विभाग, गुरु घासीदास विश्वविद्यालय, बिलासपुर में सहायक प्राध्यापक के पद पर कार्यरत हैं ।

एक खबर, जो चारों दिशाओं में फ़ैल गई थी, 'दामिनी की मौत' अब तक एक कहानी बन चुकी थी । दामिनी की मृत्यु के दुःख की तरह ही, उस पेड़ का जड़ से उखड़ जाना भी, हम सबको बहुत अखरा था । उसके उखड़ जाने के बाद से कुछ सालों तक बचे हुए चार के पेड़ में भी फल आने बंद हो गए थे । चार का यह पेड़, जो अब अकेला बच गया है, कुछ दिनों पहले इसका एक साथी और था । दोनों अगल-बगल किसी जोड़े की तरह बरसों से एक साथ खड़े थे, किन्तु दोनों का यह साथ जीवन की आखिरी साँस तक नहीं चल सका था । एक दिन तेज आंधी आयी और इसके साथी पेड़ को जड़ से उखाड़कर गिरा दिया । जमीं पर गिरा तो उसकी कई शाखाएं टूटकर बिखर गईं और अंततः वह मर गया । कुछ इसी तरह, मनुष्य संसार में भी दो दिलों ने एक होने का ख्वाब संजोया था । एक-दूजे के लिए जीने-मरने की कसमें खाई थीं । मरने-मिटने के हालात में भी, दोनों कंटीली राहों को जिन्दादिली से पार करते जा रहे थे पर नियती ने ऐसा कहर ढाया कि उसकी भरपाई कभी संभव नहीं थी ।

हमारे खेत में अब एक मात्र बचे चार के पेड़ से कुछ दूरी पर एक नाला है । नाले के उस पार सतपुड़ा पर्वत श्रृंखला का एक छोटा सा पर्वत है । उस पर्वत पर बरगद का पेड़ है । बरगद का पेड़ उस उंचाई पर ऐसा प्रतीत होता है जैसे वह आसपास के पेड़ों का मुखिया हो, ! ठीक गाँव के जमींदार या साहूकार की तरह) जो सबकी रखवाली करता हुआ बरसों से धूप, बारिश और ठण्ड झेलता खड़ा है । कुछ लोग कहते हैं- उस बरगद के नीचे मत जाना, वहां रात भर भूतों का मेला लगा रहता है । रोने-चिल्लाने की भयंकर आवाजें आती हैं । कई दीये जलते एक-साथ जगमगाने लगते हैं । उस बरगद के पेड़ से सब डरते हैं, जैसे गाँव के मुखिया से भी सब डरते हैं । शायद इसीलिए आज तक किसी ने भी उसे कांटने की हिम्मत नहीं की । आँधी और तूफ़ान भी आज तक उसका कुछ नहीं बिगाड़ पाए थे । वैसे बरगद के पेड़ से डरने के, एक साथ कई कारण थे । उस खेत के किसान जमलू को, उसी बरगद के नीचे एक सांप ने डंस लिया था और बचाने की कई कोशिश

करने के बाद भी वह नहीं बच पाया था। जमलू मरते–मरते कह गया था- उस बरगद के नीचे मत जाना...। शायद वह और कुछ कहना चाहता था, पर बोलते-बोलते ही हकलाता हुआ वह हमेशा के लिए चुप हो गया। एक पागल कई दिनों तक बरगद के पास ही,अपना डेरा जमाकर रहने लगा था। उसके पास से आने–जाने वाले लोगों को पत्थर मारता था। पर कुछ लोग हिम्मत करके बरगद के पास जरूर जाते थे। जमलू की पत्नी, उसकी मृत्यु की बरसी पर उस बरगद के नीचे एक दीया जलाकर रख आती है और उसका बेटा जब कभी बकरियां लेकर उस पेड़ के पास से गुजरता तो दूर से ही अपने पिता को याद करते हुए दोनों हाथ जोड़कर धरती पर माथा टिका देता। कभी–कभी वह, उसके पास खड़ा-खड़ा घंटों तक कुछ बड़बड़ाते रहता। कभी वह स्वयं को अपनी उम्र से बहुत बड़ा समझने लगता और समझदारी की बातें करने लगता। वनग्राम में धीरे-धीरे सब कुछ इसी तरह चल रहा था।

इन्हीं, चार–जामुन और महुआ के पेड़–पौधों की छाँव तले, हम दोनों (दामिनी और मैं) धीरे-धीरे 'किसी लता और पेड़ के तने की तरह' दोस्त बन रहे थे। हम सम-वय तो नहीं थे, पर उम्र का बहुत फासला भी ना रहा होगा। वह कक्षा आठवी की छात्रा थी और मैं कक्षा दसवी का छात्र। मेरे गाँव की लड़कियां आँठवी क्लास पढने के बाद स्कूल नहीं जाती हैं। वैसे, सभी वनग्रामों का यही हाल है, गाँव में जितनी कक्षा तक स्कूल है, लड़कियों को उतना ही पढ़ाया जाता है। आगे की पढ़ाई उनके लिए नहीं होती है ! अगर स्कूल ना जाना हो तो, आदिवासी लड़कियां सलवार शूट या स्कर्ट और शर्ट कम ही पहना करती हैं, सात-आठ साल की उम्र होते ही साड़ी ही पहनने लगती हैं। पर इतनी कम उम्र में साड़ी कहाँ संभाल पाती हैं लड़कियां और साड़ियाँ ही कहाँ संभाल पाती हैं इन लड़कियों को.. ! निगोड़ी गरम हवाएं कहीं ना कहीं से छू ही लेती है इनके जिस्म को ....। और जल जाती है लडकियां। ऊपर से गर्मी का मौसम,जिसमें सब कुछ जलते रहता है। धरती जलती है, आसमान जलता है। निर्जन आसमान की तो कोई बात नहीं, किन्तु जीवन भार को ढ़ोने वाली धरती पर आग इस तरह फ़ैल जाती है कि, जलती धरती पर फिर क्या–कुछ नहीं जलता। कहते हैं, दिलों के जलने की कोई रुत नहीं होती, फिर भी मुझे ऐसा लगता है, इन दिनों में दिल कुछ ज्यादा ही जला करते हैं। धरती की तपन को कम करने के तो कुछ उपाय होते भी हैं, पर ...दिलों में लगी आग, पूरी तरह से कब बुझ पाती है ! उफ़्फ़.....ये गरम लपटें....!

एक दिन मैंने देखा चार के पेड़ के नीचे दामिनी और सुनीता आई हैं। दोनों किसी बात पर बहस कर रही हैं ! दामिनी- नहीं, जिद मत कर तू अभी इतनी बड़ी नहीं हुई है। सुनीता- तो क्या तू बहुत बड़ी हो गई है ? मैं भी समझती हूँ सभी चीजों को। देखना आज मैं वो कहानी सुनकर ही रहूंगी। आने दो उसे। सामने देखो दीदी कौन आ रहा है ? और आगे बढ़ता हुआ मैं दामिनी को देखता हूँ। दामिनी को देखते ही मेरी ख़ुशी का ठिकाना नहीं रहा। मैं जल्दी–जल्दी पेड़ की ओर बढ़ने लगा था। मेरे वहां पंहुचते ही दामिनी वहां से जाने लगी, और मैं अधीर होता हुआ पूछने लगा दामिनी....क ...कहाँ....का...कहाँ..जा रही हो ? क्या तुम मुझसे अब तक नाराज हो ? दामिनी..मै...दामिनी...और मेरी हड़बड़ाहट देखकर, दामिनी मुस्कुराती हुई बोली- मैं कहीं नहीं जा रही हूँ, बस अभी आती हूँ। ज़रा बकरियों को दूर खदेड़कर आऊं ...और हाँ, मै तुमसे अब तक नाराज नहीं हूँ ....बुद्धू कहीं के..। दोनों तरफ से खिलखिलाती हँसी..! जल्दी आना...पगली कहीं की...। बुद्धू... पगली....।

धीरे–धीरे दामिनी दूर चली गई। अब सिर्फ उसकी छाया भर दिखाई दे रही थी और धूल पर जमे, उसके पैरों के निशान, जो उसी दिशा की ओर उन्मुख थे। क्या उसके पैरों के वें निशान मुझे भी उधर ही बुला रहे थे या उसकी बात सच थी ...? अभी आती हूँ। सुनीता मेरा हाथ पकड़कर झटकती हुई, मेरी भावतन्द्रा तोड़कर, मुझसे कहती है- मैं तुम्हें गाना सुनाऊं ? सुनीता दामिनी की चचेरी बहन है,जो अभी कक्षा पांचवी में पढ़ती है। सुनीता ने पलास के पत्तों का दोना बनाकर उसमें चार के कुछ खट्टे-मीठे फल जमा करके रखे थे, उन्हें मेरी ओर बढाती हुई बोली- लो...खाओ।

मैंने बे-मन से, चार के काले-काले, एक-दो फल उठाये और मुंह में डालकर चूसने लगा। अब तक सुनीता ने एक लोकगीत गाना शुरू कर दिया था... "ऊंचो सड़ेका तरिमा हो, सांगो सड़ेका झोक सिया लाता" इस लोकगीत का मतलब, कुछ इस तरह होता है – सखी चार के ऊँचे-ऊँचे पेड़ों पर मत चढ़ो, हवा का झोका तेजी से चल रहा है और चार के पेड़ हिल रहे हैं, ऐसे में तुम पेड़ से गिर जाओगी। लोक-गीत ख़त्म करके वह मुझसे कहती है- मुझे कहानी सुनाओ ना....कहानी.. ? अच्छा सुनो– एक था राजा, एक थी रानी...। नहीं ...नहीं ...यह कहानी मुझे नहीं सुननी। इस कहानी को तो मैं कई बार सुन चुकी हूँ। तो... कौन सी कहानी सुननी है तुम्हें ? वह कहानी, जो दामिनी तुम्हें सुनाती है। तो तुम दामिनी से ही क्यों नहीं सुनती वह कहानी ? वह मुझे नहीं सुनाती ..कहती है- तुम्हारे सुनने की कहानी नहीं है। वह मुझे हमेशा यही 'राजा और रानी' की पुरानी कहानी सुनाती है। मुझे नहीं सुनना उससे ...! और सुनीता रुआंसी हो जाती है....अरे सुनीता ये क्या... तुम तो रोने लगी और सुनीता उसी तरह बोल रही थी.....वह दादी के पास सोती है और दादी उसीच को अच्छी-अच्छी कहानी सुनती है। आँखों से ढूलक पड़ी बूंदों ने उसके

गालों पर कुछ रेखाएं बना दी थी। मैं सोच में पड़ गया कि सचमुच सुनीता को वह प्रेम कहानी कैसे सुनाऊं ? वह अभी बहुत ही छोटी है, कई बातों को समझ भी नहीं पायेगी। मैंने भी टालते हुए उससे कह दिया- अच्छा, मैं दामिनी से कहूँगा फिर वह तुम्हें सुनाएगी और अगर नहीं सुनाएगी तो फिर मुझे बताना। सुनीता से ऐसा कहते कहते ...मैं कहीं डूबने लगा था। मेरा मन हिलोरे लेने लगा था, हृदय धड़कने लगा था, जैसे सागर में पानी बड़ी-बड़ी लहरों के थपेड़े ले रहा हो। माथे पर पसीना आ गया था। गर्मी की वजह से या.... कुछ सोचने की वजह से, पता नहीं ? गरम दिनों की ये गरम लपटें...उफ्फ !

हवा का एक तेज झोंका आया और मुझे कुछ राहत महसूस हुई, मेरे बाल उड़ने लगे, कपड़े लहराने लगे। दूर से पास, वापस आती हुई दामिनी दिखाई दे रही थी। वह धीरे–धीरे जितनी पास आ रही थी, मैं चेतन और प्रसन्न हो रहा था। जैसे..... मेरा मन, मेरे तन में वापस आ रहा था और मुझे कोई नगमा सूझ रहा था.... 'धीरे-धीरे से मेरी जिन्दगी में आना धीरे-धीरे से ...।' यह नगमा होठों से बाहर निकलता उससे पहले ही दामिनी मेरे एकदम पास तक आ गई थी। पास आते ही वह मुस्कुराने लगी और मीठी आवाज में मुझसे बोली–कैसे हो....?

हाँ, मुझसे कुछ कहना चाहते थे ना.... ?

बताओ क्या बात है, बोलो ना ...।

उसने प्रश्नों की झड़ी ख़त्म की और मंद-मंद मुस्कुराने लगी।

उसकी मुस्कुराहट ने अचानक, जैसे मेरे अन्दर प्राण भर दिए थे। वह लगातार मुझे देखे जा रही थी, मुस्कुराती जा रही थी। और मैं... कुछ ना बोल पाने की स्थिति की गहराई में धंसता ही चला जा रहा था। पता नहीं क्यों, आज मुझसे उसके सामने कुछ भी बोलते नहीं बन रहा था। वैसे तो उससे मिलने पर मुझे ज्यादा कुछ बोलने की जरुरत भी नहीं पड़ती थी, पूरे समय वही बोलती थी, पर आज की बात ऐसी भी नहीं थी। आज सब कुछ अलग ही था, जो हमेशा नहीं होता था।

दामिनी ने आँखों के इशारे से एक बार फिर प्रश्न किया। आखिरकार ..हड़बडाता हुआ मैं वही एक पुराना, घिसा–पिटा सवाल पूछ बैठा....कहीं मधुमक्खी का छत्ता देखा है क्या ? दामिनी कई दिन हो गए शहद पीये... । दामिनी के साथ मैं,अब तक कई बार शहद निकाल कर पी चूका था। वह शहद निकालने का मंत्र और तरीका दोनों जानती थी, मुझे भी कहीं मधुमक्खी का छत्ता दिख जाता तो उसी को बताता। वह छत्ते को तोड़ती और हम दोनों साथ बैठकर शहद पीते। रायमुनिया की झाड़ियों में हम घंटों मधुमक्खी का छत्ता खोजते रहते और कभी मिल जाता तो उसे दामिनी ही तोड़ती। पलास के पत्तों का दोना बनाते, उसमें शहद इकट्ठा करते किसी पेड़ की घनी छाँव में बैठते और इसी तरह शहद चाटते-चटाते हुए दोपहर का आनंद लेते रहते।

इस प्रक्रिया में मैं उसके सौन्दर्य को खूब ठीक ढंग से निहार पाता था। वह भी मुझे इसी तरह निहारती थी या नहीं, कुछ कहा नहीं जा सकता । पिछली बार इसी तरह शहद....वाली प्रक्रिया में उसने मेरी ऊँगली काट ली थी और मैंने गुस्से में उसके गाल पर एक चांटा मार दिया था। उस दिन से लगातार मेरी बेचैनी बढती जा रही थी। इधर कुछ दिनों तक दामिनी दिखी भी नहीं थी, लगा वह नाराज न हो गई हों।

शायद अब शहद साथ–साथ नहीं पिया जा सकता ! पर दामिनी आज मेरे सामने थी और उसके हावभाव से ऐसा कुछ भी नहीं लग रहा था कि, वह मुझसे नाराज होगी। मैं फिर से एक बार पूछना चाहता था कि.... दामिनी तुम मुझसे नाराज तो नहीं...? पर दामिनी ने पहले ही बातों का मोर्चा संभाल लिया था।

वह इस बीच की कई घटनाएं बताने लगी थी-एक लड़के ने, उससे एक बार शाम को, झाड़ियों में अकेले में मिलने की बात कही थी और उसने सीधे जाकर उस लड़के की माँ को बता दिया, लड़के की माँ ने लड़के के बाप को और बाप ने लड़के की खूब धुनाई की। अब वह दामिनी की तरफ देखता भी नहीं। लेकिन उसने कहा था, कभी ना कभी वह इस मार का बदला जरूर लेगा ! दामिनी की माँ ने दामिनी से भी कहा कि, इन लड़कों से ज्यादा मत बतियाया करो। पता नहीं, लड़के सामान्य बातों का क्या मतलब निकाल लें ! अब वह बकरियां चराने भी कम ही निकला करती थी और निकलती भी तो घर से ज्यादा दूर नहीं जाती।

मैंने फिर पूछा- दामिनी चलें कहीं मधुमक्खी का छत्ता खोजने ?

मेरी बात का बिना जवाब दिए ही दामिनी, मेरा हाथ पकड़कर आगे बढ़ गई थी। हम दोनों कहीं जा रहे थे लेकिन मंजिल दोनों को नहीं मालूम थी। आज किस दिशा में निकल जाएँ, यह भी पता नहीं था। कहीं कुछ ....नहीं....! मुझे उस पर भरोसा था, लेकिन खुद पर... ? क्या आज का एकांत मुझे.....? नहीं-नहीं.., ऐसा नहीं हो सकता, और दामिनी भी ऐसी लड़की नहीं थी। खैर ....जो भी हो ! हम निकल तो पड़े ही थे किसी अनजानी राह पर। मेरे मन में कुछ अलग हो जाने का अंदेशा जरुर था और चलते-चलते....हम दोनों, सबकी नजरों से दूर....झाड़ियों में छुप गए थे ! आज मौसम का मिजाज भी कुछ ठीक नहीं था। मन से आसमान तक बादलों का कालापन निरंतर बढ़ता जा रहा था। हवा कभी–कभी आँधी का रूप ले लेती थी और पेड़ झूमने लगते थे। लग रहा था जैसे बारिश के आगमन की ख़ुशी से नृत्य

कर रहे हों ! जो भी हो किन्तु, आज मेरे मन में कई शंकाएं थीं और दामिनी से पूछने के लिए, ढेर सारे सवाल । इसी बीच दामिनी चहकी....अरर..रे वाह ...वो देखो । कहाँ.. ? उस पेड़ पर देखो ...अरे... हाँ, यह तो बहुत बड़ा छत्ता है । मैं सोच रहा था....शहद भी ज्यादा निकलेगा और हम साथ बैठकर देर तक पीयेंगे । और मैं क्या सोच रहा था कि शहद पीते–पीते मैं, दामिनी से पूछ लूँगा मेरे मन में जो चल रहा है । क्या वह राजी होगी या कुछ...?

कुछ देर बाद दामिनी, हाथ और चेहरे पर बिना कोई कपड़ा बांधे ही पेड़ पर चढ़ गई और मधुमक्खी का छत्ता तोड़ने की कोशिश करने लगी । आज मधुमक्खी का छत्ता बहुत ऊंचाई पर मिला था और हवा भी तेज चल रही थी । किसी तरह दामिनी मधुमक्खी का छत्ता तो तोड़ लेती है,किन्तु आज दामिनी को मधुमक्खियों ने उसके गाल, कलाई, कपाल, और गर्दन जैसी कई जगहों पर काट लिया था । उसका चेहरा बुरी तरह सूज गया था। दामिनी की एक आँख सूजकर बंद हो गई थी । मैं उसकी सूजी आँख देखकर करुण तो हुआ पर मेरी आँखों से करूणा ना निकलकर होठों से हँसी निकल आई थी । उसकी स्थिति कुछ ऐसी थी कि वह कभी हँस रही थी,कभी रुआंसी हो रही थी । मैं भी तो उसी लय में उसके साथ था ! हम दोनों आज बहुत कारणों से खुश थे और कुछ कारणों से निराश !

हम अपने-अपने घरों की ओर वापस लौट आए थे । आज भी मेरे सवाल, मेरे पास सुरक्षित थे और उसके जवाब, उसके पास । उस दिन के बाद से दामिनी, दस–बारह दिनों तक बाहर दिखाई नहीं दी। अब बकरियाँ लेकर भी इधर दिखाई नहीं देती, कभी–कभार सुनीता जरुर दिखाई दे जाती । उसकी बकरियाँ भी सुनीता ही चरा लेती थी । सुनीता गर्मी की छुट्टियों में दामिनी के साथ ही बकरियां चराती थी । गाँव में लगभग सभी आदिवासियों के घर बकरे-बकरियां, मुर्गे-मुर्गियां और मवेशियां पाली जाती हैं । इनको चराने की जिम्मेदारी ज्यादातर इनके बच्चों पर ही होती है, कुछ बच्चे तो इसीलिए, स्कूल भी नहीं जा पाते क्योंकि उनको बकरी और घर में पाली हुई मवेशियां चराना पड़ता है ।

मधुमक्खी के काटने वाली घटना के एक साल बाद,दामिनी से मेरी मुलाकात होती है । इस एक साल में दामिनी में गजब का निखार आ गया था । अब वह पहले से बहुत ज्यादा सुन्दर लगने लगी थी । उसकी आवाज में कोयल जैसी मिठास भर गई थी । कोई उससे बात करता तो अकारण ही बहुत देर तक बातें करते रहता, मैं भी । दामिनी को भी अब तक घर और समाज ने लड़की की सीमाएं समझा दी थी। वह बात करते-करते बीच में ही कहने लगती– ..तो ठीक है, अब मैं चलती हूँ, माँ मुझे ढूंढ रही होगी । मुझसे कहती- ज्यादा बातें नहीं...., कोई हमें यूँ बातें करते देख लेगा तो हमारे बारे में क्या सोचेगा । मुझे भी उसकी ये बातें कभी-कभी सच लगने लगती थीं । वह सच ही तो कहती थी, समाज ने जो सीमाएं निर्धारित करके रखी है उनको लांघना, उनसे ज्यादा सोचना सामाजिक मर्यादाओं का उल्लंघन ही तो है ।

दामिनी अब धीरे–धीरे, पंद्रह–सोलह साल की हो चली थी और इस उम्र का सौन्दर्य, अहा...क्या कहना...! उसे जो देखता तो बस देखते ही रह जाता था, मैं भी । दामिनी अब बकरियां भी कम ही चराया करती थी और मुझसे भी, पहले की तरह बेबाक बातें नहीं करती । अब तक मैं, दामिनी के साथ तीन-चार गर्मी की छुट्टियाँ बीता चुका था । चार- जामुन के पेड़ और महुआ की मुहाड़ी ही हमारे मिलने के स्थान थ । मुहाड़ी में मिलते तो साथ बैठने का अवसर ज्यादा मिलता । अलाव जलाकर तापते और घंटों बैठकर बतियाते रहते । बहुत सारे लोग इकट्ठे होकर, अलाव के पास ही लोकगीत और कहानी-किस्से सुनते–सुनाते ।

जब तक महुआ ठीक से नहीं गिर जाता, तब तक मुहाड़ी में महुआ बीनने वाले लोग, इसी तरह से समय बीताते । मुहाड़ी में ढ़ेर सारे अलाव जलते, जिनमें अपनी-अपनी उम्र वर्ग और एक मिजाज के लोग होते । बच्चों का समूह अलग, उम्रदराज लोगों का अलग,हम जैसे किशोरवय लोगों का समूह अलग । जब तक महुआ गिरकर धरती को पीली चादर से न ढंक दे, तब तक कोई भी इन अलावों के पास से उठकर नहीं जाता । जब महुआ गिरकर ढ़ेर हो जाता तो लोग धीरे-धीरे उठकर अपने-अपने पेड़ों की तरफ निकल पड़ते । बस फिर किसी लोकगीत की धुन पकड़ लेते और गुनगुनाते हुए महुआ बीनने में व्यस्त हो जाते ।

महुआ बीनते समय किसी को, किसी का ख्याल नहीं रहता । दोपहर की तेज चटक धूप, पेड़ों के नीचे गिरा हुआ पीला जरद महुआ, रह–रहकर माथे से चूता पसीना, कोई लोकगीत की धुन पर थिरकते हाथ टप-टप महुआ बीनने में व्यस्त हो जाते और हो जाते सब कोई अपने में मगन.... ! बसंती, मुहाड़ी में आने वाली एक बुजुर्ग महिला थी, जो कभी-कभार ही मुहाड़ी में आती थी । वह सभी के पेड़ों के पास जाकर, बोलती–बतियाती थी । बसंती महुआ बीनने कम, बोलने-बतियाने ज्यादा आती थी । वह बोलती तो, जोर–जोर से बोलती, दूर-दूर तक उसकी आवाजें सुनाई दे जाती । मुहाड़ी के सारे लोग समझ जाते कि आज मुहाड़ी में बसंती आई है ।

बसंती गाँव के रिश्ते में मेरी बहन लगती थी । इसलिए मैं उससे कभी भी हंसी–मजाक नहीं करता, लेकिन वह मेरे पेड़ों के पास आती तो जोर-जोर से बोलती- 'मड़मी बप्पोड कीकी रो, पार सियानो आसेती' इसका अर्थ होता-शादी कब करेगा रे, पूरा जवान हो गया है । मैं कुछ नहीं बोलता, बस थोड़ा सा मुस्कुरा भर देता ।

वह कहती–हमारे जमानें में दस–बारह साल की उम्र में ही विवाह हो जाता था और.... बोलते-बोलते वह आगे निकल जाती। आगे वह दामिनी के पेड़ों के पास भी जाती और दामिनी से भी बातें करती। दामिनी को एकदम पास बुलाकर उसके कान में धीरे-धीरे कुछ कहती और फिर घर चली जाती। बसंती जिस दिन मुहाड़ी में आती उस दिन से चार–पांच दिनों तक दामिनी मेरे पेड़ों की ओर नहीं आती पर जब भी दामिनी मेरे पेड़ों के पास आती तो हम लोग मिलकर,चने का होरा और सूखा हुआ महुआ भूनते और साथ बैठकर खाते। होरा वाली टीम में और भी कई लोग साथ हो जाते। सभी लोग बारी-बारी से होरा अपने खेतों से लाते।

चने का होरा और महुआ की भी एक अलग ही कहानी है...!

माँ बताया करती थी...! अकाल के दिनों में महुआ ने ही वनवासियों–आदिवासियों के प्राण बचाए थे। अकाल के समय में लोग चना और महुआ भूनकर खाते थे। मक्का–ज्वार की पेज बनाकर पीते थे। रोटी सिर्फ हल जोतने वाले और परिवार के मुखिया को ही मिलती थी। अकाल के दिनों में सांवा और कोदो–कुटकी की प्रजाति के घास को जमा करके उनके दानें निकालकर, उन्हें पीसकर उसके आटे से महिलाएं किसी तरह रोटी बनाकर चूल्हा जलाये रखती थीं, वरना कई दिनों तक चूल्हे के ऊपर संकट का ही धुंआ मंडराते रहता था। भले ही अब अकाल नहीं पड़ता, कोई महुआ नहीं खाता, लेकिन अकाल के बाद से अब तक लोग महुआ इकट्ठा करके रखना किसी भी साल नहीं भूलते।

आदिवासी–वनवासियों के घरों में तीज-त्यौहार के अवसर पर, ढेर सारा महुआ भिगोया जाता, दारू निकाली जाती, सब लोग इकट्ठे होकर दारू पीते और रात–रात भर ढनढार नाचते। इनके कोई भी तीज-त्यौहार बिना दारू के संपन्न नहीं होते, इनके मुख्य देवता 'बड़ादेव' ! को पहले भोग लगाते फिर प्रसाद रूप में खुद पीते। महुआ का मौसम फरवरी से शुरू होकर मध्य अप्रैल या कभी-कभी, पूरे अप्रैल तक ही चलते रहता। तब तक, माँ हमको रोज सुबह चार-पांच बजे ही जगा देती। हम सब टोली बनाकर मुहाड़ी की ओर निकल पड़ते। मुहाड़ी में सबसे पहले आने वाला रामा महुआ चोरी करके बीनने में सबसे ज्यादा चालाक और कुशल व्यक्ति था, न जाने कब वह मुहाड़ी में आ जाता था और हमारे पेड़ों के नीचे का गिरा हुआ महुआ बीनकर साफ़ कर देता था। वैसे दूसरों के पेड़ों के नीचे का महुआ बीनना, चोरी की श्रेणी में कम, चालाकी की श्रेणी में ज्यादा आता है। जो मुहाड़ी में पहले पहुँचता, इस तरह की चोरी से वह मुश्किल से ही बच पाता था, मैं भी कहाँ बच पाता था ऐसी चोरी करने से। रोज तय किया जाता था कि, कल किसका महुआ चोरी से बिनना है, किसको परेशान करना है ? ये सब करने में बड़ा मजा आता था। कुछ लोग तो रात-रात भर नहीं सोते और मुहाड़ी में पंहुच जाते थे। वैसे भी, सबके अपने-अपने दर्द होते हैं, जो उनको रात भर सोने नहीं देते, और जगाकर पहुंचा देते थे मुहाड़ी में।

हाँ, लेकिन ऐसा नहीं कहा जा सकता कि, दामिनी महुआ चोर थी, क्योंकि वह कभी भी रात में नहीं आती थी। सुबह के आठ-नौ बजे के आसपास ही उसका रोज का आना निश्चित था। हाँ दामिनी को सब चितचोर कहने लगे थे..! वह जिससे भी एक बार बोल-बतिया लेती या उसे लोकगीत सुना देती, उसका मन करता कि वह उसी से बोले-बतियाये,उसी को लोकगीत सुनाये। दामिनी के मुहाड़ी में आते ही हलचल मचने लग जाती थी। सबके मन लहराने लगते थे।

दूर से किशोरवय, ऊँची-ऊँची आवाजों में गाने-गुनगुनाने लगते, बूढ़े खांसने-खखारने लगते। मेरे पास उसके ध्यानाकर्षण का ऐसा कोई भी ऐसा हुनर नहीं था कि वह सीधे मेरे ही पेड़ों के नीचे आ जाये। फिर भी वह औरों से ज्यादा मेरे ही पेड़ों के नीचे आकर बैठा करती थी। कभी–कभी मुझे, वही अपनी इच्छा से लोकगीत सुना देती थी। पता नहीं क्यों वह इस लोकगीत को ज्यादा गाती थी .....।

बोल वासी आधी रात,
भाभीजी मावा बगीचा ते बोल वासी,
मावोल भैया ना संतरा ता बगीचा,
संतरा लगी लटालोड़,
भाभीजी मावा बागीचा ते बोल वासी.....।

लोकगीत का मतलब कुछ इस तरह होता है –भाभीजी मेरे बगीचे में आधी रात संतरा चुराने कौन आता है, मेरे बगीचे में खूब फल लगे हैं। युवतियां इस गीत को अक्सर गाती हैं।

गीत सुनने के बाद मैं कहता- दामिनी तुम तो बहुत ही अच्छा गाती हो। मेरे ऐसा कहने पर वह, बस जरा सी मुस्कुरा भर देती, पर कहती कुछ नहीं। एक दिन मेरे पेड़ के नीचे बैठी–बैठी ही वह मुझ से कहने लगी– कोई कहानी सुनाओ ना.... । मैं कहता- दामिनी मुझे कहाँ कोई कहानी आती है।

दामिनी- झूठ मत बोलो..स्कूल की बड़ी कक्षाओं में तो अच्छी-अच्छी कहानी पढ़ते होंगे....सुनाओ ना कोई अच्छी कहानी।

थोड़ी देर के लिए ...मैं एकदम चुप..,वह भी चुप..।
थोड़ी देर बाद मैंने ही उससे कहा- दामिनी मैंने तो सुना है- तुम्हें भी अच्छी-अच्छी कहानी आती है। तुम तो अपनी दादी से नई–नई कहानियाँ सुनती हो ना ?

हाँ... सुनती तो हूँ... । तो अभी कोई नई कहानी ... ? ऊँ .....हूँ... सुनाई तो है पर... ।

पर वह कहानी तुम्हे कैसे सुनाऊं....? क्यों उस कहानी में ऐसा क्या है ...?

कुछ नहीं ...बस ऐसे ही.....।

चलो सुना ही देती हूँ, हुंकारा लगाना पड़ेगा । अरे हाँ भई ...हुंकारा भी लगाऊंगा.. । दामिनी ....अब सुनाओ भी...।

तो ठीक है, सुनो ...।

एक सोलह–सत्रह साल की लड़की थी । वह रोज लकड़ी लेने जंगल जाती थी । मैं- हूँ..। और लकड़ी का गट्ठा सिर पर रखकर गाँव की तरफ वापस आती थी । लड़की को जंगल में एक लकड़हारा दिखाई देता था । दोनों एक-दूसरे पर मोहित थे, पर अभी तक आपस में कोई बातचीत नहीं हुई थी ।

धीरे-धीरे लड़की की चाहत लकड़हारे के प्रति कुछ ज्यादा ही बढ़ने लगी थी । लकड़हारा उसके सपनों का राजकुमार बनने लगा था । अब तक बिना कोई बोलचाल के, बिना कोई परिचय के, वे दूर-दूर से ही एक-दूसरे को देखा-देखी करते थे । कभी वह जंगल नहीं जाती तो उस दिन वह बहुत उदास रहती । वह जंगल जाकर लकड़ी काटने की आवाज सुनती, जिधर से कुल्हाड़ी चलने की आवाज आती वह उधर ही जाकर देखती और उसका राजकुमार दिख जाता तो वहीं आसपास लकड़ी इकट्ठा करने लगती, उसे देखती रहती और दिखती रहती । इस तरह, दूर से चलने वाली देखा-देखी से ही, अब तक दोनों खुश थे ।

एक दिन वह बहुत देर तक लकड़ी इकट्ठा करती रही । उस दिन लकड़ी का गट्ठा बहुत बड़ा बन गया था और अकेले से गट्ठे का बोझ नहीं उठ पा रहा था । आज जंगल में ही ज्यादा देर हो गई थी । आसमान में काले-काले बादल, तेजी से घूम रहे थे । ठंडी-ठंडी हवा चलने लगी थी, लग रहा था जैसे-कहीं दूर, बारिश के पहले पानी ने, दस्तक दे दी थी । वह लड़की रह-रहकर घबरा रही थी । सूरज बादलों की ओट में कहीं छुप गया था। जंगल में तीन–चार बजे के आसपास ही अँधेरा होने लगा था । लग रहा था जैसे शाम के, पांच–छह बज गए हों । गट्ठा उठाने के लिए वह, आसपास देखने लगी, पर उस लकड़हारे के अलावा लड़की को कोई भी नहीं दिखा । गट्ठा उठाने के लिए उससे कैसे कहें । आज तक उससे कोई बातचीत भी नहीं । वह उलझन में पड़ गई, सोचने लगी उसे बुलाऊं या नहीं...?

उसने लकड़ी के गट्ठे का एक छोर पकड़कर, उसे सीधा खड़ा कर दिया, फिर गट्ठे के बीच में सिर लगाकर सिर के ऊपर उठाने का प्रयास करने लगी । लकड़हारा दूर से ही यह सब देख रहा था । लड़की बार–बार प्रयास करने के बाद भी गट्ठे को सिर पर नहीं उठा पा रही थी । जब वह बहुत कोशिश के बाद भी गट्ठा नहीं उठा पाई तो हारकर बैठ गई । थोड़ी देर बाद अचानक उसका चेहरा सख्त होने लगा । वह फिर से गट्ठे को उठाने का प्रयास करने लगी । अबकी बार वह गट्ठा उठाने में सफल तो हो गई पर संतुलन बिगड़ जाने के कारण, चार-छह कदम की दूरी पर लड़खड़ाकर गट्ठे सहित गिर गई । और एक धड़ाम की आवाज ....!

लकड़हारे ने आवाज सुनी और उसके कदम खुद की बिना अनुमति के भी उधर निकल पड़े थे । हाथ भी बिना आदेश के ही गिरी हुई लड़की को उठाकर बैठाने लगे थे । लड़की रुआंसी हुई, पर रोई नहीं । उसके ओठ काँप रहे थे, लेकिन रो नहीं पा रहे थे । दूसरी तरफ लकड़हारा भी थरथरा रहा था, पसीना-पसीना हो रहा था । अब तक दोनों आपस में कुछ नहीं बोल रहे थे । अचानक हवा का एक तेज झोका आया और लकड़हारे का गमछा और लड़की की चुनरी को उड़ा ले गया । लड़की उठने को हुई तो, लकड़हारे ने कहा– मैं ले आता हूँ...। और यह कहते हुए वह उठकर आगे बढ़ गया था । वह लौटा ही था कि आसमान के काले बादल तेज गर्जना करने लगे थे। थोड़ी देर के लिए लगा जैसे, जंगल में शेर दहाड़ रहा हो और ये दोनों निहत्थे शिकार, उसके सामने हिम्मत हारकर, बेबस हो गए हो... !

एकदम घुप्प अँधेरा होने लगा था, मोटी-मोटी बूंदे,टपा-टप गिरने लगी थीं । वह लड़की को चुनरी देते हुए, अपने मन और आसमान के बादलों की गर्जना सुनकर थरथरा रहा था, काँप रहा था । अचानक तेज बिजली चमकी और और जंगल में चारो और उजाला फ़ैल गया । बादल जोर से गरजे और दोनों, न जाने क्यों एक-दूसरे की बिना अनुमति के भी आपस में लिपट पड़े थे । वें दोनों आसमान के बादलों की गर्जना से डर गये थे, या अपने मन के बादलों की गर्जना से हार गये थे, पता नहीं ? बिजली चमकती रही, बादल गरजते रहे, पानी बरसते रहा । प्रकृति और अपने मन के बादलों के डर से दोनों पसीना-पसीना हो रहे थे । तन और मन दोनों आज की बारिश में भीग रहे थे । दोनों आपस में कुछ नहीं बोल रहे थे, आज मन से आसमान तक सिर्फ बादल बोल रहे थे । जमीन से आसमान तक सब कुछ भयंकर था, फिर भी दोनों के मन और जीवन में मोर नाच रहे थे ।

न जाने फिर आगे क्या हुआ ?

आगे ..?

आगे.... बाद में सुनाउंगी ।

क्यों...अभी क्यों नहीं ?

अभी इसलिए नहीं क्योंकि ..क्योंकि ..।

अरे, क्या क्योंकि क्योंकि लगा के रखा है ।

तुम तो नाराज होने लगे, वो देखो...माँ आ रही है ।

अच्छा अब मैं चलती हूँ ....बाय .....।

और वह इठलाती, बलखाती हुई चली गई।

मैं कहानी को दुहराता हुआ अपने पेड़ के नीचे बैठा महुआ बीनने की कोशिश करने लगा था।

उस दिन के बाद से, दामिनी लगभग आठ दिनों तक मेरे पेड़ों के नीचे नहीं आयी। एक दिन मैं ही, उसके पेड़ों के नीचे गया। उस दिन उसके पिताजी भी महुआ बीनने आये थे। उसके पिताजी से इधर-उधर की कुछ ऐसी ही बातें करके मैं वापस आ गया। जब मैं उसके पिताजी से बातें कर रहा था, उस समय दामिनी मेरी तरफ सिर्फ देखती रही किन्तु बोली कुछ नहीं। उस दिन मैं भी उससे कुछ नहीं बोल पाया था। बस एक-दूसरे की थोड़ी बहुत देखा-देखी हुई थी। दो दिन बाद,दामिनी लगभग आठ-नौ बजे मेरे पेड़ों के नीचे आई और बोली-माँ आज मामा के घर गई है। पिताजी भी साथ गए है। माँ दो दिन बाद आएगी, पिताजी को आठ दिन लग सकते हैं। माँ, मुझसे महुआ बीनने का कह गई है।

आज दामिनी काफी खुश नजर आ रही थी। मुझसे बोली–मुझे तुमसे कुछ बात करना है।

हाँ..., बोलो ना..।

क्या कहूँ बड़ा संकोच लगता है ऐसा कहते।

बसंती ने उस दिन माँ से पता नहीं क्या-क्या कह दिया। माँ, मुझ पर बहुत नाराज हो रही थी और तुमसे बात करने का भी मना किया है। मुझसे कह रही थी कि तुम दूसरी जाति के हो और हमारे बीच में कहीं कुछ गलत हो गया तो, तो..? तो...कह रही थी कि जात-बिरादरी में बदनामी होगी। इसीलिए, मैं इतने दिनों तक इधर नहीं आई।

मन तो रोज करता था, पर क्या करूँ, मेरा बस चलता तो, मैं तो...!

हाँ ..हाँ.. बस करो,

मैं सब जानता हूँ,तुम कितनी बहादुर हो !

चुप रहो, बुद्धू कहीं के...।

पगली कहीं की ...

बुद्धू..

पगली....।

दामिनी,वो अधूरी कहानी पूरी कर दो ना। फिर तुम आओगी भी नहीं। दामिनी- और फिर तुम्हें तो मेरी याद भी नहीं आएगी, है ना...? कुछ दिन बाद तुम पढ़ाई करने चले जाओगे, फिर साल भर मेरी खबर भी नहीं लोगे। स्कूल में तो तुम्हें मेरी याद भी नहीं आती होगी, है ना ..? वहां भी तुम्हारी कोई..? नहीं दामिनी ऐसी बात नहीं है। तो कैसी बात है ? बोलो, चुप क्यों हो गए। अरे...ये क्या ? तुम तो लड़कियों जैसे .....तुमसे कठोर तो मैं हूँ, मैं कभी रोई हूँ क्या ? बताओ ...बताओ ना, बोलते क्यों नहीं ...ऊँ...? ठीक है मत बोलो ,मैं भी जा रही हूँ ,बाय...। रुको दामिनी और दामिनी मुझे चिढ़ाती हुई ...रुको दा मि नी.... ।

बुद्धू ..कहीं के।

मैं - चुप रहो पगली।

मैं क्यों रहूँ चुप, मुझे चुप रहना नहीं आता।

हाँ दामिनी मैं भी सोचता हूँ तुम हमेशा बोलती रहो, पर ये दुनिया स्त्री को बोलने कहाँ देती है....!

दामिनी तुमने ऐसा क्यों कहा कि, मुझे तुम्हारी याद नहीं आएगी। अरे बाबा मजाक भी नहीं समझते क्या ? मैं अपनी बात वापस लेती हूँ, ठीक। अब खुश ..?

मैंने पूछा -दामिनी तुम कक्षा नवमी नहीं पढ़ोगी.. ?

नहीं...! माँ और पिताजी दोनों ने मना कर दिया है, पिताजी तो कह रहे थे कि जवान लड़की हमेशा माँ–बाप की आँखों के सामने रहना चाहिए। कहीं कुछ हो गया तो, जात बिरादरी और गाँव में कोई नहीं छोड़ेगा। बदनामी की बदनामी भी और दंड भरना पड़ेगा सो अलग। मैं कहीं डूब गया था ...नारी का जन्म..व्यथा....पिता....पति...बच्चे.....और.....घर की सीमा..... कैद...! उफ्फ !

अच्छा तो आगे की कहानी सुनो...!

दामिनी की आवाज सुनकर मैं आगे की कहानी सुनने की कोशिश करने लगा ।

...उसके बाद....वो लड़की उस दिन लकड़ी का गट्ठा लेकर घर नहीं आयी। उस रात, पानी रात भर गिरता रहा। गाँव के पास की पेनडोह नदी में बाढ़ आ गई थी। पेनडोह नदी की बाढ़ रात भर बढती ही रही।

वो लड़की रात भर कहाँ रही, किसी को कुछ नहीं पता !

दूसरे दिन घर आई तो, मन से जमीन तक सब कुछ भीगा हुआ था।

लड़की के जिन्दा लौट जाने पर गाँव में खुशियाँ मनाई गई।

कुछ दिनों बाद लड़की धीरे–धीरे जंगल जाना कम कर देती है। धीरे-धीरे वह घर से ज्यादा निकलना भी बंद कर देती है। कुआं–पनघट की ओर जाना भी छोड़ देती है। रोज घर में ही रहती और कभी घर से बाहर निकलती भी तो एक शाल ओढ़कर। पता नहीं क्यों, अब वह स्वयं को, सबसे बचाती रहती थी।

और..दादी..हाँ बताओ क्या दादी ? हाँ, दादी ने आगे बताया कि,उस लकड़हारे ने उस लड़की पर न जाने ऐसा क्या जादू कर दिया था, जिसके कारण वह पागलों की तरह रहने लगी थी

और गाँव की महिलाएं उसके पेट को ऐसे देखती, जैसे नजरों से ही उसके पेट का आकार माप लेना चाहती हों। खैर...!

कुछ दिनों बाद, एक रात उसके घर से, रात भर उस लड़की की चीखें सुनाई देती रही। बचाओ...मैं मर जाउंगी.. कोई बचाओ रे.. अरे हरामजादी....कुत्ती..मुझे छोड़..! साली ऐसे नहीं मानेगी... और एक जोर की आवाज...धम्म ! जैसे किसी ने किसी को जोर से लात मारी हो ..। हुआ साली दर्द ..? मुझे छोड़, नहीं तो मैं तुझे काट खाऊँगी। कुछ देर बाद सिर्फ आहें–कराहें और सिसकियाँ आती रहीं। सुबह की बेला में सब कुछ एकदम शांत था जैसे इस शांति के पहले यहाँ कुछ भी न हुआ हो। वह सब कुछ जो हुआ था, रात उसे अपने आगोश में समेट चुकी थी और सुबह के लिए छोड़ दिया था, खुलापन–खालीपन...।

सुबह-सुबह एक महिला उसके घर के पिछवाड़े से एक झोले में कुछ लेकर लौट रही थी, जिसमें से टपकता हुआ खून... रास्ते भर कोई निशानी छोड़ रहा था। सुबह–सुबह गाँव से डिब्बा लेकर जाने वाले लोगों ने देखा और आपस में खुसर–फुसर करते रहे। दोपहर तक पूरे गाँव में सन्नाटा छाया रहा, कोई किसी से खुलकर बात नहीं करता था, बस कानों में ही धीरे–धीरे कुछ बातचीत हो जाती थी। लग रहा था जैसे गाँव में कोई मर गया हो। कोई किसी से कुछ नहीं पूछ-बोल रहे थे, जैसे सब कोई जानते हों क्या हुआ है।

कुछ दिन बाद, उसके पिताजी ने गाँव वालों को खबर दी कि उसकी बेटी मर गई है, जो कुछ दिनों से बीमार थी। और शाम तक लोग उसे दफना कर आ चुके थे। गाँव के कुछ लोग कहते हैं कि, दफनाने के बाद वह लड़की, धरती फाड़कर बाहर निकल आई थी और पीछा करती हुई गाँव तक आई थी। एक व्यक्ति, जो उसका बाप था, लड़की ने उसे उठाकर पटक दिया और वापस जाकर उस बरगद के पेड़ पर चढ़कर जोर-जोर से हँसती हुई बोली कि, मैं किसी को भी नहीं छोड़ूंगी। मेरा जो भी दुश्मन इधर से आएगा उसकी ऐसी ही दुर्गति करूंगी, और उसका खून चूसकर पीती रहूंगी।

> काली शर्ट वाले साहब कुछ ज्यादा ही रंगीन मिजाज आदमी हैं, वे ही ज्यादातर दामिनी को छेड़ रहे थे। सब लोग खाना खा लेते हैं और उताने होने लगते हैं। सोने के पहले सब बारी-बारी से दामिनी के साथ एक तूफानी खेल खेलते और ढेर होकर, लम्बी सांसे भरने लगते हैं। दामिनी बुरी तरह से रौंदी जा रही थी, मसली जा रही थी। वह कराहती रही, सिसकती रही पर किसी को कुछ भी करने का मना नहीं करती। सब कोई उसे अपनी-अपनी इच्छा के अनुसार मसल रहे थे, रौंद रहे थे और वह किसी बेजान वस्तु की तरह लेटी रही। दामिनी रात भर सुबकती रही।

इधर गाँव वालों ने उस व्यक्ति को बेहोशी की हालत में ही उठा कर घर में लाया और उसके ईलाज के लिए गाँव के प्रसिद्ध भुमका (भगत) 'बाबा देवजी मरकाम' को बुलाया, भुमका मांढरी (शरीर में देव बुलाने की प्रक्रिया) करने बैठा, उसके शरीर में देवता आया और बोला कि- यह वही लड़की है, जिसे तुम अभी-अभी दफना कर आ रहे हो। यह ऐसे नहीं मानेगी। कुछ दिन बाद इसकी शांति के लिए कुछ बड़ी व्यवस्था करना पड़ेगा। अभी इसको देने के लिए एक बकरे की व्यवस्था करो, इसको खून चाहिए तब यह मानेगी। एक बकरा लाया गया, उसकी बलि चढाई गई, तब तक उस व्यक्ति को भी होश आ गया। वह उठकर एकदम चेतन हो गया, कुछ देर पहले क्या हुआ था, उसे कुछ नहीं पता।

कुछ दिनों बाद गाँव मे लड़की का प्रेमी (लकड़हारा) पागलों की तरह घूमता दिखाई देता था। कभी-कभी वह बरगद के पास जाकर घंटों, खड़ा-खड़ा पेड़ के ऊपर देखता रहता, कभी पागलों की तरह गाँव वालों को पत्थर मारने लगता। कुछ दिनों बाद वह बरगद के पेड़ को ही अपना बसेरा बना लेता है। वहीं सोता, वहीं रहता, बरगद के ही आसपास ही घूमता रहता और शाम को वहीं आकर सो जाता। जो कोई बरगद के पास जाता, वह उसे पत्थर मारने लगता। कई दिनों तक वह बरगद के आसपास ही दिखाई देता रहा। कुछ दिनों बाद,फिर ना जाने वह कहाँ चला गया ..?

दादी बताती है कि इसीलिए उस बरगद की तरफ आज तक कोई नहीं जाते। पहले तो मना करने पर, मैं भी नहीं समझ पाती थी। लेकिन दादी के कहानी सुनाने के बाद, मुझे यह बात समझ में आई कि बरगद के पास जाने से क्यों मना किया जाता है।

ऐ ...बुद्धू... कहाँ खो गए..?

उं...हूँ..अरे बाबा कहानी ख़त्म...।

अब मैं जाऊं.. ?

मैं जा रही हूँ...हाँ...?

बाय..बा...बाय.. ब्बबाय ...बाय ...

दामिनी बाय बाय करती हुई, मुझे कहानी में गोता लगाता हुआ, अकेला छोड़कर चली गई। एक तरफ मैं कहानी में

उस लड़की की चीख सुन रहा था और दूसरी तरफ बाय बाय.. । बहुत देर बाद मैं किसी तरह कहानी से बाहर निकलने की कोशिश करता हुआ-महुआ बीनने की कोशिश करने लगा । कभी महुआ बीनने में रम जाता, और कभी कहानी में डूबने लगता । कई दिनों तक, मैं इस कहानी से बाहर नहीं निकल सका था । वैसे भी कुछ कहानी ऐसी होती हैं जिनसे जीवन भर बाहर नहीं निकला जा सकता ! और वनग्राम की लड़कियों की ऐसी कई कहानियां आज भी जिन्दा हैं । और कई बार तो कहानी सुनाने वाली पात्र लड़कियां भी उन्हीं चरित्रों में तब्दील हो जाती थीं । दामिनी की कहानी भी कुछ मिलती जुलती ही थी..! उस वक्त महुओं का गिरना रोज बढ़ता ही जा रहा था, सभी के पेड़ महुआ की कूचियों !कलियों) से लद गए थे, मेरे भी । कहानी ख़त्म करने वाले दिन से, आठ–दस दिनों तक दामिनी मेरे पेड़ों के नीचे नहीं आयी थी और वैसे भी अब, सभी महुआ बीनने में व्यस्त रहते थे । किसी के पास अब समय नहीं बचता था ।

सभी लोग दोपहर के, बारह से एक बजे तक महुआ बीनते और सिर पर महुआ की टोकरी रखकर, अपने-अपने घरों की ओर निकल जाते । आँगन में महुआ सुखाते और पेज और घुघनी खा-पीकर दोपहर में आराम करते । आवारा मवेशियों से सूखते हुये महुओं की देखभाल करते रहते । इसी तरह धीरे–धीरे महुआ का मौसम समाप्त हो गया । मैं फिर दामिनी के साथ इस तरह ज्यादा दिनों तक बैठक बतक्कड़ी नहीं कर सका था । बीते दो सालों में दामिनी से मेरी कोई मुलाकात नहीं हुई । शहर आने के बाद मैं गाँव कम ही जाता था । इसी बीच गाँव में सरकारी पानी रोको अभियान जोरों पर चल रहा था । पंचायतों में तालाब और छोटे-छोटे डैम बनाने के लिए बहुत सारा पैसा आया था ।

गाँव की पंचायते तालाब और डैम बनाने में लगातार व्यस्त थीं । गाँव में किसी के पास समय नहीं है, सब अपने अपने काम में लगे हुए हैं । पंचायतें और सरकारी अमला ठान बैठे थे कि, इस बार गाँव की धरती का जलस्तर बढ़ाकर ही रहेंगे । इस बार किसी भी प्रकार की गलती नहीं करेंगे, सरकार की इच्छा पर पानी नहीं फेरेंगे । एक-एक अधिकारी, कर्मचारी, पंच-सरपंच, ठेकेदार, मेट आदि सब अपनी-अपनी ड्यूटी पर तैनात थे । कार्यस्थल पर मजदूर किसी मेले की भीड़ की तरह दिखाई देते थे । ना काम की कमी, न ही मजदूरों की । तालाब और डैम की खुदाई जोरों पर चल रही थी । साप्ताहिक बाजार के दिन मजदूरों को मजदूरी का पैसा मिलता । मजदूर बाजार से दाना, किराना खरीदते और, दारू पीकर घर लौटते । बाजार का दिन किसी जश्न के दिन से कम नहीं होता । आदिवासी-वनवासी जश्न और मातम के दिन, दारू जरुर पीते हैं । फिर भला बाजार का दिन बिना दारू के कैसे बीतता ।

आदिवासियों को एक साथ इतना सारा काम मिलने की ख़ुशी की खबर, चारों ओर फ़ैल गई थी । सबके चेहरे प्रसन्न दिखाई दे रहे थे । अब काम के लिए गाँव छोड़कर बाहर कहीं भी नहीं जाना पड़ेगा । पूरी बारिश हँसी-खुशी से बीतेगी । पानी बरसता रहेगा और यें घर में बैठे-बैठे आराम से बनायेंगे-खायेंगे । थोड़ा बहुत काम जो घर के बैल -बकरी चराना होगा । बस इससे ज्यादा नहीं, गाँव छोड़कर कहीं बाहर तो नहीं जाना पड़ेगा । सब इसी बात से खुश थे !

एक सरकारी अमला, जो दिन भर जीप पर सवार रहता था । प्रत्येक खुदाई वाले स्थानों पर जाकर कार्यों का मुआयना करता रहता और जिला अधिकारी को रिपोर्ट प्रस्तुत करता । इस तालाब पर तीन चार मेट, उसी में एक मेट, मदन भी था । मदन स्वभाव से फक्कड़ था । बोलता तो खूब बोलता, हँसता तो हँसते ही रहता । किसी की मदद भी दिल खोल कर करता । बातें ऐसी करता कि कोई भी उसके चंगुल में जल्दी ही फंस जाता। सब लोग उसके इस बदले हुए स्वभाव से आश्चर्यचकित थे। कुछ दिनों पहले उसका स्वभाव ऐसा नहीं था । वह ऐसा क्यों हो गया था, किसी को कुछ नहीं पता । वह बूढ़े मजदूरों से कहता-थोड़ा आराम से काम करो । किसी को बहुत ज्यादा टोका-टाकी भी नहीं करता । सब कुछ इसी तरह चल रहा था ....। दामिनी भी उसी तालाब पर काम करने जाती थी । काम वाले स्थान पर दामिनी के साथ, कई लोग होते थे जिनमें–दामिनी के घर के लोग, उसकी सहेलियां, मोहल्ले–पड़ोस के लोग भी होते थे । शाम को सभी घर लौटते ।

घर लौटते समय लोग गाँव की छोटी सी किराना दुकान की तरफ से ही लौटते । सब अपनी-अपनी जरूरत का सामान लेते । कोई नशे वाला मंजन लेते, कोई बीड़ी लेते,कोई नमक, कोई तेल, कोई दवा-दारू, कोई सर्दी खासी की गोली भी ले लेता, कुछ लड़कियां एक खास तरह की गोलियां लेती थीं जिनका नाम वे नहीं जानती थीं । वैसे दुकानदार को गोलियों के नाम बताने की कोई जरुरत भी नहीं थी । गोलियों के नाम बताने पर तो, उन्हें ढूंढ पाना उसके लिए और भी मुश्किल हो जाता । गोलियों के लिए बस बीमारी का नाम बताना जरुरी होता, पर लड़कियों को बीमारी का नाम बताने से भी छूट थी । दुकानदार के पास अलग-अलग डिब्बों में अलग–अलग तरह की गोलियां रखी थीं । उन सभी डिब्बों पर बीमारी का नाम लिखा होता था । इन सब के अलावा भी, एक विशेष तरह की गोली होती थी जो लडकियां खरीदती थी,पर उसके लिए पहले एडवांस पैसा लगता था और हजार रुपया से कम नहीं, और समय कम से कम चार-पांच दिन । दुकानदार जब दुकान के लिए माल लेने शहर जाता तब ही वह गोली भी लेकर आ जाता था ।

गाँव की यह दुकान कहने को छोटी थी, पर जरुरत का सारा सामान यहाँ मिल जाता था। समय-बिपत पड़ने पर सलाहें भी मिलती थीं इस दुकान में। किन्तु सलाहों का निदानकर्ता दुकानदार ही होता था। गाँव में वह सबके सुख-दुःख का साथी था, जिनके पास ज्यादा पैसा होता, उनका थोड़ा ज्यादा ही साथी था। गाँव में धीरे-धीरे सब कुछ बदल रहा था, दामिनी भी.....! शाम को घर लौटकर सभी अपने-अपने काम में लग जाते थे, लड़के-लड़कियाँ पानी लेने, कुआं–पनघट पर चले जाते। दामिनी भी शाम को लौटती तो वह भी कुआं से पानी लाती, घर का झाड़ू-बर्तन करती, खाना बना देती और फिर, किसी सहेली के साथ नियमित रूप से डिब्बा लेकर घर के पीछे झाड़ियों की ओर निकल जाती थी। कभी कोई सहेली साथ चलने के लिए तैयार नहीं होती, तो उस दिन वह अकेली ही निकल जाती। किसी सहेली की ज्यादा खुशामद नहीं करती।

दामिनी बदल रही थी, काम के स्थान पर भी, किसी से ज्यादा बोलती–बतियाती नहीं, ज्यादातर गुमसुम ही रहा करती थी। उसकी सहेलियां उसके इस स्वभाव से परेशान हो जाती, पर कुछ कर भी नहीं पाती थी। वे कुछ नहीं समझ पा रही थी कि आखिर दामिनी को हुआ क्या है। उससे पूछते तो वह कुछ नहीं बस ऐसे ही.....कहकर टाल देती थी। कुछ लोग समझ रहे थे कि उसके घर के लोग भी काम पर आते हैं, शायद इसीलिए वह किसी से ज्यादा नहीं बोलती–बतियाती होगी। एक शाम उसकी एक सहेली उसके घर आती है, और दामिनी के बारे में पूछती है। दामिनी की माँ बताती है कि वह डिब्बा लेकर गई है। इतना सुनकर दामिनी की सहेली भी उधर ही चली गई जिधर वे हमेशा जाती थीं। वहां वो दामिनी को किसी लड़के के साथ देख लेती है। दामिनी का इस तरह किसी लड़के से बात करना और वो....सब करना। दामिनी की सहेली को अच्छा नहीं लगा। उसने यह सब दामिनी की माँ को आकर बता दिया। दामिनी के घर, उस रात को हंगामा बरपा। दामिनी की माँ बाल पकड़कर घसीटते हुए दामिनी को अन्दर ले गई, और डांटने लगी, गाली देने लगी–बता हरामजादी कौन था तेरे साथ ? दामिनी मार खाती रही, रोती रही, कराहती रही, लेकिन उस लड़के का नाम अपनी जुबान तक नहीं आने दिया। दूसरे दिन दामिनी तालाब के काम पर नहीं गई। तालाब खुदाई का काम आज, रोज की तरह नही चल रहा था। कुछ महिलायें थोड़ी-थोड़ी देर में झुण्ड बनाकर, कुछ बातें कर रहीं थीं।

मदन को यह सब देखकर चिढ़ हो रही थी। उसका मूल स्वभाव जागृत होंने लगा था, वह कभी मजदूरों पर चिढ़ता और कभी स्वयं पसीना-पसीना हो जाता। मजदूरों पर झल्लाता हुआ कहता–साले सरकार के पास फ्री के पैसे होते हैं क्या ? ठीक से काम करो नहीं तो मजदूरी कटवा दूंगा। काम में मक्कारी और पैसे भी पूरे ...सरकार ने तुम्हें पालने का ठेका ले रक्खा है क्या सालों,जो तुम्हें हराम के पैसे बांटेगी ! काम में मक्कारी की तो सोच लेना, आधे दिन का पैसा कटवा दूंगा। तीन-चार महिलायें जो कि पचास-पचपन की उम्र के आसपास रहीं होंगी, उनको डांटते हुए–सरकार लकड़ी टेकने के पैसे नहीं देती अम्माओं, कल तुम्हारे घर से किसी जवान मर्द-औरत को काम पर भेजना ! मदन बड़बड़ाता हुआ....सब साले हरामखोर हैं ...! वह बड़बड़ाता हुआ ही मचान की ओर चला जाता है। मचान के नीचे जाकर खाट पर पसर जाता है, पसीना पोंछता है। पानी के घड़ों की ओर देखता है, जो आज अभी तक खाली ही थे।

दामिनी काम पर आती तो उसका काम होता इन घड़ों में पानी भरना और दिन भर मजदूर की टोलियों को पानी पिलाना। उसका पूरा दिन इसी तरह बीत जाता था। पर आज घड़ों में पानी नहीं था, और....नहीं थी सबको पानी पिलाने वाली दामिनी। आख़िरकार मदन ने दामिनी की एक सहेली को, जो हमेशा दामिनी के साथ पानी लेने जाती थी, उसको बुलाकर पानी लेने भेज दिया। वह लड़की घड़ों में पानी भरकर, फिर से तालाब की ओर काम करने निकल जाती है। कुछ देर बाद इस लड़की के पास कई महिलाएं झुण्ड बनाकर बातें करने लगती हैं। मदन कहता है अलग-अलग होकर, अपना-अपना काम करो। बातें मत करो... काम करो...।

अब तक दामिनी के घर की रात वाली घटना, सब लोग जान गए थे। ये भी जान गए थे कि दामिनी के घर रात को आग किसने लगाई थी। इसीलिए कुछ महिलायें बार-बार दामिनी की इस सहेली को घेर लेती थीं। पूछने की कोशिश करती थीं कि, रात में दामिनी को उसने किसके साथ देखा था। पर यह लड़की थी कि ज़रा भी जबान नहीं खोल रही थी। जैसे–जैसे इस लड़की के पास भीड़ बढ़ती जाती थी, वह लड़की पसीना–पसीना हो जाती थी। सब महिलाएं धीमी आवाज में ही उससे पूछती थी– बता न री..रात को कौन था दामिनी के साथ। पर कई महिलाओं की बहुत कोशिश के बाद भी वह लड़की उस लड़के का नाम नहीं बताती। दोपहर तक सब कुछ... इसी तरह चलता रहा। दोपहर को खाना खाने की छुट्टी हुई। खाना खाने की छुट्टी में दामिनी के घर वाले घर गए और दोपहर के बाद काम पर वापस नहीं आये। खाना खाने की छुट्टी के बाद, काम फिर से शुरू हुआ। काम फिर से अपनी लय में था। अब तक वनग्राम में सब कुछ इसी तरह चल रहा था।

कुछ देर बाद गर्द उड़ाती हुई एक जीप आई और तीन–चार साहब उसमें से उतरे। कार्यस्थल पर आकर देखते है। मदन से काम के बारे पूछते हैं – 'और मदन काम ठीक-ठाक चल रहा है

ना' ....? मदन - जी साब...। कोई परेशानी तो नहीं ....? नहीं साब.. । वाह भई मदन, तुम्हारे होते हुए भला किसको परेशानी हो सकती है। तुम तो ईनाम देने लायक काम करवाते हो भई। भई हम तुम्हारे काम के लिए ईनाम की सिफारिश जरूर करेंगे...। देखना मदन तुम जल्दी ही बड़े मेट हो जाओगे । बस इसी लगन और मेहनत से काम करते रहो... । धीरे-धीरे ठेकेदार हो जाओगे। फिर जीप खरीद लोगे, अपनी हवेली बना लोगे,मदन तुम तो फिर बड़े आदमी हो जाओगे । बस याद रखो ये लगन ना टूटे, समझे ...? मदन- जी साब...। बात करते–करते, साहब लोग मदन के साथ मचान की ओर चलने लगते हैं, मचान के नीचे बिछी खाट पर कुछ बैठ जाते हैं, कुछ पसर जाते हैं । हांफता हुआ...एक उम्रदराज अधिकारी, अपनी मुछों पर हाथ फेरता हुआ खटिया पर चित्त हो जाता है। जूतों को पैरों की सहायता से निकाल कर जमींन पर गिराता है और कहता है–मदन...। ऐ...मदन। मदन–जी साब, अरे भई पानी-वानी पिलवाओ भई, और फिर हांफने लगता है । फिर बोलने लगता है–बुलाओ भई तुम्हारी फुलझड़ी को।

एक काली शर्ट वाले साहब – ओय.. होय...सर .कट्टी कली को? वाह सर मैं तो भूल ही ड़हा था, वाह क्या सुन्डर है वो... एकडम.. लाडवाब.... कहता हुआ, लम्बी गर्दन करके पिच्च से थूकता है, फिर कहता है- पिछली बार की याद दिला दी सर आपने तो । वो मक्के की रोटी और चिकन, शराब और वो....। वाह सर ...तो फिर... आज भी सब कुछ उसी तरह रिपीट ना सर जी ? हाँ भई, तुम आज फिर से शेर हो जाना। अरे सर... पानी आ गया मुंह में।

एक साहब जो अभी तक चुप बैठा था, उठकर खड़ा होता है और लम्बी गर्दन करके पिच्च से थूकता है। घड़े से पानी निकाल कर कुल्ला करता है, आसमान की ओर मुंह फाड़कर गट-गट पानी गटकने लगता है। मदन की तरफ देखकर कहता है- क्यों बे.. क्या हुआ,तुम तो पसीना-पसीना हो गये, बुलाओं ना उस फुलझड़ी को। हमारे साहब आज उसीच के हाथ से पानी पियेंगे। अरे...रस्ते भर साहब उसीच की तारीफ कर रहे थे, घर से निकलते वक्त, घर में कहकर भी आ गये कि, आज ज्यादा डैम और तालाबों का दौरा करना पड़ा तो आज घर भी नहीं आ पायेंगे। बुजुर्ग अधिकारी- हाँ भई मदन आज की रात फिर हो जाये....! महुआ की दारू, मुर्गा और वो तुम्हारी .....! अरे यार मदन-मेरी औरत तो साली खा-खाकर मुटिया गई है। हथिनी हो गई है साली । कम से कम दौरे वाली रात तो पतली कमर वाली के साथ .....। इतने में काली शर्ट वाले साहब-ओय...होय ..बस सर...मुंह में पानी आ गया। मदन सब कुछ चुपचाप सुनते जा रहा था और साहब लोग बारी–बारी से बोलते जा रहे थे। लगातार बोलने पर भी मदन जब कोई जवाब नहीं देता तो, एक साहब जो अब तक एकदम चुप बैठे थे, अपनी साहबगिरी दिखाते हुए बोले– क्यों बे साले..! ऐसे टकटकी लगाकर क्या देख रहा है बे ? साले बोलता क्यों नहीं बे कुछ, मुंह में दहीं जमाकर रक्खा है क्या ? दूसरे साहब कुछ नरमी से- अरे यार खांमखां बिगड़ते क्यों हो। जाओ मदन बुला लाओ भई उसे, सबको नाराज मत कर। सब उसकी झलक देखना चाहते है, अरे भई दिन में हम थोड़े ही उसे छेड़ेंगे। हमें भी तो उसकी इज्जत का ख्याल है, और उससे ज्यादा हमारी इज्जत का भी ध्यान रखना है भई । कोई अगर यह देख लेगा तो क्या सोचेगा कि, इतने बड़े-बड़े साहब और एक गंवार लड़की के साथ.....छिः...।

> गाँव में एक नई खबर फ़ैल गई थी कि दामिनी को उसके बाप ने चालीस हजार रु.में बेच दिया और दारु पीकर घूम रहा है । वो लोग आठ दिन में आकर, दामिनी को ले जायेंगे । ब्याह करके ले जाने की बात हुई है । ठीक आठवे दिन दामिनी के घर पर एक जीप में सवार होकर, आठ–दस लोग आते हैं और शादी-विवाह की सीधी सरल रश्में पूरी करके दामिनी को ले जाते हैं। दामिनी ससुराल चली गई थी।

एक साहब – भई मैं तो उसीच की प्यास लेकर आया हूँ। साहब ने पिछले दौरे की इतनी तारीफ कर दी कि, मुझसे भी नहीं रुका गया और मैं भी आ गया हूँ, मेरी भी इस दौरे की पहली रात सफल हो जाये। आज मैं भी पहली बार महुआ की दारू पिऊंगा, मुर्गा खाऊंगा और....। इतने में एक बुजुर्ग दौड़ता-हांफता हुआ वहां आकर कहता है- साहब मेरी लड़की बेहोश हो गई। वो चक्कर खा कर गिर गई साहब ...उसे बचा लो साब नहीं तो वो मर जाएगी। साब ..उसे बचा लो साब ..साब ..उसे बचा लो कोई..उसे बचा लो ..। जो लड़की बेहोश हो गई थी, वह दामिनी की वही सहेली थी, जिसने सुबह आज घड़ों में पानी भरा था, जिसके कारण दामिनी के घर पर रात भर हंगामा बरपा था और जिसके पास दामिनी के प्यार का राज था। आज वह लगातार कई महिलाओं और लड़कियों से घिरी रही थी।

जब से साहब लोग आये हैं, वह उनकी तरफ देखती, जोर-जोर से सांस लेती, कभी-कभी पसीना–पसीना हो जाती और कुछ देर के बाद बेहोश ही हो जाती है, जिसकी सूचना उसके पिताजी, मचान पर आकर देते हैं। उसे कुछ देर के लिए होश आता

तो सिर्फ देखती रहती, पर बोलती कुछ नहीं। उसे उठाकर मचान की छाँव में लाया जाता है। जमीं पर एक बोरे का फट्टा बिछाकर उसे चित्त लेटाया जाता है। कभी वह आंख खोल कर देखती है ...और खुद को बहुत सारे लोगों से घिरा हुआ पाती है, कुछ साहब लोग उसे सहला रहे है, कुछ माथा और बालों पर हाथ फेरते हैं, कुछ लोग हाथ-पांव छूकर देखते हैं कुछ बोल रहे हैं, इसे लू लग गई है। इतनी देर में वह एक बार चीखती है...नहीं ..और जोर से चिल्लाती है–मुझे छोड़ दो....और फिर अचेत हो जाती है। दामिनी की अचेत सहेली एक भयावह रात का दृश्य देखने लगती है। जिसमें उसे दीखता है- दामिनी के साथ घर के पिछवाड़े की झाड़ियों में उसका प्रेमी और दामिनी, दोनों आपस में कुछ बात कर रहे हैं। वह दामिनी से कह रहा है–उठ दामिनी, साड़ी सुधारकर पहन ले। दामिनी दर्द तो नहीं हो रहा है ना ? उठ मेरी दम्मो।

और... उसे सिलसिलेवार दिखता है– वह दामिनी से कहता–प्लीज दामिनी, बस अब सिर्फ एक बार और। अबकी अंतिम बार होगा। फिर उसके बाद तो बारिश ही शुरू हो जाएगी, काम भी बंद हो जायेगा और ये साहब लोग भी नहीं आयेंगे, फिर तुम्हें मेरे अलावा कोई छुएगा तक नहीं। अरे दम्मो मैं कहता हूँ, फिर तुम्हें कोई देखेगा तक नहीं। और इस बारिश के बाद तुम हमेशा के लिए मेरी हो जाओगी, लेकिन दामिनी तुम्हें साहब लोगों के लिए एक बार और आना होगा बस। कल साहब लोगों का फोन आया था, उन्होंने एक रात के लिए तुम्हें और बुलाने को कहा है। कह रहे थे कि, कोई एक और साहब भी साथ आयेंगे, जो इन सबके भी बोस है। उनके ही हाथ में सबका परमोसन का अधिकार होता है, वो लोग कह रहे थे कि मेरा भी परमोशन करवा देंगे, उनकी ही रिपोट जाने पर परमोसन होता है। कह रहे थे कि मेरे बारे में भी अच्छा लिखवा देंगे .. । और...वो तो ये भी कह रहे थे कि, अगर उनको नाराज किया तो किसी की नौकरी भी जा सकती है। मुझे कह रहे थे कि अपनी तरक्की और नौकरी दोनों के बारे में सोच लेना। अगर दौरे वाली रात तुम नहीं होगी तो मेरी नौकरी नहीं बच पायेगी। और नौकरी ही नहीं बचेगी तो हम फिर शादी कैसे करेंगे। दामिनी समझो प्लीज। सिर्फ एक बार तुम्हें अपनी माँ से और झूठ बोलना पड़ेगा कि तुम अपनी सहेली के घर सोने जा रही हो। बस सिर्फ एक रात और दामिनी फिर कभी नहीं।

बेहोश लड़की को फिर एक बार होश आने को होता है। उसके होंट हिलने को होते हैं, जैसे वह कुछ बोलना चाहती है, पर बोल नहीं पा रही हो। इस बीच कुछ साहब लोग घड़े से खुद ही पानी निकाल–निकाल कर पीने लगते हैं। बेहोश लड़की ज़रा सी हिलती है, फिर अचेत हो जाती है। एक साहब उसकी गर्दन को ऊपर उठाते हुए थोड़ा सा पानी पिलाने का प्रयास करते हैं, पानी गिरता हुआ लड़की की गदरन के नीचे जमींन पर गिर जाता है। बेहोश लड़की फिर से अचेतावस्था में चली जाती है और फिर से वही दृश्य उसके दिमाग में चलने लगता है। साहब लोगों के दौरे वाली रात, दामिनी अपनी माँ से झूठ बोलकर मदन के साथ इस मचान पर ही इन साहब लोगों के पास जाती है। मुर्गा और मक्के की रोटी बनाती है, मदन दारू लेकर आता है, साहब लोग मदन के साथ मिलकर दारू पीते हैं, फिर बना हुआ मुर्गा और रोटी खाते हैं। इस बीच कोई-कोई खाना बनाती हुई दामिनी के पास बैठकर उससे कुछ-कुछ बोलते रहे। कुछ उसकी देह से भी छेड़छाड़ करते रहे।

काली शर्ट वाले साहब कुछ ज्यादा ही रंगीन मिजाज आदमी हैं, वे ही ज्यादातर दामिनी को छेड़ रहे थे। सब लोग खाना खा लेते हैं और उताने होने लगते हैं। सोने के पहले सब बारी-बारी से दामिनी के साथ एक तूफानी खेल खेलते और ढेर होकर, लम्बी सांसे भरने लगते हैं। दामिनी बुरी तरह से रौंदी जा रही थी, मसली जा रही थी। वह कराहती रही, सिसकती रही पर किसी को कुछ भी करने का मना नहीं करती। सब कोई उसे अपनी-अपनी इच्छा के अनुसार मसल रहे थे, रौंद रहे थे और वह किसी बेजान वस्तु की तरह लेटी रही। दामिनी रात भर सुबकती रही। कुछ दामिनी को रौंदते रहे और कुछ खर्राटे भरते रहे। मदन उस रात इतनी दारू पी लेता कि उसको स्वयं का भी होश नहीं रहता। भोर बेला में दामिनी उसे किसी तरह जगाती और घर चलने को कहती। मदन को होश आया तो उसने दामिनी को देखा। दामिनी की आँखे रात भर रोने और जागने में सूज कर लाल और मोटी हो गई थी, ऊपर के होंट पर खून की पपड़ी जमी थी। दामिनी को उसने इस हालत में देखा तो उसका रहा-सहा नशा भी, खत्म हो गया था। मदन ने दामिनी का हाथ पकड़ा और बोला चल दामिनी.. । चल...। साले सब उताने होकर पड़े हैं। दामिनी ने चलने से पहले काली शर्ट वाले साहब को एक बार अच्छे से देखा था। उसे देखते हुए दामिनी का चेहरा एकदम सख्त हो रहा था। सुबह ठंडी-ठंडी हवा चल रही थी। मदन और दामिनी घर की ओर निकल गये थे और साहब लोग सो रहे थे। एक तेज हवा का झोका आया और धूल उड़ाता हुआ आगे निकल गया। ड्रायवर की नींद खुल गई। देखा कि सुबह हो गई तो सभी साहब लोगों को जगाने लगा। साब जी.. उठिए साब जी ... सुबह हो गई। काली शर्ट वाले साहब पहले उठे। ड्रायवर गाड़ी साफ़ करने लगता है, और साथ–साथ काली शर्ट वाले साहब से बातें करता है। देखता है साहब की नाक के पास खून लगा हुआ है। वह साहब को बताता है–साहब आपकी नाक के पास खून लगा हुआ है। साहब खून को हाथ से साफ़ करते हुए गाड़ी के शीशे में जाकर देखतें हैं। नाक के पास कहीं कोई चोट

नहीं थी और बिना कोई चोट के निकले इस खून को लेकर दोनों आश्चर्यचकित थे। अचानक काली शर्ट वाले साहब ने कहा–समझ गया..सब समझ गया। साली होंठ... के लिए मना कर रही थी। जोर से खीचकर एक तो बाँहों में दबोच रखा, दूसरे रात भर होठों को चूसते रहा-चबाते रहा। होंठ और खून दोनों का स्वाद मिलकर एक हो गया था। कैसे बयाँ करूँ रात का आनंद। मुझे तो कुछ देर के लिए लग रहा था कि जैसे मैं सचमुच सिंह हो गया हूँ। साली अगले दौरे में सब कुछ चुपचाप करने देगी। ड्रायवर बोला– नई गाड़ी है साहब, अभी रफ्तार नहीं समझती। साहब- हाँ तुम सच ही कहते हो। इनकी बातें सुनकर, सबकी नींद खुलने लगती है, बारी-बारी से सब उठते हैं, कपड़े पहनकर, शहर की ओर रवाना हो जाते हैं ...।

बेहोश लड़की के होंठ ज़रा से खुलने को हुए, उसके शरीर से लगातार पसीना निकल रहा था, वह कभी-कभी चेहरे की आकृति अजीब सी बना रही थी और बिगाड़ रही थी, दांत पीस रही थी। वह एक बार जोर से चीखी और उठकर बैठ गई । बचाओ–बचाओ कहती हुई वह, तालाब की ओर भागने लगी। जोर-जोर से चिल्लाने लगी ! तुम सब पापी हो, मैं सबको बता दूंगी तुम्हारा पाप । कमीनों मैं दामिनी की बात सबको बता दूंगी, तुम्हें नहीं छोडूंगी । वह बोलती जा रही थी, चलती जा रही थी और लड़खड़ाकर गिर जाती है, फिर अचेत हो जाती है। फिर से उसके चारों ओर भीड़ इकट्ठी हो जाती है।

> गाँव वालों ने पंचायत की और दामिनी के पिता के लिए यह फरमान जारी किया कि अगर, गाँव में रहना है तो, लड़की के पेट से बच्चा गिराना पड़ेगा, नहीं तो आठ दिनों के अंदर गाँव छोड़कर जाना पड़ेगा। पानी में रहकर मगरमच्छ से बैर कैसे किया जा सकता है भला। आखिरकार दामिनी का बाप भी सामाजिक मर्यादा को मानने पर विवश हो ही गया।

साहब लोग मदन से कहते हैं- मदन हम लोग चलते हैं। अभी कुछ और जगहों पर तालाब और डैम चैक करने जाना है, शाम भी हो रही है। लगता है कि बुखार लड़की के दिमाग में चढ़ गया है। हम लोग जाते–जाते डॉ. रामू को भेज देंगे। अगर ठीक नहीं होगी तो शहर के अस्पताल में भर्ती करवा देंगे। वहां हमारी जान-पहचान भी है, सब कुछ ठीक हो जायेगा। साहब लोग, लड़की के पिता से कहते हैं- दादा घबराओ मत, हम तुम्हारे साथ हैं। मदन ने शहर का अस्पताल देखा है, इसको मदन ही ले आएगा अस्पताल तक। मदन जो कुछ भी होगा, हमको फोन करना, शहर आने का कोई साधन नहीं मिलेगा तो हम जीप भेज देंगे। लड़की के पिता से-ठीक है दादा, हम लोग चलते हैं। ड्रायवर गाड़ी स्टार्ट करो ...। जी साब..।

थोड़ी देर बाद गर्द उड़ाती हुई जीप हवा हो जाती है। गर्द का एक गुबार आसमान को चुनौती देने खड़ा हो जाता है। किन्तु थोड़ी ही देर में धरती की सतह से फिर चिपक जाता है। थोड़ी देर बाद लड़की को होश आ जाता है। आज की दोपहर के बाद का सारा काम इसी तरह हुआ। आज तालाब खुदाई का काम ना के बराबर ही हुआ था। कुछ लोग जो काम कर रहे थे वे भी रह-रह कर बेहोश लड़की को देखने चले आते थे। आज मदन जो काम की देखरेख कर रहा था, लड़की के बेहोश हो जाने के बाद से किसी से कुछ नहीं कह रहा था। दामिनी के घर वाले भी दोपहर के बाद काम पर नहीं आये थे। उधर दामिनी के पिता ने दोपहर से ही दारू पीना शुरू कर दिया था। शाम को घर लौटे हुए लोगों ने देखा कि वह दामिनी को लगातार डांट रहा था और उसकी माँ उसे लगातार पूछ रही थी- बता, रात को कौन था तेरे साथ ? दामिनी थी कि उस लड़के का नाम भी जबान तक नहीं आने दे रही थी। दूसरे दिन मदन सारा काम एक दूसरे मेट को समझाकर, शहर चला जाता है। और कुछ दिन बाद शहर से भी कहीं दूर निकल जाता है। दामिनी को मदन के गायब हो जाने की खबर मिल गई थी, किन्तु वह सोच रही थी कि उसने मदन से सच्चा प्रेम किया है और वह लौटकर जरूर आएगा।

दामिनी ने आफत-मुसीबत के दिनों में अपनी इज्जत तक लुटाकर उसकी नौकरी बचाई है, वह इस कुर्बानी को कभी नहीं भूल सकता। वह धोखेबाज नहीं है। पर राह देखते–देखते, छह महिने बीत गये थे। उसका पेट लगातार बढ़ता ही जा रहा था। समाज की सारी महिलाएं समझ गई थी कि, दामिनी के पेट में बच्चा है। अपने स्वभाव के अनुसार महिलाएं, खाली समय में अटकलें लगाती रहती कि, उसके पेट में किसका बच्चा होगा।

दामिनी के 'पेट से' होने की खबर आग की तरह फ़ैलकर राख हो रही थी, किन्तु बची हुई चिंगारी हवा लगते ही सुलगने लगती थी। गाँव में कोई भी नया व्यक्ति आता तो कुछ लोग- जिनका, ऐसी खबरें फैलाने का हमेशा ही काम होता है, जल्दी से उनके कानों में किसी मन्त्र की तरह फुसफुसा देते थे। दामिनी के परिवार का समाज में हुक्का पानी, लेन-देन, आवा-जाही, धीरे-धीरे सब कुछ बंद हो गया था। इनके घर के सब लोग सिर नीचा करके

चलते थे। लोग ताने मारते थे कि बिन ब्याही लड़की 'पेट से' है, और उसको घर में रखते हैं।

इनको देखकर कोई भी बिना वजह थूकता और मुंह फेरकर जल्दी से बगल हो जाता था। इनके घर में जो हुआ था वो सामाजिक मर्यादा के खिलाफ था। समाज ने आज तक बिना ब्याह के पेट में बच्चा रखने की किसी को भी अनुमति नहीं दी है। और दामिनी बिना ब्याह के पेट में बच्चा रखे हुयी है। दामिनी के घर के लोग इस समाज से परेशान थे और समाज के लोग इस घर से। समाज सोचता था- ये कैसा घर है ? और ये घर सोचता था- ये समाज कैसा है ? जब आप कहीं फंस जाते हैं, तब आपको सारे नियम क़ानून बंधन लगने लगते हैं, वहीं वे दूसरों के लिए जरूरी लगते हैं। एक दिन गाँव वालों ने पंचायत की और दामिनी के पिता के लिए यह फरमान जारी किया कि अगर, गाँव में रहना है तो, लड़की के पेट से बच्चा गिराना पड़ेगा, नहीं तो आठ दिनों के अंदर गाँव छोड़कर जाना पड़ेगा। पानी में रहकर मगरमच्छ से बैर कैसे किया जा सकता है भला। आखिरकार दामिनी का बाप भी सामाजिक मर्यादा को मानने पर विवश हो ही गया।

एक रात दामिनी के घर से कई आवाजें एक साथ आती रहीं। दामिनी चीख रही थी, उसकी माँ, उसे लगातार डांट रही थी। एक बुजुर्ग महिला-बस ..थोडा सा और, जरा सीधी रह, थोड़ी देर पैर को ऊपर करके रख, लम्बा मत कर। दामिनी की माँ दामिनी को एक थप्पड़ जड़ देती है, हरामजादी कुत्ती ..कहीं की.. , पता नहीं तूने मुझसे किस जन्म का बदला निकाला है, अगर ऐसा पता रहता तो तुझे जन्म लेते ही मार डालता। जब से जन्मी है, कलमुँही ने जीना हराम करके रक्खा है। एक तो तेरे जन्म के बाद से ही एक साल तक तेरे बाप ने मुझे मायके से वापस नहीं लाया और लाया भी तो मेरी सास तुझे जनने पर अभी तक ताने सुनाती है। और...और .....कलमुँही तू मुंह काला करके हमारी इज्जत को ऐसे मिट्टी में मिला देगी, ये क्या पता था। साली तुझे जन्म लेते ही मसल कर मार डालती तो आज ये दिन न देखने पड़ते। तेरे कारण ही गाँव में हुक्का-पानी सब बंद है। देखती नहीं तेरा बाप मर्द होकर नीचा सिर करके चलता है।

बेटी ...घर की मर्यादा का ज़रा सा तो ख्याल रहता तुझे ! अब भी वक्त है, इज्जत बचाने का। चल मान जा बेटी.. लेट जा.. । रमिया को करने दे उसका काम, रमिया जरा आराम से काटना। चल लेट जा बेटी नहीं तो तेरा बाप, तेरे साथ मुझे भी काट डालेगा। वो ऐसा मरद है कि जो एक बार कह देता है, वही करता है। तू नहीं जानती क्या उसको..?

बस फिर एक बार ही दामिनी कहती है- माँ इस बच्चे को जन्म लेने दो माँ, ये मदन की अमानत है और ये मेरा भी सब कुछ है माँ। मैं इसे देखना चाहती हूँ माँ ..ये कैसा दिखेगा ? उसके बाप की तरह या... ? लड़का होगा या लड़की ? माँ..मान जाओ माँ... । एक जोरदार थप्पड़ जड़ने और पीठ पर धमा-धम घूसे पड़ने की आवाज। किसी मर्द की आवाज – सोच रहा था जनाना कमरे में नहीं आऊंगा, लेकिन बहुत देर से सुन रहा हूँ, साली ज्ञान दे रही है। मैं उसे धोखा नहीं दे सकती.., बच्चे को जन्म लेने दो.., मैं उसे देखना चाहती हूँ....वाह.. बहुत खूब ... । वाह, तू उसे धोखा नहीं दे सकती, पर सगे बाप को धोखा दे सकती है, बाप की इज्जत मिट्टी में मिला सकती है, समाज से उसका दाना-पानी बंद करा सकती है।

तुझे पराये आदमी पर भरोसा हैं, जो गायब है । घर-परिवार के सम्मान और दाना-पानी का ख्याल नहीं है तुझे। और फिर.... कमरे के अन्दर से कई लोगों के एक साथ रोने की आवाजें । दामिनी, उसके माँ-बाप, सब एक साथ अलग-अलग तरह के दुखों से रो रहे थे । दामिनी कहती है- नहीं, मैं बच्चा नहीं गिराउंगी..। दामिनी की इस बात से उसका बाप एकदम भड़क गया और जोर जोर से बोलने लगा कैसे नहीं गिराएगी मादरच... । बांधों इसके हाथ-पैर, रंडी बनेगी साली.... मादरच.... । और उसके बाद सिर्फ दामिनी के रोने–चिल्लाने और सिसकने की आवाजें आती रही, और फिर बाद में सिर्फ सिसकियां भर आ रही थीं। सुबह तक सब कुछ शांत हो गया था, जैसे इस गाँव में सारी रात कुछ भी नहीं हुआ हो।

सूरज के उजाले में सब कुछ वैसा ही था, जैसे रोज होता है। भोर बेला में- एक महिला पड़ोसी गाँव की रमिया, जो मरे हुए जानवरों का चमड़ा निकालने का काम करती है, दामिनी के घर से एक झोले में कुछ लेकर जा रही थी, जिसमे से खून टपक–टपक कर रास्ते भर निशानी छोड़ रहा था। डिब्बा लेकर शौच जाने वाले लोग रात का सब माजरा समझ गए थे। ऐसे संकट के समय में यह बूढ़ी रमिया ही 40-50 सालों से गाँव वालों के काम आयी है। इस बुढ़िया को जीवनभर का अनुभव है, ऐसे कई मामले निबटाने का।

चार साल हो गए, मदन का कहीं कोई पता नहीं चल पा रहा था। दामिनी भी अब, मदन को धीरे-धीरे भूलने लगी थी। समाज में फिर से सब उसी तरह से रहने लगे थे। दामिनी भी समाज में पहले की तरह घुलने-मिलने लगी थी। सामान्य तौर पर अब लोग उससे ज्यादा परहेज नहीं करते थे। हाँ आसपास के गाँव तक उसके बदचलन होने की और एक बच्चा गिरा देने की खबर फ़ैल गई थी। दामिनी सुन्दर थी और गाँव के बिगड़ैल कब मानने वाले थे। गाँव के गबरू उसे छेड़ने से बाज नहीं आते, मौका पाकर सब उससे एक बार... की मांग करते। दामिनी बिना कुछ कहे वहां से चुपचाप आगे बढ़ जाती। कुछ दिनों बाद, दामिनी के बाप ने एक

खबर चारों तरफ फैला दी थी कि, उसे मदन कहीं भी और कभी भी मिलेगा तो उसका सिर काटकर, माँ चंडी के चरणों में चढ़ा देगा । जिसने उसका जीना हराम कर रक्खा है, वह उसे भी नहीं जीने देगा । वनग्राम में सब कुछ इसी तरह से चल रहा था ।

दो साल बाद एक दूर गाँव से, दामिनी के लिए रिश्ता आया वहां उसका ब्याह तय हो गया । वर-पक्ष के लोग आठ दिनों के अन्दर ब्याह करने की मांग करते हैं। दामिनी के पिता की भी दिली इच्छा यही थी कि, विवाह जितना जल्दी हो उतना ही अच्छा होगा । लेट -लतीफी में कहीं कोई पुरानी बात पता ना चल जाये । एक रात वह खूब दारू पी लेता और गली में खड़ा होकर जोर-जोर से बोलता है – साले हरामखोरों... । तुम सब मेरा मजा देखना चाहते थे ना ..? तो, साले कान खोल कर सुन लो ..., आठ दिन के अन्दर लड़की का ब्याह करके दिखाऊंगा ।

हुक्का-पानी बंद करेंगे साले ...हीं...थू ....।

भगवान् ने सबके घर बेटी दी है, सालों देखता हूँ कब तक पाक–साफ़ बचे रहोगे तुम इस गाँव में ? ह र रा म खोरों....दे ख ता ..हूँ .. ।

बोलता-बोलता वह बरामदे में ही लुढ़क जाता है और बड़बड़ाते रहता है । बड़बड़ाते- बड़बड़ाते रात में पता नहीं कब सो जाता है ...कुछ देर बाद लोग उसे बड़बड़ाता हुआ छोड़कर अपने-अपने घरों में जाकर सो जाते हैं । दिन निकलने पर सूरज के उजाले में सब कुछ वैसा ही था जैसा होता है, जैसे रात में कुछ हुआ ही न हो ।

गाँव में एक नई खबर फ़ैल गई थी कि दामिनी को उसके बाप ने चालीस हजार रुपये में बेच दिया और दारू पीकर घूम रहा है । वो लोग आठ दिन में आकर, दामिनी को ले जायेंगे । ब्याह करके ले जाने की बात हुई है । ठीक आठवे दिन दामिनी के घर पर एक जीप में सवार होकर, आठ–दस लोग आते हैं और शादी-विवाह की सीधी सरल रश्में पूरी करके दामिनी को ले जाते हैं । दामिनी ससुराल चली गई थी । और इधर उसकी बची हुई यादों को गाँव के लोग समय–समय पर किसी कहानी की तरह कुरेदते रहते थे । एक-दो महीने तक दामिनी के अच्छे भले की खबर आती रही । बेटी को सावन में घर लाने गए उसके बाप ने देखा– दामिनी सूखकर कांटा हो गई है । दिन रात काम में व्यस्त रहती है । उसके ससुराल वाले दामिनी को अभी मायके नहीं भेजना चाहते थे ।

दामिनी की सास बोली- समधी जी विवाह में बहुत खर्च हो गया है । लोग शादी के समय दिया हुआ उधार मांगने छाती चढ़ते हैं, जब देखो तब, दरवाजे पर आकर खड़े हो जाते हैं । अभी काम करके कर्जा फेड़ने दो फिर फुरसत के दिनों में आकर ले जाना । पहली जंचकी वहीं करवाएंगे समधी जी । तब तो दो-तीन महिना वहीं रहेगी तुम्हारी बेटी । दामिनी के पिता ने एक बार फिर जिरह की तो,जंवाई से न रहा गया । मोर्चा संभालता हुआ तुनककर बोला- ससुर जी पूरे चालीस हजार दिए है, तुमने जीवन भर में भी इतनी बड़ी रकम एक साथ नहीं देखी होगी, फोकट में नहीं लाया हूँ इसे । पूरी रकम एक साथ अदा की है, विवाह का कर्ज तो पूरा कर लेने दो तुम्हारी बेटी को । ये कर्ज मेरा बाप थोड़े ही पूरा करेगा । जाओ अभी नहीं भेजेंगे । और अगर अभी ले ही जाना है तो फिर कभी वापस मत भेजना । वैसे भी साली....और फिर बोलते–बोलते रुक जाता है और वहां से चला जाता है ।

दामिनी के पिता आगे फिर कुछ नहीं बोलते । वह जानते थे कि दामिनी के पक्ष में ज्यादा कुछ बोलना खतरे से खाली नहीं था । कहीं कोई पुरानी बात खुल गई तो ..? फिर सब कुछ बिगड़ने में देर नहीं लगेगी । वह दामिनी को बिना लिए ही लौट जाते हैं । समय बीतता गया ...दो माह, चार माह, छह माह, दस माह, अभी तक दामिनी की खबर दूर–दूर से ही मिला करती थी, उसके पिताजी उसे लेने के लिए, दूसरी बार जाने की हिम्मत नहीं कर पाते । और उधर उसके ससुराल में दामिनी का पुराना किस्सा पता चल जाता है । दामिनी के पति को जब यह बात पता चली तो, वह सन्न रह गया ।

उसे लगा जैसे उसके पैरों के नीचे से जमीन ही खिसक गई । वह किसी गहराई में लगातार धंसता ही जा रहा था । उसे लगा कि उसकी पूरी दुनिया ही उजड़ गई है । वह घर से दूर एक एकांत में जाकर खूब रोता है और शाम को दारू पीकर घर लौटता है । दामिनी को ढूंढता है, बाल पकड़कर घसीटता हुआ, घर के सामने वाले बरामदे में लाता है और उसके पेट पर एक जोरदार लात मारता है, उसको जमीं पर गिरा देता है, लात घूंसे से उस पर कई प्रहार करता है । दामिनी चीखती रही, चिल्लाती रही और मार खाती रही । साली बहुत प्रेम करती थी ना मदन से ...मादरच.....क्यों नहीं घुस गई उसीच के घर में ..., मेरी किस्मत फोड़ने यहाँ क्यों आई है....हरामजादी..? एक साल हो गए साली का गरभ इसीलिए नहीं ठहरता, न जाने कितने गरभ गिराए होंगे हरामजादी ने । अभी तो एक का ही पता चला है । रुक साली बताता हूँ तुझे, प्रेम करने का मतलब क्या होता है । शोर-शराबा सुनकर कई लोग घर के सामने, दूर से ही यह सब देख रहे थे । वह मसाला पीसने वाला सील का पत्थर उठाकर लाता है और जोर से उसके सिर पर पटक देता है । सिर फूटने की आवाज आती है.....फट्ट... । दामिनी मछली की तरह तड़पने लगती है, फड़फड़ाने लगती है । वह एक दीया उठाकर लाता है और दामिनी के ऊपर फेंक देता है, घर के अन्दर घुसता है, कुछ कपड़े निकालकर लाता

है और उसके ऊपर डाल देता है। एक तेल का डिब्बा लेकर आता है, और डिब्बे का तेल उस पर उड़ेल देता है। वह जलती हुई थोड़ी देर तक फड़फड़ाती रही और फिर हमेशा के लिए शांत हो गई थी। यह तमाशा देखने वाले सब लोग धीरे-धीरे अपने–अपने घरों में जाकर घुस जाते है।

दूसरे दिन सूरज के उजाले में, घर के बरामदे में एक मछली की तरह भूंजी हुई, काली–नंगी, मरी हुई देह पड़ी थी, जिसकी मृत्यु की गवाही देने वाला कोई नहीं था, सिर्फ एक पत्थर के सिवा, जिस पर खून के दाग लगे थे। पर वह पत्थर था, जो बोल नहीं सकता था और बोलने वाली दामिनी मर चुकी थी। वह भी नहीं बता सकती थी अपनी मृत्यु का सच। दामिनी का पति और सास-ससुर घर से गायब थे। प्रत्यक्षदर्शी गाँव के लोग हमेशा की तरह 'कुछ नहीं देखा' की मर्यादा का पालन करने वाले लोग थे।

अपनी पढाई पूरी करके कई दिनों के बाद, जब मैं गाँव लौटा तो मुझे दामिनी की यह कहानी सुनने को मिली और बरगद के पास नहीं जाने की सलाह। गाँव लौटने पर मुझे पता चला कि- अब तक मैं कई ...चीजों को खो चुका था ! कुछ दिनों बाद अखबारों में एक खबर छपी थी- "अपने गाँव लौट रहा, सेक्स स्कैंडल का ईनामी अपराधी बना बूढ़े पागल का शिकार"

मुख्य सड़क से गाँव को जोड़ने वाली सड़क के पास एक युवा, बूढ़े पागल का शिकार उस समय बन गया, जब वह छह साल बाद अपने गाँव लौट रहा था। सड़क के आसपास कई दिनों से रहने वाला बूढा पागल जो अब तक कई लोगों को अपना शिकार बना चुका है, वह कई सालों पहले भी इसी गाँव के बरगद के पेड़ के पास रहता था और पेड़ के आसपास से गुजरने वालों को पत्थर मारता था। आने-जाने वालों को बेवजह परेशान करता था। पुलिस शिनाख्त में अपराधी युवा के पास, शहर से गाँव लौटने का टिकट, कुछ रूपये और एक परिचय पत्र प्राप्त हुआ है, जिस पर उसका नाम– अक्षयराज सिंह उर्फ़ मोहित सिंह उर्फ़ मदन, साथ में एक फोटो एलबम, जिसमें अलग-अलग भेष में उसी के कई फोटो के साथ, कई लड़कियों की फोटो भी मिली है, लड़कियों के फोटो के पीछे, फोटों की सुन्दरता के हिसाब से कीमत लिखी थी। किसी पर बीस हजार, किसी पर तीस हजार, किसी पर चालीस हजार, किसी पर पचास..। जितनी सुन्दर फोटो उतनी ज्यादा राशि...। एक लड़की की ऐसी भी फोटो मिली है, जिस पर उसने अपना नाम 'मदन' लिख रखा था।

उधर कई दिनों से, सेक्स स्कैंडल और कई आपराधिक मामलों में, पुलिस को भी इस अपराधी की तलाश थी। गाँव वालों के लिए राहत की बात यह है कि, पागल खाने से कई बार भाग चुके, उस बूढ़े पागल को पकड़ कर फिर से पागल खाने पहुंचा दिया गया है। इस खबर को पढने के बाद मेरे हाथों से अखबार की पकड़, निरंतर ढीली पड़ती जा रही थी और फिर अखबार मेरे हाथों से छूट ही गया था...। हवा का एक तेज झोका आया और जमीन पर पड़े अखबार को चार के पेड़ की ओर उड़ा ले गया। अख़बार में छपी खबर की सभी लाइनें बिखर गयी थीं। मुझे आगे दिखता है बरगद का पेड़। मुझे लग रहा था जीवन के सारे अनुभव किसी कहानी में बदल गए थे। जमलू का बेटा उस दिन बरगद की हरी हरी कोमल पत्तियों को तोड़कर नीचे गिरा रहा था और सुनीता उनको उठा-उठाकर बकरियों के सामने डाल रही थी। सुनीता और जमलू के लड़के की बकरियाँ बरगद की कोमल पत्तियों को खा रही थी। सुनीता अब तक जमलू के लड़के से प्रेम करने लगी थी। दोनों दिन भर साथ में ही बकरियां चराया करते थे। दामिनी मर गई पर सुनीता आज भी जिन्दा है प्रेम करने के लिए। हजार छलावों और लुटने-पिटने के बाद भी प्रेम के लिए जिन्दा रहेंगी वनग्राम की लड़कियां !

एक ख़त मैकॉले के नाम

प्रियंवद

प्रियंवद हिन्दी के वरिष्ठ कथाकार हैं। इनका प्रिय विषय इतिहास है। वर्तमान में 'अकार' पत्रिका का सम्पादन करते हुए कानपुर में निवास करते हैं।

श्री मान मैकॉले साहब,

आप मुझे नहीं जानते। जानेंगे भी कैसे? आपके और मेरे बीच का फासला बहुत ज्यादा है। इसे घड़ी की सुइयों से नहीं नापा जा सकता। इस फासले में सैकड़ों मौसमों की गुजरी हुयी पालकियाँ हैं, हजारों परियों की नीदें हैं, लाखों शंख ध्वनियाँ और अज़ान के स्वर हैं। हिरन और खरगोशों की कुलाँचें हैं, चिड़ियों के चुम्बन हैं, कुचले हुए फूल हैं। टूटे सितारे और भुलाए जा चुके शब्द हैं। इन्हें नापने वाली घड़ी अभी नहीं बनी है। वैसे भी, आप मुझे क्यों जानेंगे? कहाँ आप, इस देश के भाग्य विधाता और कहाँ मैं, इस देश के एक छोटे शहर का बेहद मामूली, अनजान, अज्ञानी लड़का। आपने तो कभी सोचा ही नहीं होगा कि यहाँ की गंदी, संकरी, अंधेरी गलियों में घूमने वाला कोई लापरवाह, आवारा लड़का, कभी आपको पत्र लिखने का साहस करेगा।

मैकॉले साहब, आपसे अच्छा कौन जानता है कि इतिहास और समय, अपनी बंद मुट्ठी से जादू की तरह कुछ भी निकाल देते हैं। अक्सर ऐसा होता आया है। एक मामूली ज़ुकाम, मरहम की एक डिबिया, किसी की नाक की बनावट लाखों लोगों की जिंदगी बदल देते हैं। सन 1599 की आखरी रात के आखरी घंटों में, आपके मुल्क में भी तो यही हुआ था। रानी एलिज़बेथ की एक मोहर ने इस देश के करोड़ों लोगों की जिंदगी बदल दी थी। उस रात अकबर के हिन्दुस्तान में किसने सोचा था कि एक दिन दिल्ली के मुगल बदशाह खत्म हो जाएंगे। नवाब, पेशवा, निज़ाम, राजा खत्म हो जाएंगे। इन सबके शहर, दरबार, ज़बानें, तहज़ीब, दौलत खत्म हो जाएगी। इनकी जगह कलकत्ता, मद्रास, बम्बई और दिल्ली जैसे बड़े शहर बनेंगे।

यूनिवर्सिटी, रेल, हिल स्टेशन, बैंक, मिलें बनेंगी। लिखा हुआ कानून, सुप्रीम कोर्ट, संसद, संविधान का शासन होगा। किसी ने नहीं सोचा था मैकॉले साहब। न क्लाइव ने, न वारेन हेस्टिंग्स ने, न मीर ज़ाफ़र न जगत सेठ ने। और तो और लंदन की लीडनहॉल स्ट्रीट पर बनी ईस्ट इंडिया कम्पनी की विशाल इमारत में बैठे डाइरेक्टरों में भी किसने सोचा था? हाँ, यह सोचा था बंगाल में घूमते, बाउल गाते फ़कीरों ने। गंगा पर गुजरने वाले बजरों के मल्लाहों ने। भट्ठियों के सामने लोहा गलाते लुहारों ने। कंधों पर पालकी उठाने वाले कहारों ने, श्मशान में लाशें जलाने वाले डोमों ने, हरम की बांदियों ने। ये सब देश की नसों में खून की तरह बहते थे। पर इतिहास में ऐसे लोगों की आवाजें कभी सुनायी नहीं देतीं। वहाँ कोई इनकी बात भी नहीं करता। आपने भी कहाँ की थी? आप भी एथेन्स और रोम की महानताओं के गीत गाते रहे थे। अपने मुल्क को इनकी संतान मान कर उसकी महान सभ्यता पर इतराते रहे थे। हम सब हिन्दुस्तानियों को हिकारत से देखते रहे थे। अब आप सोच रहे होंगे मै कैसे आपके बारे में इतना जानता हूँ? क्यों आज आपको पत्र लिख रहा हूँ? रूकिए, मैं आपको शुरू से सब बताता हूँ।

> अक्सर ऐसा होता आया है। एक मामूली ज़ुकाम, मरहम की एक डिबिया, किसी की नाक की बनावट लाखों लोगों की जिंदगी बदल देते हैं। सन 1599 की आखरी रात के आखरी घंटों में, आपके मुल्क में भी तो यही हुआ था। रानी एलिज़बेथ की एक मोहर ने इस देश के करोड़ों लोगों की जिंदगी बदल दी थी। उस रात अकबर के हिन्दुस्तान में किसने सोचा था कि एक दिन दिल्ली के मुगल बदशाह खत्म हो जाएंगे। नवाब, पेशवा, निज़ाम, राजा खत्म हो जाएंगे। इन सबके शहर, दरबार, ज़बानें, तहज़ीब, दौलत खत्म हो जाएगी। इनकी जगह कलकत्ता, मद्रास, बम्बई और दिल्ली जैसे बड़े शहर बनेंगे।

वह सर्दियों की एक दोपहर थी। तेज, चमकदार धूप में खिली हुयी। दो दिन से बारिश हो रही थी। दोपहर को रूकी थी, पर गीली सड़कों, पेड़ों और दीवारों की नंगी ईंटों की दरारों में उसका गीलापन धँसा था। दोपहर में लोग सब काम छोड़ कर, धूप की सारी गर्मी और तेजी अपनी खाल में भर लेना चाहते थे। घरों की छतों पर, बालकनी, सड़क के किनारे के चबूतरों, चाय की दुकान पर पड़ी बेंचों और पार्कों में लोग बैठे थे।

जब मैं गया सुकांत बाबू अपने कमरे के बाहर वाले बरामदे में, मुँडेर से कूद कर आए धूप के टुकड़े में बैठे थे। अपनी झुर्रीदार खाल की सिकुड़नों को सेंक दे रहे थे। मेरे आने से उन पर गिरने वाली धूप रूकी थी। बेचैनी से आँखें मिचमिचा कर उन्होंने मुझे देखा था।

"कौन है.... कौन?"

"जी मैं...तुहिन" मैने झुक कर उनके पाँव छुए थे।

"कौन तुहिन?" उन्होंने माथे पर सलवटें डाल कर याद करने की कोशिश की थी।

"आपका शिष्य...याद है आपको सर...क्लास में मैंने पहले दिन पूछ लिया था कि क्या ऐसा नहीं हो सकता कि पोरस लड़ाई में जीता हो और सिकंदर हारा हो?"

"फिर?"

"आपने पूछा था 'क्यों?' मैंने कहा था इसलिए कि इतिहास तो राजा लिखता है। कोई राजा अपनी पराजय क्यों लिखेगा? उसके लिए झूठा इतिहास लिखना ज्यादा आसान है। और फिर सिकन्दर तो देव पुत्र था। उसकी पराजय कैसे लिखी जा सकती थी?

"फिर?"

"तब आपने मुझे बाद में टीचर्स रूम में मिलने को कहा था। वहाँ मेंरी पीठ थपथपायी थी और इतिहास का एक मंत्र दिया था।"

"कौन सा मंत्र?"

"इतिहास को तीसरी आँख से देखने का। आपने बताया था सिर्फ उसी आँख से ही, इतिहास के गढ़े हुए झूठ और छुपाए गए सच भी दिखते हैं। इसे हमेशा खुली रखना। इसी आँख से इतिहास और भविष्य के खामोश, अंधेरे कोनों में सिमटे जीवन दिखते हैं।"

"हाँ हाँ अब याद आया सब। तो तुम तुहिन हो" उनके चेहरे पर हँसी आ गयी।

"पर पहले धूप से हटो जरा...वह स्टूल लेकर आओ" उन्होंने कमरे के कोने में रखे स्टूल की ओर इशारा किया था। स्टूल लेकर मैं उनके पास, छाँह वाले हिस्से में बैठ गया था।

"तुम ही अक्सर मुझे रास्ते में रोक कर सवाल करते थे?"

''जी"

"याद आ रहा है सब। कितने सवाल करते थे? कहीं भी रोक लेते थे। लाइब्रेरी के बाहर, गंगा किनारे, सुबह पार्क में। और सवाल भी कितने अजीब होते थे। जहाँआरा आग से न जलती तो हिन्दुस्तान का इतिहास क्या होता? क्लाइव ने आत्महत्या के लिए जो बंदूक इस्तेमाल की थी वह ठीक होती और चल जाती, तो क्या ईस्ट इंडिया कम्पनी इतनी आसानी से हिन्दुस्तान जीत लेती? दाराशिकोह अगर लड़ाई में औरंगजेब को हरा देता, तो क्या देश

का बँटवारा नहीं होता? पर आज क्या हुआ है? क्या फिर कोई सवाल है?"

"जी"

"क्या?"

"इतिहास को कहानी की तरह कैसे लिखें?" लगा, उन्होंने जैसे सुना ही नहीं। एक हाथ की उंगलियों से दूसरे हाथ की उंगलियाँ खुजलायीं। सूखी खाल पर खून की कुछ बूँदें छलक आयीं। कुछ देर उन चमकती बूँदों को देखते रहे फिर हथेली से खून रगड़ कर बोले।

"मैकॉले को पढ़ो। देखो उसने कैसे कवि, दार्शनिक और फरिश्तों के किस्सों और गीतों को इंग्लैंड के इतिहास में मिलाया है। कैसे इतिहास के चरित्रों को नाटक का पात्र बना दिया है। उसका इतिहास पढ़ने वाला इतिहास देखने भी लगता है। पढ़ा है कभी मैकॉले को?"

"नहीं" मैं बुदबुदा कर रह गया।

"वहाँ से किताब निकालो" उन्होंने कमरे की दीवारों में बनी अलमारियों में एक की ओर इशारा किया। मैं उठा। मैंने अलमारी के पल्ले खोले।

"ऊपर से तीसरे खाने में.....बांए से पांचवी..लाल किताब"

मैने किताब निकाल ली। उनके पास लाया। उन्होंने किताब ली। गोद में रख कर, आँखें सिकोड़ कर पहले पन्ने पर पेन्सिल से लिखे पेज नम्बरों में एक नम्बर खोला।

"पढ़ो, जोर से" उन्होंने कविता के एक अंश पर उंगली रखी। मैंने ऊँची आवाज में पढ़ा।

Then out spake brave Horatius
To captain of the Gate
'To every man upon this earth
Death Cometh soon or late
And how can man die better
Than facing fearful odds
For the ashes of his fathers
And the temples of his god.'

वह आँख बन्द करके सुन रहे थे। मेरे चुप होने पर आँखें खोलीं।

"यह युद्ध है पर कैसे कविता की सधी लय में लिखा है। कितना रस भर दिया है उसने। 1857 की बगावत कुचलने के लिए इंग्लैड में लोग इसी गीत को गा कर अपने सिपाहियों में जोश भरते थे।

आगे दूसरी कविता का टुकड़ा पढ़ो"

Let no man stop to plunder
But slay and slay and slay
The gods who live for ever
Are on our side to day

"देखो....इसे पढ़ने वाला कैसे सब देखने लगता है। यही लूट और हत्या जीवन भर ईस्ट इंडिया कम्पनी का मंत्र रहा। मैकॉले कलकत्ता के कमरे में घंटों बैठा थ्यूसिडिडीज़ का लिखा इतिहास पढ़ता रहता था। वहीं से उसने सीखा कि इतिहास के सच और कहानी के रस को कैसे मिलाया जाता है। तुम उसे पढ़ो, तुम्हें रास्ता दिखेगा। पर कैसे पढ़ोगे? किताबें हैं?"

"कहीं देखूँगा"

"तुम इसे रख लो...." उन्होंने मेरे हाथ कि किताब की तरफ इशारा करके कहा। "अब यह तुम्हारे ज्यादा काम की है।"

धूप का टुकड़ा फर्श से हट कर दीवार पर पंजे जमाए चढ़ने की कोशिश कर रहा था। वह अब कमरे के अंधेरे और सीलन में आ गए थे।

"मैं अब कम्बल लपेट कर कुछ देर सोऊँगा...फिर खाना बनाने वाला आ जाएगा।"

"चलता हूँ" मैंने स्टूल वापस रख दिया। लौट कर उनके पाँव छुए। जाने लगा। दरवाजे पर पहुँचा तो उन्होंने आवाज दी। मैं रूका। वापस लौटा "मैकॉले को पढ़ते समय यह मत भूलना कि मद्रास में जहाज पर वह जिस पहले हिन्दुस्तानी को देख कर, उसके रंग और नंगेपन पर हँसता रहा था, जिंदगी भर वह हिन्दुस्तानियों को उसी तरह देख कर हँसता रहा। उसकी गलती थी कि उसने इतिहास के सिर्फ एक ओर खड़े होकर सब कुछ देखा। यह गलती मत करना। किसी भी समय में बहुत कुछ होता है। बहुत मामूली लोगों के बहुत बड़े जीवन होते हैं। उनके जीवन में ही उस समय का सच होता है। सुख-दुख होते हैं। जय-पराजय होती है। उनको छोड़ कर इतिहास नहीं बनता"

"जी"

"क्या नाम बताया था?"

"तुहिन"

"हाँ....हाँ....तुहिन। अब बहुत जल्दी भूलने लगा हूँ। तुम जब चाहो आ जाना। किताबें भी ले लेना"

"जी" मैंने फिर पैर छुए और चला आया।

उस रात मैं देर तक खाली सड़कों पर टूटे पत्तों के साथ भटकता रहा था। न जाने कितनी आकाशगंगाओं से गुजरा। न जाने कितनी उदासियों की डयोढ़ियों पर दस्तक दी। न जाने कितने चिरागों को जलते बुझते देखता रहा। सुकांत बाबू ने कहा था हर

समय में बहुत कुछ होता है। क्या हर समय में आप भी होते हैं सुकांत बाबू?

मैकॉले साहब, उनकी दी हुयी किताबें पढ़कर पता चला कि यह देश आज भी आपकी कम्पनी और आपका ऋणी है। ऐसा कम्पनी इतिहास में किसने देखी थी जो दिमाग, हथियार और अपने नौकरों की ताकत पर मुग़ल और चीन के साम्राज्यों पर भारी पड़ती चली गयी? जिसकी आमदनी अपने देश ब्रिटेन की आमदनी से ज्यादा थी? जो आपके समय में हिन्दुस्तान के पाँच लाख वर्ग मील पर शासन कर रही थी? जिसके आधीन नौ करोड़ लोग थे? इसी कम्पनी ने दुनिया को शेयर मार्केट, पूंजी, मुनाफा, बाजार, बिजनेस मैनेजमेंट जैसे शब्द दिए। यही कम्पनी आज की दुनिया के सर्वशक्तिमान कारपोरेट जगत की जननी थी । माँ थी। आज हमारा देश फिर उसी तरह इनके चरणों में झुका हुआ है। उस जगत जननी कम्पनी को मेरा, मेरे देश का प्रमाण।

मैं और मेरे देश आपके भी ऋणी हैं मैकॉले साहब। आपकी हिस्सेदारी से बनायी अंग्रेजी शिक्षा, सरकारी नौकरियों के ढांचे, भारतीय दंड संहिता और ऐसा वर्ग जो खून और रंग में हिन्दुस्तानी हो, पर अपनी सोच, राय, नैतिक मूल्यों और बुद्धि में अंग्रेज हो, इन सबने उस हिन्दुस्तान को चलाया था । आज भी आपकी दी हुयी इन्हीं चारों चीजों से यह देश चल रहा है। कुछ भी नहीं बदला है। आप आज भी इसकी नसों में बह रहे हैं। इसका जीवन प्राण हैं। सच तो यह है कि इस देश में आज सब जगह आपकी प्रतिमाएँ होनी चाहिए। कनखियों से मत घूरिए। मैं सच कह रहा हूँ मैकॉले साहब। खुद ही सोचिए, कितना विचित्र है न? 1857 की क्रान्ति करने वालों को घृणा और भयानक बदले की भावना से देखने वाले, हमारी नस्ल को धरती से मिटा देने की सोचने वाले आप, (आपके साथ श्रीमान चार्ल्स डिकेन्स भी शामिल थे।) एडिसन के पाँवों और सैमुएल जान्सन की कब्रों के पास, अपनी कब्र में लेटे हुए आज नए भारत के भाग्य विधाता बन चुके हैं। लेकिन आजादी की हमारी उस पहली लड़ाई में शामिल होने वाला आखरी मुग़ल बादशाह, अस्सी साल की उम्र में रंगून की जेल में गुमनामी में मरा। अपनी कब्र के अंधेरों में वह आज भी गुनगुनाता है।

पसे-मर्ग मेरे मज़ार पर जो दिया किसी ने जला दिया
उसे आह दामने-बाद ने, सरे-शाम ही से बुझा दिया।
मेंरी आँख झपकी थी एक पल, मेरे दिल ने चाहा कि उठके चल
दिले-बेकरार ने ओ मियाँ, वहीं चुटकी लेके जगा दिया।
मुझे दफ्न करना तू जिस घड़ी, तो ये उससे कहना कि ऐ परी
वो जो तेरा आशिके ज़ार था, तहे-खाक उसको दबा दिया।
मैंने दिल दिया, मैंने जान दी, मगर आह तूने न कद्र की
किसी बात को जो कभी कहा, उसे चुटकियों में उड़ा दिया।

उसकी बात देश में अब कोई नहीं करता। आपको मेरा, मेरे देश का प्रणाम। और देश नहीं, अकेला मैं ऋणी हूँ सुकांत बाबू का। उन्होंने इतिहास के अँधेरे, गुमनाम कोनों में छुपे सच को देखना सिखाया । इतिहास को कहानी में कहना सिखाया। आज़ादी के बहत्तर साल बाद भी आपका सदैव ऋणी और आपकी कृपा के सदैव आकांक्षी देश के एक छोटे शहर का अज्ञानी, अज्ञात हिन्दुस्तानी।

समय समाज और संस्कृति

फिलहाल तो कोई मुक्तिमार्ग नहीं है!

देवेंद्र

देवेंद्र हिन्दी के वरिष्ठ कथाकार हैं। रचना का अंतरंग, समय बे समय, नालंदा में गिद्ध इनकी चर्चित पुस्तके रहीं हैं। स्वनिम पत्रिका पूर्व प्रधान संपादक रहे हैं।

बर्तोल्त ब्रेख्त के नाटक "लाइफ आफ गैलीलियो" में एक दृश्य आता है। गैलीलियो जेल की अंधेरी कोठरी में बन्द होता है और उसका शिष्य आंद्रिया उससे मिलने आता है। अपने गुरु और युग के इस महान वैज्ञानिक को यों अंधेरी कोठरी में बन्द फटेहाल देखकर आंद्रिया कहता है "कितना दुर्भाग्यशाली है वह देश जिसका कोई नायक नहीं।" शायद आंद्रिया को भरोसा है कि महाकाव्यों के उदात्त नायक आज अगर सत्ता में होते तो गैलीलियो के साथ ऐसा न होता। तब गैलीलियो कहता है- "दुर्भाग्यशाली है वह देश जो सिर्फ नायकों के बल पर जीता है।" तैतीस करोड़ देवी देवताओं वाला हमारा भारत देश वैसे भी वीरपूजा को दासता की तरह अपनाता रहा है। सामाजिक संरचना की बनावट और बुनावट में छुआछूत का भेद निचले पायदान तक जड़ जमाये बैठा है। यह हमारा एक ऐसा यथार्थ है जिस पर भारतीय संस्कृति का वितान फैला हुआ है। हमारी सांस्कृतिक गरिमा के इतिहास में ओझल एक बड़ी संख्या शताब्दियों से खेतों को अपने कठोर श्रम और पसीने से सींचती रही है। लेकिन प्रेमचन्द से पहले साहित्य के पन्नों पर इनकी कहीं कोई उपस्थिति दिख नहीं रही थी।

संस्कृत महाकाव्यों के बाद और आज से लगभग एक हजार साल पहले हिंदी साहित्य के प्रारंभिक काल में ढेर सारे वीरकाव्य रचे जा रहे थे। छोटे-छोटे राजाओं के दरबारी कवि लोग खूब सारे धीरोदात्त नायकों की रचना कर रहे थे। तब कैसी विडंबना है कि ठीक उसी समय भारत के राजनीतिक क्षितिज पर गुलामवंश का शासन स्थापित हो रहा था। हमारे एक-एक नायक कायरता और क्रूरता की मिसाल

बन कर विदा हो रहे थे। इसलिए महत्त्वपूर्ण यह नहीं कि किसी युग को उसका नायक मिल जाय। महत्व इस बात में ज्यादा है कि सामान्य जन को अपने युग का स्वर और साथ मिल जाय। प्रेमचन्द इसी सामान्य जन के कथाकार हैं। उन्होंने हिंदी साहित्य में नायकों की जगह चरित्रों को रचा। जिस जाति के साहित्य में दो हजार साल पुरानी धीरोदात्त नायकों की समृद्ध परंपरा थी, उस पूरी की पूरी परंपरा को मात्र दो दशक की अपनी रचनाशीलता के बल पर अपदस्थ करते हुए उन्होंने हिंदी में यथार्थवाद की नींव डाली। उन्होंने साहित्य में यथार्थवाद को न सिर्फ मजबूत जमीन दी, बल्कि उसे आलोचनात्मक यथार्थवाद की मंजिल तक ले गए।

1915 में प्रेमचन्द ने "पंच परमेश्वर" कहानी लिखी थी। यह सिर्फ जुम्मन शेख और अलगू चौधरी की कहानी भर नहीं थी, यह उन संस्थाओं की कहानी थी, जिन पर ग्रामीण समाज की बुनियाद टिकी हुई थी। उसके दो दशक बाद उन्होंने जब 'सवा सेर गेहूँ', 'पूस की रात' और अंतिम कहानी 'कफ़न' लिखी तब उनका दृष्टिकोण बदल चुका था। इस विकास यात्रा में अचानक यकीन करना असंभव प्रतीत होता है कि सदियों का इतना बड़ा कार्यभार किसी एक अकेले व्यक्ति ने बहुत कम समय में कैसे सम्भव कर डाला है। भारत के इतिहास में बीसवीं सदी की एक बड़ी उपलब्धि हैं- प्रेमचन्द।

अपनी रचनात्मकता के लगभग दो दशकों के भीतर उन्होंने तकरीबन ढाई सौ के आस-पास कहानियाँ और दर्जन भर उपन्यास लिखे हैं। उपन्यास तो दुनिया के अलग-अलग देशों में खूब लिखे गए हैं। मैं नहीं कह सकता कि प्रेमचंद के उपन्यास महत्त्व की दृष्टि से उनमें कहाँ और कितनी जगह घेरते हैं? लेकिन वे निश्चित ही विश्वभाषा में हिंदी के अप्रतिम कहानीकार हैं।

मध्यकालीन बर्बरता से निकलने की कोशिश में नवजागरण कालीन भारतीय मेंधा की एक सशक्त और रचनात्मक अभिव्यक्ति हैं- प्रेमचन्द। उसमें भारतीय ग्रामीण जीवन की सबसे प्रामाणिक छवियां मूर्तमान हो उठी हैं। हजारों साल बाद जब लोग हमारे इस युग को जानना चाहेंगे तब प्रेमचन्द की रचनाएँ उन्हें सबसे ज्यादा प्रामाणिक किसी दस्तावेज की तरह याद आया करेंगी।

अपनी रचनात्मकता के लगभग दो दशकों के भीतर उन्होंने तकरीबन ढाई सौ के आस-पास कहानियाँ और दर्जन भर उपन्यास लिखे हैं। उपन्यास तो दुनिया के अलग-अलग देशों में खूब लिखे गए हैं। मैं नहीं कह सकता कि प्रेमचंद के उपन्यास महत्त्व की दृष्टि से उनमें कहाँ और कितनी जगह घेरते हैं? लेकिन वे निश्चित ही विश्वभाषा में हिंदी के अप्रतिम कहानीकार हैं।

पिछली सदी के नवजागरण में सामाजिक सुधारों के जितने भी प्रयास हो रहे थे, जितनी भी राजनीतिक हलचलें हो रही थीं, उन सबको समाहित करती भारतीय मेंधा और उसकी चिंताएँ, उसके सरोकार मानो कहानियों का विराट फलक बनकर फैलती चली गई।

इन कहानियों की भाषा ने भारतेंदु युग के हिंदी-उर्दू वाले भाषा संबंधी सारे विवादों को ह्मेशा-हमेंशा के लिए खत्म कर दिया। जिस साहित्य में हजारों साल पुरानी धीरोदात्त और कुलीन नायकों की परंपरा चली आ रही थी, वहाँ प्रेमचन्द ने गांव और वहाँ के लोगों के सामाजिक जीवन के रेशे-रेशे को खोल कर रख दिया। नए सौंदर्यबोध की सृष्टि की। इस क्रम में साहित्य के कुलीन घरानों ने उन्हें घृणा का प्रचारक तक कहा। साहित्य से नायकों के युग को हमेशा-हमेशा के लिए चलताऊ करके उन्होंने उनके समानांतर छोटे-छोटे चरित्रों के जीवन की पड़ताल की। उन्होंने "ठाकुर का कुआं" और "सवा सेर गेहूं" जैसी कहानियां लिखी। उनके ये चरित्र हमारे जाने पहचाने रोज सुबह-शाम की दिनचर्या में गुंथे हुए थे। इनकी हर कहानी पूर्ववर्ती युग के नवजागरण के किसी न किसी प्रश्न का भावात्मक तर्क भी है और वैचारिक उत्तर भी। अंग्रेजी राज और हिन्दू- मुस्लिम विवाद संबंधी मुद्दों पर तो प्रेमचन्द नवजागरण की सोच का भी अतिक्रमण कर जाते हैं। इन कहानियों में वही चरित्र थे जो शताब्दियों से अपने अभाव, अपनी दरिद्रता को भाग्य का अभिशाप मानते हुए चुपचाप राम की, कृष्ण की, शिवाजी और राणा प्रताप की कहानियां श्रद्धा और विस्मय से सुना करते थे। उन्हें क्या पता कि आज इस आधुनिक युग की नवोन्मेष बेला में वे खुद साहित्य के केंद्र बनने जा रहे हैं। ठीक वैसे ही जैसे गांधी जी की राजनीति के केंद्र बन रहे थे।

बीसवीं सदी का तीसरा और चौथा दशक! यह दोनों दशक भारतीय राजनीति के इतिहास में अपने स्वतंत्रता संघर्ष के कारण तो विशेष रूप से उल्लेखनीय है ही, हिंदी साहित्य में भी उससे पासंग भर भी कम नहीं है। दो विश्वयुद्धों के बीच विकसित हुआ प्रेमचंद के सम्पूर्ण कथा लेखन ने पिछली सदी से शुरू हुए नवजागरण की समूची अंतरात्मा का सार ग्रहण करते

हुए उसे एक विराट कथा फलक पर मूर्तमान किया। नवजागरण के भीतर सामाजिक सुधार की जो धारा राजा राममोहन राय या जोतिबा फुले के माध्यम से प्रवाहित हो रही थी, उसमें उन्हें राजनीतिक संरक्षण के लिए अंग्रेजी राज्य का समर्थन लेना और करना पड़ रहा था। बंगाली नवजागरण की एक बड़ी ट्रेजडी तो यह भी थी कि उसमें मुस्लिम विरोध का स्वर भी प्रबल था लेकिन प्रेमचन्द औपनिवेशिक सत्ता की इस दुरभिसंधि को पहचान रहे थे। उनका समूचा कथा लेखन यथार्थवाद की विभिन्न मंजिलों को समझने की दृष्टि से तो महत्वपूर्ण है ही, बल्कि भारतीय ग्रामीण समाज की संरचना तथा उपनिवेशवाद विरोधी भारतीय जनता द्वारा चलाये जा रहे स्वतंत्रता संघर्ष के स्वरूप को जानने व समझने की उसमें अंतर्दृष्टि भी है। वे नवजागरण की सीमाओं के भी पार तक जाते हैं। भारतेंदु युग को आधुनिकता का प्रवेश द्वार कहा जाता है, लेकिन उस आधुनिकता की सर्वश्रेष्ठ परिणति हैं प्रेमचन्द। उनका साहित्य अपने समय का सर्वाधिक प्रामाणिक इतिहास भी है और समाजशास्त्र भी। इसीलिए उनका महत्व किसी भी समाजशास्त्री और इतिहासकार से बहुत ज्यादा बड़ा है। हो सकता है यह कुछ लोगों को अटपटा लगे लेकिन सच्चाई यही है कि बगैर प्रेमचंद को पढ़े औपनिवेशिक भारत की ग्रामीण संरचना, उसमें वर्गों का स्वरूप और भारत के स्वाधीनता संघर्ष को जानने-समझने की हर कोशिश लगभग आधी-अधूरी और खंडित होगी। उस युग की सामाजिक पृष्ठभूमि के आर्थिक, मनोवैज्ञानिक तहों को प्रेमचन्द से गुजरे बगैर समझ पाना असम्भवसा है। क्योंकि वहां ग्रामीण जीवन की दिनचर्या है।

वह आदर्शों का युग था। जीवन और समाज के लगभग हर स्तर पर आदर्श की प्रतिष्ठा थी। कार्यक्षेत्र की भिन्नता के बावजूद गांधी और प्रेमचन्द उस युग के सहोदर जैसे थे।दोनों की चिंताओं के केंद्र भारत के गांव थे। प्रेमचन्द के ही समकालीन लेखक थे श्री सुदर्शन। उनकी कहानी है "हार की जीत"। कहानी के केंद्र में इलाके का कुख्यात डाकू खड़गसिंह है। आप देखिए कि कैसे उस डाकू के जीवन में आदर्श गहरे बैठा हुआ है। प्रेमचन्द के प्रारंभिक लेखन में इन आदर्शों की नैतिक प्रतिष्ठा हर जगह दिखाई देती है।लाख अभाव और पीड़ा के बावजूद लोगों पर इन आदर्शों के मूल्यगत संस्कार प्रभावी और निर्णायक थे। गोदान का किसान "होरी" इसी को मरजाद कहता है। मनुष्य के पास अगर यह मरजाद ही नहीं है तो कुछ नहीं। इस मरजाद का स्रोत कृषि आधारित गांवों के संयुक्त परिवार के ही मूल्य, संस्कार और उनकी भीतरी मर्यादा थी। मुख्यतः कृषि संरचना पर आधारित ये गाँव भारत की पहचान थे। जिसे हम भारतीय संस्कृति कहते हैं उसके उत्स सामंती युग के नायक, उनके वैभव, उनकी विजय पताकाएं नहीं, बल्कि ग्रामीण जीवन के संयुक्त परिवार हैं। जरूरी नहीं कि इसमें सब कुछ ठीक-ठाक ही हो, स्त्रियों और दलितों के प्रति संयुक्त परिवारों का बर्ताव देख कर भारतीय संस्कृति में आप स्त्रियों और दलितों के "स्पेस" को भी आसानी से देख सकते हैं। लेकिन प्रेमचंद उसे ज्यों का त्यों स्वीकार नहीं कर सकते थे। उनके पात्र मानवीय गरिमा के आड़े आ रहे किसी भी तरह की परंपरा और सांस्कृतिक अवरोधों को निर्भय मुखाग्नि दे रहे थे।

साहूकारों के कर्ज में डूबे भारत के गांव शोषण की मार से टूट-उजड़ रहे हैं। लेकिन सिर्फ किसान इन्हीं वजहों से नहीं, उनके भीतर बैठी हुई ग्रामीण जीवन की जड़ता भी उन्हें रोज-रोज तोड़ रही है। गांव बदहाल हो रहे हैं। इस संबंध में मैं प्रेमचन्द की लगभग कम चर्चित कहानी "मुक्तिमार्ग" का जिक्र जरूर करना चाहूंगा।

"मुक्तिमार्ग" प्रेमचंद की एक ऐसी कहानी है जिसमें बहुत ज्यादा सहज ढंग से गांव का यथार्थ, वह यथार्थ जिसका गवाह हमारी पीढ़ी का बचपन रहा है, दिखाई देता है। कहानी में कुल तीन चरित्र हैं, जिनमें मुख्यतः दो चरित्र ही हैं। एक झींगुर महतो और दूसरा बुद्धू गड़ेरिया। ये दोनों चरित्र ग्रामीण संरचना में मध्यम जातियों से उठाये गए हैं।

गांव की परंपरागत संरचना में मध्यम जाति से सम्बंधित होने के बावजूद आजादी के बाद महतो, यानी कुर्मी या पटेल मध्यम जाति के समृद्ध बल्कि प्रभावशाली श्रेणी में आते हैं। गोदान का होरी भी महतो ही है। बुद्धू गड़रिया जिस जाति समुदाय से सम्बंधित है, वह आजादी के बाद अपने परंपरागत पेशे से उजड़ गयी है। यह गड़रिया जाति यादवों की तरह कोई प्रभावी सामाजिक भूमिका हासिल नहीं कर सकी है।

"मुक्तिमार्ग" कहानी अपनी भाषिक संरचना और शिल्प विन्यास की दृष्टि से भी बेहद सधी और गठी हुई कहानी है। सहज और सधे अंदाज में एक चित्रात्मक वितान के साथ शुरू होती है। इस तरह की अलंकारिक भाषा आमतौर पर प्रेमचन्द कम लिखते हैं। किसान की सम्पन्न प्रसन्नता का चित्रण- "सिपाही को अपनी लाल पगड़ी पर, सुंदरी को अपने गहनों पर और वैद्य को अपने सामने बैठे हुए रोगियों पर जो घमण्ड होता है, वही किसान को अपने खेतों को लहलहाते हुए देख कर होता है।"

यहीं से झींगुर और बुद्धू की कहानी "मुक्तिमार्ग" शुरू होती है। धन का, जाति का और शक्ति का अहंकार किसान के जीवन में तबाही बन जाता है।

तीन बीघे ऊख की लहलहाती फसलों के नशीले सपनों और घमण्ड में जिस समय झींगुर डूबा हुआ था, तभी उसका सामना बारह कोड़ी भेड़ों के मालिक बुद्धू से हो जाता है। बुद्धू भी अपनी सम्पन्नता के अहंकार में डूबा था। बुद्धू का अहंकार उसकी आपराधिक प्रवृत्ति के कारण और भी उद्दंड है- "सारी दुनिया में चार रुपये के कम्बल बिकते हैं, पर यह पांच रुपये से नीचे बात नहीं करता।"

उसी गांव में हरिहर चमार है। प्रेमचंद लिखते हैं- "यह चमारों का मुखिया बडा दुष्ट आदमी था । सब किसान इससे थरथर कांपते थे।"

कहानी की पृष्ठभूमि में गांव है । भारत का औपनिवेशिक गांव, जो लगातार टूट बिखर कर विपन्न होता जा रहा है। छोटी जोत के किसान दिन ब दिन उजड़ कर मजदूर होते जा रहे हैं। मजदूर दिन भर मजदूरी करके रात को चैन से अपने घर परिवार के साथ रहते हैं। इस मायने में किसान की दशा उन मजदूरों से गयी बीती है, क्योंकि वह अपने खेतों में मजदूरों की तरह श्रम तो करता ही है, ऊपर से निजी पूंजी के मोह में उसे पल-पल उस खेत के साथ लगे रहना पड़ता है। पूरे-पूरे दिन और रात को भी। तब भी वह लगातार बर्बाद होता जा रहा है। इसी मायने में किसान की जीवन समस्याएं मजदूरों से कई गुना ज्यादा होती है। इसी दृष्टिकोण से "पूस की रात" कहानी भी लिखी गई है। "गोदान" उपन्यास में भी किसान का टूट कर मजदूर बनते जाना एक मुख्य त्रासदी है। छोटी जोत का होरी उपन्यास की शुरुआत में एक किसान होता है । जीवन संग्राम में हारता हुआ वह उपन्यास के अंत में एक मजदूर की त्रासदी का शिकार होता है। गोदान में शोषकों- दातादीन, मातादीन, सहुवाइन से लेकर रायसाहब तक के जो नाना रूप फैले हुए हैं, वही सब "पूस की रात" कहानी में नीलगायों की शक्ल में हल्कू का खेत चर जाते हैं। हल्कू किसानी के जंजाल से मुक्त होकर मजदूर होने के मार्ग पर चलना स्वीकार करता है । किसानों का टूट कर अनवरत मजदूर बनना, सामाजिक और ऐतिहासिक मुक्तिमार्ग है। यह मार्ग चाहे जितना त्रासद और कारुणिक हो लेकिन उसकी अंतिम ऐतिहासिक और सामाजिक परिणति यही है।

"मुक्तिमार्ग" कहानी में प्रेमचंद ने प्रत्यक्षतः किसी औपनिवेशिक शोषणतंत्र को किसानों की बदहाली का कारण नहीं बनाया है। कहने को कहा जा सकता है कि बुद्धू को जिस तरह गोहत्या में फंसाकर घेरा जाता है, उसमें सामंती ब्राह्मणवादी व्यवस्था का दुष्चक्र है । लेकिन यह कत्तई पूरा सच नहीं होगा । झींगुर और बुद्धू जड़ गंवई अहंकार के चलते अपने विनाश और बर्बादी के घोषणापत्र पर स्वेच्छया हस्ताक्षर करते हैं । आज गांवों के पतन के पीछे बेवजह की ढेर सारी मुकदमेंबाजी भी एक बड़ा कारण है, जिसकी जड़ें भारतीय ग्रामीण संरचना की चिर परिचित जड़ता है।

इस छोटी कहानी के निहितार्थ ज्यादा दूर तक दिखाई देते हैं। आज गांवों में बढ़ रही आपराधिक प्रवृत्तियों ने गांव की शक्ल सूरत एकदम से बदल दी है। हमारे बचपन के गांव अब अपराधों के दलदल बनते जा रहे हैं । पंचायती चुनावों के माध्यम से लोकतंत्र को गांवों तक ले जाने की इस पूरी प्रक्रिया ने गांवों को रक्तरंजित कर डाला है। इसका समाजशास्त्रीय अध्ययन करने में प्रेमचंद की ये कहानियां ज्यादा कारगर साबित होती हैं।

एक और बात है जिसकी ओर मैं इशारा करना चाहता हूँ। डॉ. धर्मवीर ने प्रेमचन्द की कुछ सीमाओं को बताते हुए "सामंत का मुंशी: प्रेमचंद" आलोचना की पुस्तक लिखी है, वैसे तो उसका आधार "कफ़न" कहानी है। प्रेमचंद को लेकर उनकी मुख्य आपत्ति इस बात पर है कि कहानी के दोनों लंपट चरित्र जाति के चमार क्यों हैं, जबकि अमानवीकरण की प्रक्रिया सवर्णो में ज्यादा होती है। ऐसा करने के पीछे प्रेमचन्द पर दलित विरोधी संस्कारों का कुप्रभाव है। "मुक्तिमार्ग" कहानी में हरिहर नामक जो चमार जाति का चरित्र दुष्ट के रूप में गढ़ा गया है, उसे देखते हुए डॉ. धर्मवीर की बात काफी हद तक पुष्ट होती जान पड़ती है। बावजूद इन छोटी मोटी आपत्तियों के सचाई यह है कि बाद के दौर में पैदा होने वाली कथाकारों की एक भरी-पूरी पीढ़ी ने प्रेमचन्द से कहानी का ककहरा सीखा है । उनकी कहानियों में हमारे बचपन का गांव ज्यादा प्रामाणिक दिखाई देता है।

इतिहास में पात्र सच होते हैं, लेकिन उनके बारे में जो कहा और सुनाया जाता है अक्सर बेसिर पैर वाला झूठ का पुलिंदा होता है । इसकी तुलना में कहानियों में पात्र भले अस्तित्व विहीन और झूठे होते हैं, लेकिन उनका जीवन सच होता है। इतिहास की किताबों में गांधी या सुभाष अकेले पात्र होते हैं। कोई दूसरा नहीं होता । लेकिन होरी धनिया हर जगह मौजूद मिलते हैं। उनका जीवन एक व्यक्ति का जीवन भर नहीं होता है उसमें पूरे युग और समाज का जीवित यथार्थ होता है । प्रेमचन्द इसी यथार्थ के कथाकार थे।

फिर तेरा फसाना याद आया

महेश कटारे

महेश कटारे हिन्दी के वरिष्ठ कथाकार हैं।

लिखना जरूर है और समझ नहीं आ रहा कि क्या लिखूँ? सोचते सोचते ध्यान में आया कि क्यों न प्यार पर लिख डालूँ। सदियों से लिखा जा रहा है। कबीर ने भी कहा है कि- 'ढाई आखर प्रेम का पढ़े हो पंडित होय'। मैं पंडित होना नहीं चाहता क्योंकि इन दिनों पंडित होना हर ओर से धिक्कार का शिकार होना है । प्रेम पर एक लंबा, असमाप्त जैसा निबंध लिखा जा सकता है अगर प्यार या मुहब्बत वांछित मुकाम तक पहुँची हो। कबीर ने अपनी तरह से 'प्रेम रस' चखा था.... बिना नारी का आश्रय लिए। क्योंकि नारी उनके तईं माया थी, और गाया महादगिनी से लेकर जाने क्या-क्या होती है । जो हो, विस्तार में न जाते हुए मैं प्यार विषयक अनुभव की कहानी लिखने की कोशिश कर रहा है।

एक अनुभव तो यह कि मेरे परिवार में फिल्मी वा किताबी प्यार की कोई परंपरा नहीं रही। परिवार क्या पूरे इनाके में नहीं रही । हमारे यहाँ संबंधों का लगाव था। सेबेध. के हिसाब से प्यार उर्फ बगाव की मात्रा में घर-बद भी होती रहती। हमारे यहाँ पति-पत्नी का प्यार भी विवाह के बाद धीरे-धीरे विकसित होगा होकर उम्र के साथ-साथ, प्रौढ़ होता रहा है तभी तो इस सोध्य बेला की सीमा में प्रवेश कर मैं अपने खण्ड-खण्ड प्रेम वा लगान का लेखा-जोखा लगाते बैढ़ गया है। खण्ड खण्ड इसलिए कि मेरे इलाके या बाहर में जन्मे प्रसिद्ध शायर विदा फाअनी साहब का एक प्रसिद्ध शेर है – 'कभी किसी को मुकम्मल जहाँ नहीं मिलता, कहीं अभी तो कभी आसभी नहीं मिलता'

बहरहाल कहानी कुछ इस तरह शुरू होती है कि बहुत दिनों तक या कहा जाये कि एक उम्र तक परिस्थियों ने अपने बारे में कुछ सोचने का अवसर ही नहीं दिया और ज जब सोचने योग्य हुआ अथवा ज्यौ त्यों कर सोचने लगा तब स्वयं को ऐसे लोगों की संगत में कमा जो स्वयं की बजाए आसपास की दुनियाँ के बारे में

सोचने को उकसाते थे। मेंरी दुनियाँ भी कोई बहुत बड़ी नहीं थी. बस गाँव, घर, परिवार, रिश्तेदार- उदर भरे का धर्म, रिवाज एवं ज्ञान के श्रोत रामचरितमानस, हिन्दी अनुवाद सहित शीता, आन्ह-रखण्ड, सननसिंह चौहान का दोहा चौपाई कृत महाभारत, सुखसागर जैसी कुछ अन्य कृतियों के अलावा पाठ्यक्रम की पुस्तकें। मैने वो 'महाभारत' भी देखा न पदा था जिसमें लिखा है- प्रदेहा श्री तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत कचित् अर्थात् इसमें जो है वही अन्यत्र है, जो यहाँ नहीं वह कहीं नहीं है। इसी संगत मैं यह सीख रचत: मिळ जाती कि अपने बारे में किसी बड़प्पन का कोई भ्रम मा पालो - विशेषत: अपने लेखन के विषय में दु निया की तो छोड़ो भारत में ही हिन्दी के भी उतने बड़े-बड़े कवि, कथाकार हो चुके हैं कि उनकी ऊँचाई तक देखने में सिर में टेकि गिरयाना तथा लेखबर ही समय में महिला के, तो में जाते हैं। मैं भी मेरे पास यम पालने जैसा था भी जा मानव ही बौद्धिकता। परिवार भी कोई श्री मान ही मेल ज्ञातवती जाति में न था। उतना अतारा यानि किसी से दबने की परम श्री मांगने की । गाँव तथा आपणास के नाही / सेबा पर भी जाते थे। मो जाये तथा तीन पैसे इस प्रकार पिता शीर्ष पर थे तो बड़े-बड़े और दिखाने से विवा होते थे। इनमें मैं भी दो विचर में महावत में 'आगे नाथ न पीछे पगढा'- यमर में श्री हो जाये के परिवार को कोई उत्तोरनीय होत होते हो रही। मेरी काकियों के दिनंगत होने के बाद से शैवों (चाचा) बेला पिलाई गाहियाँ साथ रखते थे। मर मात्र के अनुसार दो जेदहें भी थीं घर में - एक बारूद वाली पमाळेश्वर, दूसरी श्रीनर दना । बेक की भाफी प्रतिष्ठा थी। किसी बड़े जींदार ने एक बार आमा-उनक: चुनैती कर दी थी तो एक कारका श्रीनर दुनामी लेकर फ़रार हो गए । हमारे सेन में कार के सोने चले जाना, भाग जाना नहीं बल्कि दस्यु गिरोह में शामिल हो जाने को जाता था। प्रवनि का प्रताप ऐसा था कि उससे बड़े एवं धन तथा रसूरन संपन्न लोग घुटने के बल सामने जा बैठते।

> उन दिनों मोबाइल नहीं होते थे। उसके भाई के शो ऊम पर कैण्डलाइन फोन अवश्य था। जल्दी-जल्दी पैडन भारता मैं उसके घर तक आया। द्वार बंद था। अकबकाया था मैं घर से कुछ दूर द्वार पर दृष्टि लगाए रखड़ा रहा। फिर तो बौनाही था। बाद के दिन बड़ी बेचैनी और सूनेपन हो अरे रहे । विवाह के पश्चात वह पति के साथ कहीं बाहर चली गई। मैं अपने घर गिरी की दीवारें थामने में लग गया पर उसे मुळात पा रहा था।

पहले के लिए शहर में आ जाने पर ये प्रताप काम नहीं आता था। कक्षा नौ में तेरे नहीं सहपाटी सालों तक गाँव का गंवार मानते रहे। तो आत्मभ्रम की सरहद तक पहुँचाने वाला कोई विला सूत्र मेरे हाथ में नहीं था। पिता जी अपने पैतृक गाँव से अपनी सराव याने मेरे ननिहाल में आ गए। यहाँ मुझे एक लड़की अच्छी लगको लगी। उसकी माँ को मैं मामी कहता था। माँ के साथ था अको भी दिन में एक दो बार उसका हमारे बार आता जाता होता । सांवळा रंग तीखे और नाकनक्श-और इकहरी थोड़ी लंबी देहू-1 बेशक बड़ी-बड़ी आँखों के ऊपर कमान सी मौंटें। हँसने पर मोती से दाँत उपाय करने लगते। दूसरी जाति से थी और हमारे माता-पिता की दृष्टि में गाँव के रिश्ते से हम दोनों भाई बहन ठहरते थे। वह थोड़ी समझदार हुई तो 'दादा' कहते ही जगह उसने मेरा नाम लेना शुरू कर दिया था.! औरों के सामने 'ए' 'के' से काम चलती। हम दोनों का विवाह एक ही बरस हुआ। कुछ बरसों बाद गौना हुआ तब वह बोलह की थी और मैं नगरह का। अती और पढ़ाई में व्यस्त हो जाने के बावजूद वह मेंरी स्मृतियों में जा रहल जाती। अल्दी-जल्दी दो बच्चों की माँ बनने तक वह जब भी अति मायके तो मेंरी पत्नी के पास घरों बैठी रहती- काम में हाथ बटाती । मैं प्राय: शनिवार को गाँव पहुँचकर सोमवार को लौटता। वह मेरे लिए ही सब्जी लेकर आती, कारती दीखती। पत्नी उसे दौंकती भर थी। पनी शायद सुरु भाँपने लगी थी। यों तो पत्नी अनपढ़ हैं किन्तु औरत में मेरे छठी इंदिय होता है जो किसी के परसार आमीन को पहचान कर जाग उठती है। जैसे दस लाने तब, उन्हें मेंरी एक निराहता पर भरोसा रहा है। मेरी भी परस्परता में दैहिक संबंधों की उत्सकाशं रही हो पर अफीक्षा, पतन और अनुरक्ति कभी नहीं रही । इस संदर्भ में मुझे आधुनिकता ने डगमगाया अवश्य है पर आस्तिकता ने बचाया भी है। एक और प्रेमाकर्षण मुझे उपलब्ध हुआ, वह भी तब जब मैं पिता बन गया था।

हुआ यूँ कि समय के अंगोरों, संसावत में मेरी पढ़ाई छूट गई..., उसी पढ़ाई को पूरी करने मैं एक नई संस्था में वर्ष भर के लिए पहुँचा कि डिग्री पाकर रोजगार की राह आसान करूँ। विशेष साकर्षण जैसा अब भी मुझमें कुछ नहीं था । यूँ अनाकर्षक भी कभी नहीं रहा। बस पढ़ने का शौक अवश्य जाग गया था इसलिए लोकप्रिय उपन्यासों का नियमित पाठक। नोटबुक पर उसी तर्ज के कुछ उपन्यास लिखने का अभ्यास भी किया जो दस बीस पृष्ठों तक रेंगे, चके भी और घटकर रह गए। कवि-सम्मेलनों की देखा देखी गीत भी गढ़ने लगा। सुना भी

देता था। वह भी कविता आदि में रुचि रखती थी। कॉकेस या संस्था की सुंदर लडिदियों में से एक वह उम्र में मुझसे सात आठ वर्ष छोटी थी। शहर के सुसंस्कृत पारित ब्राह्मण परिवार में जन्मी । परिचय हुआ; मैत्री बढ़ी। बसेका में हमारा समय साथ-साथ बीतता । वह मुझे टेबिल टेनिस सिखाने लगी। मैं सीरन भी गया । परखवारे में एक बार अथवा छुट्टी के दिनों में मैं अब भी सायकल वे गाँव आबा था। सरतेम से वह मेरा ब्राह्मण होता जान गई थी। ग्वालियर, भिण्ड, मुरैना, शिवपुरी आदि जिलों से आये छात्र यहाँ तक कि अध्यापक गण भी जानते थे। उसे मेरे विवाहित होते. का पता नहीं था। मेरी कदकाठी में शायद उम्र भी छिप जाती रही होगी। दो बार मुझे वह अपने घर के गई। दूसरी बार उसकी मां ने मुझे अतिरिक्त स्नेह दिया था। ब्राह्मण होने के बावजूद हमारे पूर्वजों के कबीले अलग-अलग थे पर कदाचित उसकी दृष्टि में इससे कोई अंतर नहीं पड़ता था। कालेज में किसी की निगाहों, कूट मुस्कानों की वह परवाह नहीं करती थी.. मैने एक दो बार उसे चेताने का प्रयास भी किया था पर शायद उसे लगता था कि कुछ गलत नहीं कर रही तो इयार-उधर वालों की परवाह क्यों करे? संस्थाओं के राज्य - साशय कीड़ा एवं सांस्कृतिक सम्मेलन में हमारा दल भी गया था। चार दिन का आयोजन था, हमने प्राचार्य महोदय से निवेदन कर अपने रखवाले तीन दिन और गौग किये कि उधर के दर्शनीय स्थल घूम लेंगे । संस्कृतिक प्रति में मेरी प्रमुख भूमिका थी। नाटक, नृत्य, गीत, वाद-विवाद आदि पर मैं ही राम रखा। प्रदेश -भर में सबसे अच्छे, सो प्रदर्श नहीं श्री हमारी संस्था को मिली। वहाँ हम पहली बार गले मिले। गुपचुप नहीं, साथ के सहपाठियों और प्राध्यापक के सामने । घूमने फिरने के सात दिन जीवन की अमूल्य धरोहर हैं। बाद में मैंने पत्नी के साथ चारों धाम की यात्रा की दो किश्तों में छेद महीने से भी अधिक दिनों तक पर तब तक उमंग और जावेग बहुत दीज चुका था। यूँकी धार्मिक यात्रा में आनंद का रस्म अदायगी ही अधिक होती है।

> वह निश्चय ही पचपन और साद के बीच जा पहुँची होगी किन्तु चेहरे पर ताजगी. थी और लग रहा था कि लावण्य में भी कमी नहीं अति है। इच्छा जागती कि एक बार गो से फिर लगाऊँ पर एक तो वहाँ इतना एकाला न था, दूसरे अपनी इच्छाओं को दबाने खमुझे बचपन से ही अभ्यास है। नारक समादर होते से पहले ही श्री भारद्वाज जा गए अपनी पत्नी के होते। उन्होंने मुझे पार जाने को कहा मैने उन्हें । इस प्रकार एक दूसरे से औपचारिक विदा गी ।

परीक्षा समाप्त होने के दो दिन बाद, हम सभी काल सहभोज पर एकक्रित हुए। सब चहको अनार दिख रहे थे किया भीतर यहीं उदासी भी थी। एक कब पाँच बजे कॉफी हाऊस आना। उसने कहा था। भेने सिर हिलाकर गमी गरी। वह शाम मेरे मनस्वरन पर ज्यों की त्यों अंकित है। वह गमिष्या के बारे में कुछ जननायक कहना चाहती थी। मैं उसे कुछ बताना चाहता था। वह कोई नौकरी पाकर आत्मतिसरे होना चाहती थी, चिंता यह कि, जाने कहाँ जाना पड़े। मैं ऐसी नौकरी चाहता कि घर के आसपास बना रहूँ ताकि माँ, भाइयों, बहनों परिवार के साथ खेती की देखभाल होती रहे। इसी दाम में उसे विवहित एवं एक पुत्र का पिता होते की सूचना या जानकारी भी दी।

उसने कहा- "ये मजाक भी बढ़िया है। तुम्हें भी बताऊँ कि मेरी भी बड़ाई हो चुकी है । सगळी किसी साइत में ब्याह होगा। कार्ड दूँगी पत्नी के साथ जरूर ही आता ।' वह इतनी जोर से खिलाखलाई कि दूसरी टेबकों पर बैठे लोग चौककर हमें देखने लगे। वह ऐसी ही बिंदास थी। मैने बताया न कि वह दधार-उपार वालों की परवाह नहीं करती थी । काफी हाऊस से निकलकर उसके घर तक कोई एक कि.मी. दू हम साथ-साथ पैदल आते थे। उसे भारतक छोड़कर मैं अपनी सायकल पर सवार हो होला :- वहाँ से 200 करह कि० मी० दू अपने आश्रय तक पहुँचने के लिए) चलते चलते मैने कहा- 'विश्वास करो! मैं सचमुच विवाहित हूँ। हम लोग गहरे मित्र ही हो सकते 'हैं, इससे अधिक कैसे..

वह कहरी- 'अच्छा मेरी कसम खाकर कहो/कसम- ...: ये अथ है। मैं झूठ नहीं बोल रहा ।'

कुछ क्षण वह वह मेरे मुळे हुए चेहरे की जोर पूछी रही । मैं उससे बाँख नहीं मिला पा रहा होऊँगा। एकाएक उसने बगल से गुजरता औरो रोका और बैठकर चली गई। मैं आवाजें देता रहा पर उसने अनसुनी कर दी।

उन दिनों मोबाइल नहीं होते थे। उसके भाई के शो रूम पर कैण्डलाइन फोन अवश्य था। जल्दी-जल्दी पैडन भारता मैं उसके घर तक आया। द्वार बंद था। अकबकाया था मैं घर से कुछ दू द्वार पर दृष्टि लगाए रखड़ा रहा । फिर तो बौनाही था। बाद के दिन बड़ी बेचैनी और सूनेपन हो अरे रहे। विवाह के पश्चात वह पति के साथ कहीं बाहर चली गई। मैं अपने घर गिरी की दीवारें थामने में लग गया पर उसे मुळात पा रहा था। कोई

अपराध बोध न होने की आववारी बेराह मेरे साथ भी क्योंकि हमने मर्यादा की लक्ष्मण रेखा नहीं बांधी थी । बात में नहीं कि दैहिक उत्सुकता से पर हम किसी दैवीय कोक के प्राणि थे । हमने बस उस सामाजिक परंपरा का निर्वाह भर किया था जो किसी भी मनुष्य के लिए संभव है। मुझसे रुष्ट और दुखी होकर वह उस दिन भले गई हो पर कहीं कामि ठोकर नहीं गई थी। वैसे भी उसका कोई नायवी अस्तित्व मेरे पास ठहर कर रह गया था। वर्षो पश्चात् हमारी अनपेक्षित मुलाकात हो गई।- एक चिकतिक स्पॉट पर। खुद तौखक, रंगकर्मी, शायक, वादक गोठ करने गए हुए थे। गोठ गदा चित्र गोष्ठी का ही एक रखा है जिसमें खानपान के साथ सोहबत, संगत का भाव भी जुड़ा है। यह प्राय: आषाढ़ वा श्रावण मास का उपक्रम है जब दो तिगत बार पानी गिरने के बाद उधार- (पानी न बरसते) के दिन हों। मित्र मण्डलियों एवम् परिवारों को साथ लेकर गोठ का खालियर में खूब प्रचलन रहा है। अहारीं यति में निर्मित सीढ़ियों, बारादरियों, छज्जों, छतरियों से सृज्जित चौकय: तालाब के किनारे की पानी अमराई में स्थान-स्थान पर अँगी दियाँ दहक रही थीं ईंट पत्थर जोड़कर बनाए चुल्हे सुलग रहे थे। दाल बाटी चूरमा गोठ की सर्वमान्य, दिवा है जो पत्तल पर परोसे जाने में ही मजा देती है। दोपहर से पहले पकौड़ियाँ उतारी जाती हैं। गोई-कोई बेसन में भांग का चूरा भी मिला लेते हैं। हम लोग प्रकाश दीक्षित (खावियर के साहित्य, बोस्कृतिक जगत का कनिष्ठिकाधिष्ठित नाम) के साथ... किसी मुद्दे पर बहस या चिंता में उनसे थे कि एक ओर से दो युवतीनुमा महिलाऐं - आती दिखीं। एक की चालढाल उस जैसी प्रतीत हुई। लगा कहीं ये वो तो नहीं ? - हाँ वही थी। भीतर जैसे खुशबू भरी बयार सी बह चली /- 'अरे तुम...खड़े हो मैने कहा।

वह रखड़ी हो गई। वह भी चौंकी थी शायद। तटस्थ आज से बोली- 'हो मैं। और सुनो! मैं नहीं, अब...भारद्वाज हूँ।' इतना बताकर उसने प्रकाश दीक्षित को नमस्कार किया और सँगिती के साथ आगे बढ़ गई। मैं अचकचा खड़ा रहा। प्रकाश दीक्षित ने पूछा- 'महेश ! ये महिला कौन है ?' 'मेरी क्लास फैकी रही है। अमुक परिवार से है। बताया मैते। प्रमाश उस परिवार से परिचित थे। मेरा मन बहस से उत्तर गया किंतु शामिल तो रहना ही था। 'समय जात नहिं नागहि बारा।'- हमारे सामने नई पीढ़ी जवान हो यर खड़ा हुई और हम बुढ़ापे के पाले में जा पहुँचे। वह एक भव्य सरकारी आयोजन था जिसके एक सत्र में अध्यक्ष मण्डल थे, सदस्य घि भूमिका पर मुझे किया गया। वस्तुत: इस-. आयोजन के सूत्र मेरे एक अधिकारी मित्र के पास थे। महिला केन्द्रित उस गायिक्रम में प्राय: सभी वच्ण, प्रवक्ता कलाकार शहर से बाहर के थे। बाहर के एक आमंत्रित अतिथि आ न पाए थे। अधिकारी मित्र का आग्रह था कि उस रिक्त स्थान को मैं भर दूँ। नदी हुई उम्र का एक प्रभाव यह भी होता है कि. आपको वह आदरशिय बनाकर अध्यक्षता, मुख्य अतिथि, विशेष प्रतिष्थि जैसों की श्रेणी में के आती है। दिनी तैयारी के मैं मैच से आग यांग सांग जाने क्या- क्या बोल गया कि श्रोताओं को बहुत पसंद आया। संयोग की बात है। हो सकता है कि गंभीर अनिरत, वक्तव्य सुन-सुनकर ऊबे श्रोताओं को मेरे अगंगीर वक्तव्य से कुछ राहत महसूस हुई हो। जो हो, सन समाप्ति के उपरांत अपने वक्तव्य पर प्रशंसा व यथोचित अभिवादन स्वीकार करता मैं हॉक से निकल रहा था कि उसे सामने चुराते खडे पाया। नगा जैसे मेरे अनेक, प्रिय पात्र पृष्ठों से निकलकर एक रूप हो सामने आ गए हों। मेरे अनेक पात्रों में उसकी छवि के अंश हैं। एक बार पुन: कोई तरंग जैसी मुझे सिर से पांव तक नहळा गई। वही तो थी सचमुच, उम्र उस पर बहुत कम असर डाल पाई थी। उतना ही प्रसन्न मुख आँखों में वैसी ही अनुरति किंचित भराव के साथ वही देहयष्टि वही साकारता जो तीस तीस वर्ष पहले थी। बगल में खड़ा एक पौने छहफुटरा भद्रपुरुष मुस्कुराता हुआ हमें देख रहा था।

ये हैं श्री...भारद्वाज। समझ गए? 'हाँ, अब जान गया भारद्वाज की ओर हाथ बढ़ा मैने परिचय दिया ! मैं महेश।

जी, जानता हूँ आपको। घर पर आपकी दो किताबें हैं। आप कच्चास फैलो है।

इतके बेस्ट फ्रेंड- है ना!

हम तीनों बाहर प्रण्डप कस के एक कोने में जा खड़े हुए। कुछ औपचारिक 'आइये! सड़क के उस पार की बिल्डिंग में 'काफी टाइम' नाम बातें आरंभ हुई- से कॉफी शॉप है, कॉफी पीते हैं। मैने श्री भारद्वाज से कहा काँग की आदत मुझे नहीं इन्हें है। दरअसल आपका कार्यक्रम बिर्लन से समाप्त हुआ। मुझे दो बजे एक जगह मिलता है, केट हो गया। तीन बजे से काला कार्यक्रम है ना! मैं काम निपटाकर आता हूँ - कॉफी आप लोग पीजिए।' पीते हुए उधर से चले जाता। अगले सत्र में इन- इतका वक्तव्य है- उसने बैय से कार्ड निकाल कर नाम पढ़े। भई, ये सब तुम्हीं सेको। अपने लिए इतनी खुरांक बहुत है। हाँ सर के साथ कॉफी किए लेते हैं।' - भारद्वाज ने स्पष्ट किया। कॉफी में साथ देकर श्री भारद्वाज अपने काम से चले गए। -- वहाँ से हम साथ हुए. दोपहर का भोजन, अगळा सन, छोटा सा नाटक इस बीच घर परिवार से दुनिया जहान की बातें उसकी वही मूक हैसी कि मैं ही इधर-उधर देखने लगता हमने बीते दिनों और

कॉलेज के परिचितों के स्मरण किया। एक दूसरे के घर का पता तथा मोबार नंबर- नोट लिये।

वह निश्चय ही पचपन और साद के बीच जा पहुँची होगी किन्तु चेहरे पर ताजगी. थी और लग रहा था कि लावण्य में भी कमी नहीं अति है। इच्छा जागती कि एक बार गो से फिर लगाऊँ पर एक तो वहाँ इतना एकाला न था, दूसरे अपनी इच्छाओं को दबाने खमुझे बचपन से ही अभ्यास है। नारक समादर होते से पहले ही श्री भारद्वाज जा गए अपनी पत्नी के होते। उन्होंने मुझे पार जाने को कहा मैने उन्हें। इस प्रकार एक दूसरे से औपचारिक विदा ली।

यहाँ भी एक पत्रकार मित्र ने जानना चाहा था- 'ये मोहतरमा कौन थीं आपके साथ? परिचित है, साथ-साथ पढ़े हैं हम। मैंने बताया।' हो, तभी आपके चेहरे पर इतनी सैनक है। - वह धीमें से ऐसा था। मैं अगले दिन उसके आने की प्रतीक्षा में था, पर वो नहीं आई। न आने की वजह मैं।

उससे मोबाइल फोन पर पूछ सकता था। अथवा वह भी बता सकती थी किन्तु न उसने पहल की न मैने। उस संयोग के पश्चात नरसों बीत गएन न बात हुई न मुलाकात। मन में जरूर कोई इच्छा की बनी रहती है कि शायद कहीं वह मिल जाए। अबान मिळी तो वह भी नहीं जो मेरा पहला आकर्षण थी। जो किशोरी से युवती एवं सुनती से. दो बच्चों की माँ बनने के बाद मेरी पत्नी के बहाने मुझसे मिळते आती रही थी। उसके माता-पिता व भाई अपना खेत बेचकर रोजगार की तलाश में कहीं और जा बसे थे।

सांसारिक सुख-भोग के लिहाज से मेरे लिए कोई कमी नहीं रही है। मेरे गाँव, बड़े के लोग, नाते-रिश्तेदार अब मुझे सुखी, संपन्न भाग्यशाली तक मानते हैं फिर भी कुछ लिखने, सोचने के लिए जोड़ बाकी करते बैठता हूँ तब नतर्ज फैज अहमद फैज़ होता यह है कि कर रहा था गमें जहाँ का हिसाब, आज तुम बेहिसाब याद आए। आप जानते हों कि मैं कहानियाँ गढ़ना हूँ। ये कहानी कैसी लगी ? बताइयेगा....।

एकांत

सुष्मिता बारीक

सुष्मिता बारीक हिन्दी विभाग, गुरु घासीदास विश्वविद्यालय, बिलासपुर में बी.ए. अंतिम वर्ष की छात्रा है।

उन दिनों की बात है जब मैं विश्वविद्यालय में बी.ए. की पढ़ाई कर रही थी। घर की आर्थिक स्थिति थोड़ी कमजोर होने के कारण कॉलेज पढ़ने के साथ-साथ ट्यूशन पढ़ाती थी, इसमें घर के आस-पास मोहल्ले के छोटे-छोटे बच्चे आया करते थे। सभी बच्चो की उम्र लगभग 5-6 साल तक की ही होगी। उन बच्चों को पढ़ाने के साथ-साथ अक्सर उनके साथ मस्ती मज़ाक शरारते होती रहती थी।

मानों मैं खुद ही बच्ची बन जाती थी। हर दिन की तरह आज भी शाम के 5 बज गए थे। एक-एक करके सारे बच्चे आने लगे। आज पिंटू अपनी मम्मी के साथ आया, वे मुझे आवाज लगाती हैं, मैंने कहा बोलिए कैसे आना हुआ, बोलती है कि "हमारे घर के बगल में जो नीले रंग का किराया वाला मकान है न वहां एक नए परिवार आया है, वो अपने बच्चे के लिए ट्यूशन ढूंढ रहे है मैंने तेरा नाम बताया है, अच्छा तो फिर जाके मिल आना।" मैंने धीरे से बोला "जी ठीक हैं। अगले दिन कॉलेज से आते समय याद आया की एक बच्चे के घर जाना था। फिर समय मिलेगा या नहीं जाके मिल आती हूं।

यही है वो नीले रंग का मकान मैं दरवाजे पे पहुंचकर मैंने दरवाजा खटखटाया, कुछ समय बाद एक बुजुर्ग महिला निकलती हैं उन्होंने कहा कौन मैंने कहा "नमस्ते दादी जी। मैं ट्यूशन पढ़ाती हूं। मुझे शारदा आंटी जी ने आपसे मिलने को कहा था।" "अच्छा" हां बेटा हमने उन्हें पूछा था। ट्यूशन भेजने के बारे में उन्होंने आपका नाम बताया। आओ अंदर आओ। वो पहली 6 साल का है और 1 कक्षा में पढ़ रहा है, मुझे बहुत परेशान करता हैं लेकिन "मेरे गले का हार है मेरा बच्चा" उनकी बातों से ऐसा लग रहा था कि वो बच्चे से बहुत प्यार करती हैं, अंदर से एक और महिला निकली। मैंने सोचा वह बच्चे की मां हैं। मैंने उन्हें नमस्ते किया। उन्होंने कहा "बहुत परेशान करता है।" मेरे से पढ़ता ही नहीं हैं। एक तो डरा के

ज्यादा चिल्ला के या थोड़ा मार के भी नहीं पढ़ा सकती। मैंने कहां क्यों आपका बच्चा हैं प्यार के साथ-साथ थोड़ा सख्ती दिखानी चाहिए।

उन्होंने कहा नहीं, नहीं। मैं उसकी चाची हूं, "ये मेरा बच्चा नहीं हैं", मैं आश्चर्यचकित हो गई।

मैंने धीमें स्वर में पूछा, तो फिर ? दादी जी ने कहा इसकी मां इसे छोड़कर चली गई जब वो 3 साल का था। दोनों पति-पत्नी के बीच लड़ाई हुआ। और वो चली गई। इस बच्चे को छोड़ के और इसके पापा फैक्ट्री में काम करते हैं। उसका काम में ही आधा दिन निकल जाता हैं, फिर बच्चे का ख्याल कब रखेगा। मेरे छोटे बेटे की नौकरी यहां हैं और बहु भी यही रहती हैं और वो पेट से हैं ,तो उसका ख्याल रखने के लिए यहां मैं आई तो इस बच्चे को वहां कैसे छोड़ देती कैसे रहता। ये सब कहते हुए उनके आंख भर आए। मैंने कहां चिंता मत किजिए सब ठीक हों जायेगा। आप सही किए बच्चे को ले आए। यहां चाचा-चाची और आपके साथ रहेगा तो बच्चे में अकेलापन भी नहीं रहेगा। वैसे क्या नाम हैं बच्चे का, उसका- एकांत।

चाची जी ने कहा, मैं बुला लाती हूं अंदर में हैं टीवी देख रहा हैं, मैंने कहाँ, मुझे भी उससे मिलने का बड़ा मन हैं। चाची ने कहा देखो- एकांत, ये तुम्हारी नई मैडम है अब ये तुम्हें ट्यूशन पढ़ाएगी। नमस्ते बोलो- उसकी ओझल आँखें मुझे मासूम नजरों से देखने लगे, बोला कुछ भी नहीं।

मैंने कहा ये तो बिल्कुल शांत बच्चा लग रहा हैं, दादी ने कहा- शांत तो हैं, लेकिन खाने-पीने, नहाने और पढ़ने में घर पर बहुत परेशान करता है, अब मेरी तो उम्र हो गई हैं और इसकी चाची तो पेट से हैं अब इसके पीछे-पीछे कौन दौड़ेगा ! जिस उम्र में मां-बाप का प्यार, उनका साथ मिलना था, बेचारा अभागा हैं। जितना हो सके उसके लिए कर रही हूं। अब भगवान की जैसी इच्छा।

फिर चाची जी अंदर से चाय की प्याली लिए आती हैं- लीजिए। मैने कहा नहीं लगेगा मैं वैसे भी चाय नहीं पीती, और मुझे देर भी हो गई हैं, काफी समय हो गए यहां आए, मुझे अब चलना चाहिए। उन्होंने कहा- फिर कल से भेजते हैं ट्यूशन। 'हां ठीक है' मैंने कहा।

दूसरे दिन एकांत ट्यूशन पढ़ने आया, वो बहुत घबराया हुआ, डरा हुआ लग रहा था। मैंने पूछा क्या नाम है, वो चुप था। कुछ समय तक मैं भी चुप रहीं फिर मैंने बोला शायद तुम्हारा नाम एकांत हैं कल तुम्हारी दादी ने बताया था। वो सिर हिला कर, हामी भरा। फिर मैंने पूछा कौन से क्लॉस में पढ़ते हो, वो एक ऊंगली उठाकर इशारा करके बताया। क्लॉस 1 मैंने कहां- मुंह में कुछ रखा हुआ हैं शायद तभी मुंहनहीं खोल रहा, वो मुंह ऊपर करके फिर थोड़ा मुस्कुराया। लेकिन कुछ बोला नहीं, मैंने किसी तरह उससे जानने बात करने की कोशिश की, शुरुआती कुछ दिन मैंने एकांत को समझने की कोशिश की उसके शांत, गुमशुम से चहरे को पढ़ने की कोशिश की वह सारे बच्चों से अलग था, पढ़ने में बहुत कोमज़ोर था, जाहीर सी बात है, बच्चे को जिस समय पढ़ाने या समझाने के लिए मां-बाप की जरूरत थी। वो अपने आपसी झगड़े के कारण अपने बच्चे की तरफ जो जिम्मेदारी से मुंह मोड़ लेते हैं, जिससे बच्चे के जीवन में बहुत बुरा असर पड़ रहा था।

ट्यूशन खत्म हो चुका था, मैं एकांत को बोली क्या घर जाना है, उसने धीमें स्वर में कहा– हां दादी इंतजार कर रही होगी। शायद दोनों के बीच में बहुत ज्यादा लगाव और प्यार था, मैं गेट तक छोड़ने गई, उसे दूर खड़ी हुई उसकी दादी दिखाई देने लगती हैं और बोलता हैं वो देखो बोला था न दादी मेरा इंतजार कर रही होगी। मैं हस पड़ी। और वो मुझे टा-टा करते दौड़ते हुए चल दिया। मैंने मन ही मन सोचा चलो जाते समय तो कम से कम मुस्कुराया।

यैसे ही एकांत रोज ट्यूशन आने लगा, अब वो मुझसे खुल मिल चुका था, वो मुझसे बातें भी करने लगा था, बातों ही बातों में मैंने पूछा-एकांत तुझे मम्मी की याद नहीं आती, उसने कहा-नहीं, मैंने कहा की मम्मी अच्छी हैं या फिर चाची। उसने कहा- दोनों, मैंने कहां कोई एक, उसने कहा- दादी, मैं हस पड़ी, फिर मैंने पूछा और पापा ? उसने कहा- वो भी बहुत अच्छे हैं। मेरे लिए खिलौना लाते और पैसा देते और घुमाने लेते और रोज फोन करते हैं। यूंही आपने पापा की तारीफो के फुल बांधने लगा। मैंने कहा बस-बस अब पढ़ाई करते हैं, अब वो धीरे-धीरे पढ़ने लिखने लगा था, लेकीन घर में उसके पढ़ाई पे ध्यान देने वाला कोई नहीं था, काश दादी थोड़ा पढ़ी लिखी होती।

अब 7 महीने से ज्यादा हो चुके थे एकांत को ट्यूशन आते। एक– दो दिन से वो होमवर्क नहीं कर रहा था। मैं थोड़ा सख्ती दिखाई बोली-ये सब रोज-रोज नहीं चलेगा, मार पड़ेगा अब से नहीं किया तो, वैसे क्यू नहीं किया। 2-3 दिन हो गया। होमवर्क नहीं कर रहा, बता क्यों नहीं किया, उसने कहा 'घर में लड़ाई होता हैं' मैं भी रोता और दादी भी।

मैं सहम गई- 'लड़ाई क्यों? कौन करता हैं? और किसलिए?' अच्छा रुको मैंने सारे बच्चों को छुट्टी दे दिया। और एकांत को अकेले रोक लिया, अब बताओ क्या हुआ- पता नहीं चाचा रोज दारु पी के आते हैं और दादी को गाली देते हैं ,और दादी से लड़ाई करते हैं और चले जा बैग लेके बोलते हैं वो बहुत

जोर जोर से चिल्लाते हैं कान फट जाता हैं और दादी रोती हैं तो मुझे भी रोना आता हैं। उसकी बातों से मैं दंग रह गई थीं। एक 6 साल के बच्चे के मुंह से ये सब बात सुनकर मेरा दिल दहल गया और वो भी इतनी समझदारी से बताना। मैंने एकांत को कहां तुम रोया मत करो बच्चा- तुम रोओगे तो दादी भी रोएगी न, सही में- "तो क्या दादी को रोते देख तुम रोते हो न तो दादी तुम्हें रोते देख नहीं रोएगी क्या" एकांत बहुत ही समझदार था।

वह आपनी मासूम ओझल आंखो से मेरी तरफ़ देखा, फिर मैंने कहां चलो ठीक है आज नहीं मारती लेकीन होमवर्क करना अब मत भूलना। उस दिन के बाद कुछ 3,4 दिन तक वो ट्यूशन नहीं आया, मेरा मन घबराने लगा। सोची एक बार घर जाऊं फिर सोचती क्या सही होगा जाना, जैसे-तैसे मैं हिम्मत करके गई, मैंने दरवाजा खटखटाया- ये शायद एकांत के चाचा थे। आप कौन ? मैं एकांत की ट्यूशन मैडम हूं। मुझे मिलना हैं एकांत से। वो कुछ दिनो से नहीं आ रहा हैं। वो ठीक तो है न। उन्होंने कहां वो यहां नहीं हैं। मैंने हड़बड़ाते हुए कहां–तो फिर कहाँ हैं ? अच्छा, तो फिर दादी जी से एक बार मेरी बात करा दीजिए, उन्होंने कहां-अभी कोई नहीं हैं वो सब अस्पताल गए हुए हैं, मेरी बेटी हुई हैं तो मेरी पत्नी अस्पताल में भर्ती हैं तो मां वही हैं तो एकांत भी वहीं गया है। मेरा मन स्थिर हो गया। मैं वहां से लौट गई।

फिर एकांत कुछ दिन बाद ट्यूशन आता है। मैंने कहा- क्यों इतने दिन से कहां था ? और बता के भी नहीं गया था। आपको कुछ नहीं पता क्या? क्या पता तू बताएगा तो मैं जानूगी ना। मेरी चाची की न बेटी हुई है। मैं न बड़ा भाई हूं उसके साथ अभी खेल के आ रहा हूं। अच्छा बहुत हो गया। खेलना अब चल पढ़ना पेपर हैं न और बहुत छुट्टी भी मार लिया है, अब बहुत पढ़ना पड़ेगा अब तुझे पेपर में अच्छे नंबर से पास होना हैं न तुझे फिर क्लॉस 2 में जाना हैं, फिर उसने कहा- नहीं, नहीं पेपर के बाद पापा के पास जाऊंगा, मेंरी नई मम्मी आने वाली हैं। उसकी बातों से मेरे चेहरे के रंग उड़ गए थे, मैंने कहा — नई मम्मी, किसने कहा- "दादी और पापा" और वो बहुत अच्छी हैं मुझे कभी छोड़कर नहीं जाएगी। उस नादान बच्चे के मन में पता नहीं कितना, दुःख, दर्द आकेलापन होगा, धीरे-धीरे समय बीतता जाता हैं और एकांत का परीक्षा खतम हो जाता हैं, वो अच्छे नंबर से पास भी होता हैं। और एक दिन एकांत और दादी दोनों वापस चले जाते हैं एकांत जाते समय बहुत खुश लग रहा था। उसे नई मम्मी जो मिलने वाली थी, मैने उसे अपना फोन नंबर भी दिया, लेकीन फोन कभी आया नहीं, पता नहीं क्या उसकी नई मम्मी उसको वो प्यार, ममता दे पायेगी जैसी देना चाहिए। मेरे मन में कई तरह के सवाल उठने लगे। बस मन एक ही बात बोल रहा था। ये भगवान जैसे भी करके इस मासूम बच्चे की जिदंगी मत बिगाड़ना। एकांत को गए हुए 3 साल हो गए, मेरे ट्यूशन क्लॉस के बच्चों के साथ एक तस्वीर थी। उसमें एकांत भी था, जब- जब वो तस्वीर देखती एकांत की सारी बातें यादें सामने आ जाती और मन कहता की जहां भी वो वो खुशी से रहे भगवान उसे सारी खुशियां दे।

कहानी

अँधेरे में रोशनी की तलाश

गायत्री पटेल

गायत्री पटेल इतिहास विभाग, गुरु घासीदास विश्वविद्यालय, बिलासपुर में एम.ए. अंतिम वर्ष की छात्रा हैं।

रमला, अरी ओ रमला कहाँ मर गई रि रमला"

"का हुआ दीदी कूकुर (कुत्ता) जैसे काहे गला फाड़ रही हो...?"

"मत पूछ क्या हुआ? क्या नहीं हुआ ये पूछ... ।"

"क्या हुआ दीदी काली तो विसर्जित हो गई है, सो आपका ये रूप आपपे शोभा नहीं देता।"

"हाँ तू सही कह रही हैं, मुझे इतना ज्यादा गुस्सा नहीं करना चाहिए ।"

"लीजिए पानी पीजिए।"

"रमला मैं कह रही थी तू अपने बेटे को समझा दे, रोजाना मेरी बाड़ी से अमरूद चुराता है, जितना बंदर उछल कूद नहीं करता, उतना तेरा ये बेटा उछल कूद कर तबाही मचा भागता है। कुछ खाता है, कुछ नीचे जमीन में फेकता बर्बाद करता हैं। सारा कुछ यही बर्बाद कर देगा तो बाजार में मैं क्या ले जाऊँगी अपने पति और बच्चों को क्या खिलाउंगी...?"

"क्यों रे! दीदी सच कहती हैं?"

"ना, ना माई।"

"हाँ तेरा बेटा तो राजा हरिश्चंद्र हैं।"

"आखिरी बार कहती हूँ, तारा सच कहना।" सर नीची कर

"हाँ माई मैं जाता हूँ अमरूद खाने, लेकिन मैंने चोरी नहीं किया। वो बुड्ढा रोजाना हांफता हुआ, तो कभी आँखों की पुतलियाँ ऊपर कर आधी आँख से बैठे देखता हैं। मेरा पैर कहाँ, मेंरी मुख किस ओर, मैं किस डाली में चढ़ा हूँ, मेरे हाथों में अमरूद है कि प्रस्तर, मैं शाखा में लटक रहा हूँ कि बैठा हूँ, कही शाखाओं को तोड़ तो नहीं रहा। सबकी खबर बुड्ढा रखता है। तो मैं चोर कैसे हुआ?"

"हाँ कल को हर चोर चोरी करके कहेगा कि हमारे सामने खुर्सी, टेबल, अलमीरा और दर्पण था। दर्पण पर हम खुद थे, दर्पण में हमने खुद को देखा। उन सभी ने मुझे देखा, सो चोरी कैसे हुआ? मैं चोर नहीं। वो मनहूस धनीराम जब भी

मिले पैसे की ही बात करता है। था तो पहले कोतवाल अब गाँव का साहूकार बन बैठा है, हमारा खून चूस चूस कर चूहे जैसा मोटा ताजा गोल-मटोल हो गया है। कल को वो भी ब्याज दर मनमाने ढंग से बढ़ायेगा और कहेगा कि मैंने बेमानी नहीं किया। तो तो हम गरीब लोग बिन मारे ही मर जाएंगे।"

"ताई आप बात फेर रही हो, यहाँ बात बुड्ढा दादा का हो रहा था।"

"क्यों रे तुझे डर नहीं लगता? कुछ भी ऊल-जलूल बातें करता है और तो और मेरे सामने ही मेरी बापू को बुड्ढा कहता। तरेर कर देखती हैं। हैं तो तू बित्ता भर का छोकरा, इतनी हिम्मत लाता कहाँ से है?"

"ताई आपके अमरूद से आ ही जाता हैं हा हा हा... हँसते हुए।"

बेटा तुझे कुछ हो जायेगा तो, कभी सोचा है तेरी माँ का क्या होगा, बेचारी कहाँ-कहाँ, किस-किस से मदद के लिए गिरते पड़ते फिरेगी वैसे भी वो मनहूस धनीराम से पैसे मांगो तो कहता है कुछ जमा वमा करो। तेरी भिखारिन माँ के पास कुछ जमा करने लायक हैं ही क्या?"

"हूँऊ दीदी आपको जैसे सुअवसर मिल गया हो।"

"और नहीं तो क्या तेरा बेटा इतना सारा अमरूद हजम कर गया उसकी नुकसानी का हिसाब तुम्ही से तो लूँगी न? और हाँ बेटा मैं बाजार जाने से पहले तेरे लिए दो चार अमरूद रख दिया करूँगी।"

"ताई दो चार से क्या होगा? मुझे आठ दस अमरूद चाहिये।"

"हूँऊ तभी तू कोने में बैठा पेट दबाये रहता है। क्यों रे तू बेमतलब का बेमेल काम क्यों करता है? जिसका खामियाजा तुम्हारे साथ मुझे भी भुगतना पड़ता है।

"माई तू गुस्सा मत कर, मैं तेरा अच्छा बेटा हूँ न।"

"हाँ।"

"अच्छा रमला मैं जाती हूँ।"

"जी दीदी। और तू कहाँ जाएगा रे? चल बैठ खाना खा।"

"न माई मुझे नई खाना। फिर वही रूखा सूखा मिर्ची, नामक और लहसुन की चटनी और आचार, माई जीभ सब्जी माँगता है। माई सब्जी दो।"

"हाँ, आज खा ले कल ला दूँगी।"

"नहीं, आप ऐसी ही कहती हो।"

"बेटा खा ले इतनी सारी अमरूद खाने के बाद पेट दुखेगा फिर मेरे पास रोते मत आना। आज खा ले, तू मेरा अच्छा बेटा हैं न? नहीं खायेगा न, ठीक है तो पेट दुखेगा तो खुद ही जीरा भूनकर चुरा बना कर खाना। मेरे पास मत आना।" तारा हठ करता बैठा रहा। ये बेटा! रमला की आँखो से एक बूँद आँसू तारा के पैरो में जा गिरा।" तारा आँसुओं को देख लिया।

"माई बड़ी भूख लगी हैं खाना दे दो।" रमला आँसू पोछ कर खाना परोसती है।

"ले माई तू भी खा ले।" दोनों एक दूसरे को कोर बना कर खिलाने लगे। घूम फिर कर तारा आता है और कहता है, "माई मुझे भी स्कूल जाना है। अब तो मैं दस साल का हो गया हूँ, मेरे सारे दोस्त पढ़ने जाते हैं। देखो मैंने दस तक गिनती भी सीख लिया एक, दो, चार, पाँच, छह, सात, नौ, और ये दस।" रमला कस कर हँस दी। एक शाम धनिया रमला की घर की ओर आते दिखी, रमला धनिया के पहुंचने से पहले ही डंडा लेकर तारा को पुकारती है -

"तारा! रे तारा! यहाँ आना"

"जी।"

"आज तुमने क्या किया?"

"मैं बताती हूँ, तेरे बेटे ने क्या किया?"

"क्यों रे क्या किया?" रमला ने पूछा। धनिया गुस्से से लाल होकर बोली।

"तेरा बेटा बाकि बच्चों संग मिलकर मुझे धनी धनिया कह कर चिढ़ाता है और इतने से जी न भरा तो घोषणा करता है कि खून चूसने वाला चूहा की बीबी चुहिया आ रही है। अपने - अपने नये कपड़ो को छुपा लो, नजर न पड़ने पाए नहीं तो चूहा इसे भी काट ले जाएगा। हम क्या इतने बुरे हैं? बता किस हिसाब से मेरा पति खून पीने वाला चूहा लगता है। रमला धनिया को कुछ शांत करने के लिए धीमा मृदु स्वर में बोली।

"भैय्या और आप तो इस गाँव की रौनक हो, बच्चों का क्या हैं कुछ भी इधर-उधर की बातें करते हैं। दीदी आप इनके बातों को दिल से मत लगाना।"

"हाँ तुम मुझे मत बताओ, बच्चे जो देखते सुनते हैं वही कहते हैं। जरूर तुम्ही ने कुछ ऐसा वैसा, इधर-उधर की बातें की होगी।" रमला तारा को डाँटती है।

"क्यों रे आज कल तू बहुत शरारती हो गया है, आज तुझे खूब अच्छे से सबक सिखाती हूँ।" रमला डंडा लेकर तारा के इर्दगिर्द घूमती है मन ही मन हे! भगवान तुमने मुझे किस संकट में डाल दिया वैसे भी ये इतना पतला दुबला है कि समझ ही नहीं पाती मारू तो किधर मारू। धनिया आँखे बड़ी कर बोली।

"रमला तू रहने दे, तेरा बेटा है ही आधा । कुछ ऐसा वैसा हो गया तो भी दोष हमी को दोगी, ना ना बहन तू रहने दे ।" धनिया चल दी । तारा मचल कर अपनी माँ से कहता है ।

"माई मैं एक दिन पिता जी जैसा बनूँगा ।" इतना सुनते ही रमला बेसुध होकर तारा को मारने लगी ।

"आह! उह! आह! माई दर्द होता है । "तारा की कराहना सुन कर रमला के हाथ रुक गये । बेटा मुझे माफ कर दे, दिखा तुझे चोट तो नहीं लगी । तारा का हाथ खीच कर देखने लगी । हाथो में लाल लाल, नीले नीले चोट के निशान पड़ गए थे रमला की आँखो से आँसू टप टप टप कर तारा के हाथों में गिरने लगा ।

"माई तू रो मत मुझे बिल्कुल भी दर्द नहीं हो रहा । और और ये चोट खेलते हुए झुरमुट में गिर पड़ा देख माई मुझे दर्द नहीं हो रहा । मैं हँस रहा हूँ ।" चोट को खुरचता हैं । सामने का एक दाँत टूटा हुआ दिखावटी हँसी हँसता है हि हि हि... ।

"ला तुझे हल्दी का लेप लगा दूँ, तेरा पिता नशेड़ी, जुआरी दिनभर नशे में धुत जुआ खेलता था । सारी धन संपत्ति जुआ में लगा दिया । नशे में धुत यहाँ वहाँ पड़ा रहता था, एक दिन कही चला गया फिर खबर आता हैं कि खुद ट्रक के आगे जा मरा पुलिस वालों और लोगों ने लावारिस लाश समझ कर अंतिम संस्कार कर दिया । मुझे अंतिम बार देखने भी नहीं दिया, तेरे पिता ने हम दोनों को अकेले मरने के लिए छोड़ दिया मैं नहीं चाहती मेरा बेटा वैसा बने । बोल तू नहीं बनेगा न?

"माई तू चिंता मत कर मैं एक दिन बहुत बड़ा आदमी बनूंगा । माई देख हवाई जहाज, माई हवाई जहाज, माई एक दिन तुम और मैं हवाई जहाज में उड़ जाएँगे ।

"हाँ, पहले कुछ खा ले, देख तेरा पसंदीदा खाना! ले खा ।

"वाह! गोभी की सब्जी खुशी से झूम कर । मैं दोस्तों को बता कर आता हूँ ।" खाना तो खाते जा । तारा गलि मोहल्ले में सबको चिल्ला चिल्ला कर बताने लगा । ये काका, ये काकी आपको पता हैं मेरे घर गोभी सब्जी बना हैं । झबलू, सोनू, रोनी, ओ रमा ताई, ओ भाई, ये दीदी मेरे घर गोभी बना है । धनिया ताई आज मैं गोभी खाऊँगा । गाय से कहता है । गौ माई मेरे घर गोभी बना हैं ओ बिल्ली मौसी, ओ कुता महाराज आज मैं गोभी खाऊँगा । सभी लोग उसपे हँसने लगे । तारा आगे चल दिया चिल्लाते हुये ।

"क्यों रे ढिंढोरा पीट के आ गया । किसी कोने को छोड़ा भी कि नहीं?"

"नहीं सभी कोने में, सबको बता आया ।"

"चल जा खा ले ।" तारा चलते चलते गिर पड़ा, रमला घबराई दौड़ पड़ी । क्या हुआ रे, लेटे रह मुझे देखने दे । तुझे बुखार हैं चल तुझे दिखा लाऊं । रमला सिरहने पर, तकिया के नीचे, बटुआ में, चाय पत्ती के डिब्बों में पैसे ढूँढती है, लेकिन नहीं मिला । कुछ पैसे चावल के डिब्बे में मिला जिसे लेकर तारा को दिखाने डॉक्टर के पास ले गयीं । सुबह से शाम तक रमला सब काम धाम छोड़ कर तारा के पास रहती, अब से रमला तारा का और अधिक ख्याल रखने लगी, किंतु उसके सेहत में तनिक भी सुधार नहीं हुआ । एक शाम उसकी तबीयत बिगड़ी उसने सब तरफ नजर दौड़ाई किंतु कही भी फूटी कौड़ी न मिला । रमला अड़ोस - पड़ोस से मदद की गुहार लगाती है । दीदी कुछ पैसे दे दो मैं बाद में लौटा दूँगी मेरे बच्चे की तबीयत खराब हैं । रमा दीदी आप तो मदद कर दीजिए, भैय्या आप तो मदद कीजिए । ताऊ मेरा बेटा बीमार है भगवान न करें मेरे बेटे को कही कुछ हो गया तो मैं मर जाऊँगी । दीदी आज आपके नन्हे अमरूद चोर का सवाल है । किंतु कोई सहायता के लिए हाथ आगे नहीं किया और विवश होकर धनीराम के पास गई ।

"भैय्या कुछ रुपये उधार दे दीजिए ।"

"कुछ जमा वमा करो तो दूँगा, नहीं तो भूल जाओ ।"

"हाँ, हैं मेरी मकान वाली जमीन ।"

"उस झोपड़पट्टी वाला जहाँ तू रहती है ।"

"हाँ ।"

"उस बंजर पथरीली जमीन को मैं क्या करूँगा । दुनिया बड़ी मतलबी है, बिन मतलब के सरकार सड़क में भी चलने न देगा । कुछ तुम दो कुछ मैं देता हूँ तब जाकर बात बनेगा समझ रही हो न?

"भैय्या ऐसा न कहिए; मेरा बच्चा बीमार है ।"

"ठीक हैं कल आना, कल पक्का दे दूँगा ।" कल से परसो, परसो से तीन चार दिन बीत गया किन्तु साहूकार और बाकियों ने मदद नहीं की, तारा का तबीयत बिगड़ते जा रहा था । शाम को रमला अँधेरे में सर पर हाथ रखे कोने में बैठी थी । धनिया आती है ।

"रमला ले कुछ पैसे हैं, रख ले ।"

"नहीं हमें नहीं चाहिये, आप अपनी पैसे रखी रहो ।"

"देख रमला नाराजगी अपने जगह और बच्चे की तबीयत एक तरफ, ले पैसे जा बेटे को दिखा ला ।"

"नहीं, नहीं चाहिये ।"

"तू इतनी पत्थर दिल की कैसे हो सकती है । रमला पर धनिया की बातो का तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ा वे खामोशी से बैठी रही । धनिया क्रोधित होकर ऊँची स्वर में बोली तुम

भिखारिन पर इतना अहंकार शोभा नहीं देता। ये पैसे लो कौन से तुम्हारे स्वाभिमान को चोट पहुँचेगा।

"नहीं, हमें नहीं चाहिये।"

"तुम निर्दयी पत्थर दिल से कुछ नहीं होगा, बीमार बेटा है लेकिन बीमारी तेरे सिर चढ़ गया हैं। मैं ही तारा के पास जाती हूँ। धनिया तारा के पास जाकर पुकारती है ये बेटा उठ! देख तेरी धनी धनिया पैसे लेकर आ गई। आँखे खोल बेटा! हूँऊ समझी तू नाराज हैं न? धनिया तारा को हिलाने लगी, तारा मर चुका था। उसका शरीर पूरी तरह से ठंडा और वो अकड़ चुका था। धनिया फफक फफक कर रो पड़ी। धनिया रमला के पास जाकर वो वो तारा...

"मैंने कहा था न हमें पैसे नहीं चाहिये।" धनिया उसके पास बैठ कर फुट फुट कर रोने लगी। रमला अत्यंत धीमा स्वर में बोली जो वक्त पर ना मिले वो दवा दारू किस काम का? आप अपने पैसे रखी रहो। मेरा तारा कहता था कि वो मुझे हवाई जहाज में उड़ा ले जाएगा, आज देखो अकेले ही उड़ गया। वो वापस आयेगा न तो उसकी खूब पिटाई करूंगी और मैं भी उड़ जाऊँगी हा हा हा हैं न मजेदार बात। धनिया रोये जा रही थी उसके मुख से एक लफ्ज भी नहीं निकली जैसे किसी ने मुँह सी दिया हो।

मेरा बेटा कहता था माई तुम अँधेरे में रोशनी की तलाश कर रही हो, यहाँ सूर्य तो हैं लेकिन हमारे लिए नहीं हैं। माई सुबह कब होगा? माई मैं स्कूल कब जाऊँगा? माई हम गरीब है तो हमें कोई ब्याज पर भी पैसे नहीं देगा? माई बदन दर्द कर रहा। माई क्या मैं भी पिता जी की तरह मर जाऊँगा? माई मैं मर जाऊँगा तो तुम रोना मत। रमला जोर जोर से रोने लगी। मैं बेकार में ही रेगिस्तान में पानी तलाश रही थी। यहाँ मनुष्यत्व मरा पड़ा है। यहाँ पैसा ही सब कुछ हैं, दीदी तुम मेंरी छप्पर, ईंट पत्थर सबको ले जाओ, जाओ अपने साहूकार को मेरी दो वर्ष पुरानी सुराही भी दे आओ, और और इतने से भी जी न भरे तो मेरे जिस्म की एक एक अंग बेच लाओ लेकिन मेंरे बेटे को वापस ले आओ। धनिया फिर फफक फफक के रो पड़ी। रमला जमीन पर बेसुध होकर लुढ़क गयी धनिया रमला को लेटे रहने को कहती हैं। दीदी मेरा तारा जमीन में धस्ते जा रहा है। वो काका, दीदी, ताऊ, काकी, बालो, सभी वहाँ हैं। वो साहूकार हैं। हाँ वो साहूकार खड़ा देख रहा हैं, काका मेरे बच्चे को बचा लो। रमला फिर मूर्छित हो गई। रोना सुन कर रमा आयी, रमला फिर होश में आयी। दीदी तुम्हारा अमरूद चोर नहीं रहा। रोते रोते पुनः मूर्छित होने लगी कुछ देर बाद बेसुध अवस्था में बड़बड़ करने लगी। बेटा पेड़ से उतर जा, लटका क्यों हैं? दीदी! दीदी! रमा दीदी! तारा पेड़ से नीचे गिर गया। साँप और चीटियां पैरों को काट रहा है, हटो हटो मेंरे बेटे के ऊपर से हटो। बेटा तू रो मत, तेरी माई आ रही हैं, मेरा बेटा मुझे बुला रहा है। रमला इस बार हमेशा के लिए मूर्छित हो गई। नाड़ी और धड़कन धड़कना बंद कर दिया।

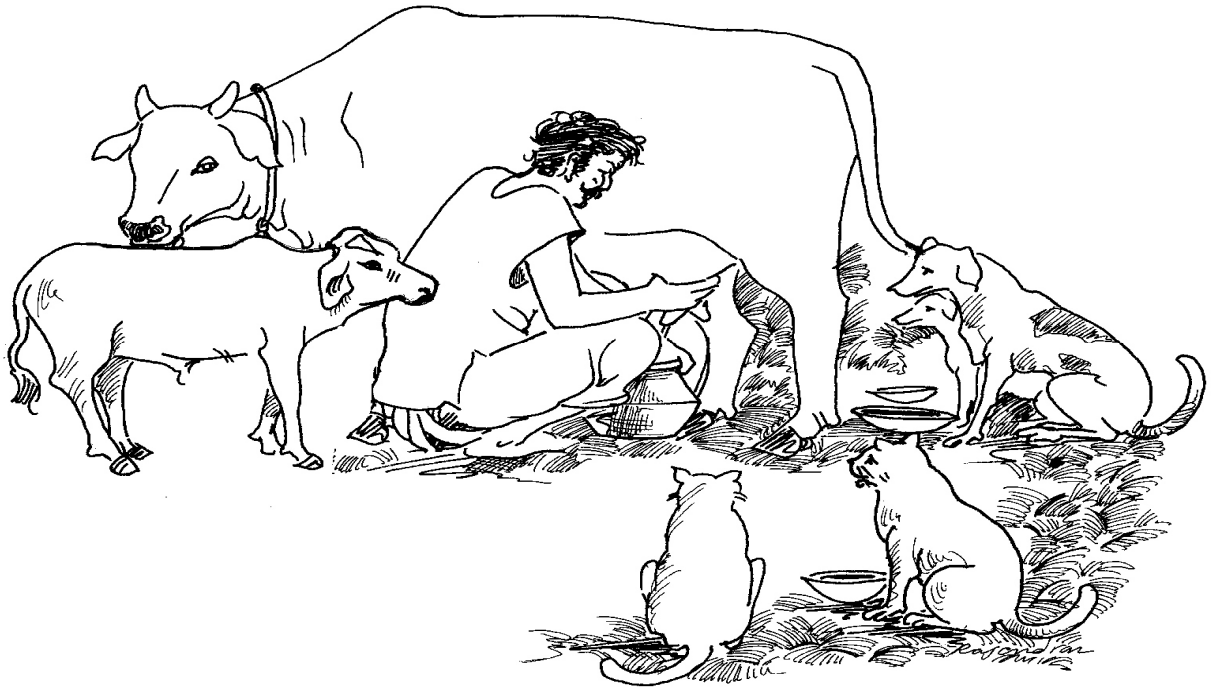

रचना आमंत्रण -

1. कविता, कहानी, लघुकथा, उपन्यास अंश सहित सभी साहित्यिक विधाओं की रचनाएं स्वीकार की जाएंगी।
2. एक रचनाकार एक बार में चार से अधिक कवितायें न भेजें।
3. नए विषयों पर आलोचनात्मक लेख, शोध-आलेख व नई पुस्तकों की समीक्षा स्वीकार की जाएंगी। समीक्षकीय पुस्तकों का चयन पत्रिका द्वारा किया जाएगा।
4. लेख व आलोचनात्मक लेख नए विषयों पर एकाग्र हों। उसकी स्थापनाएं स्पष्ट हों। उनमें बेवजह संदर्भों की उबासी न हो।
5. रचनाएँ भेजते समय फोटो के साथ अपना संक्षिप्त परिचय अवश्य दें।
6. पुस्तक समीक्षा भेजते समय समीक्षित पुस्तक व लेखक का भी पूरा परिचय अवश्य भेजें। समीक्षकीय पुस्तक छः महीना से अधिक पुरानी न हो।
7. मौलिक रचनाएं ही स्वीकृत होंगी। मौलिकता के लिए एक संक्षिप्त घोषणा-पत्र देना होगा।
8. शोध-पत्र के लिए संदर्भ साँचा (उद्धरण) ए.पी.ए. शैली में स्वीकृत है। पाठ के अंदर पादटिप्पणी अवश्य दें।
9. रचनाएँ सिर्फ हिन्दी भाषा (देवनागरी लिपि) में और यूनिकोड (कोकिला या मंगल) फॉन्ट में टाइप की हुई ही स्वीकृत होंगी।
10. लेखकों से अनुरोध रहेगा कि अपने लिखे से पूरी तरह संतुष्ट हो जाने के बाद ही प्रकाशन के लिए भेजें। गुणवत्ता और मौलिकता का जरूर ध्यान रखें। हम बेहद सम्मान के साथ आपको प्रकाशित करेंगे।
11. रचनाएँ प्रकाशित करने का अंतिम अधिकार संपादक मण्डल के पास सुरक्षित है। अन्य किसी भी प्रकार की जानकारी के लिए हमें ईमेल (swanimhindiggv@gmail.com) करें। पत्रिका का प्रत्येक अंक ऑनलाइन माध्यम से पीडीएफ़ में गुरु घासीदास विश्वविद्यालय की वेबसाइट पर उपलब्ध रहेगा।

- संपादक

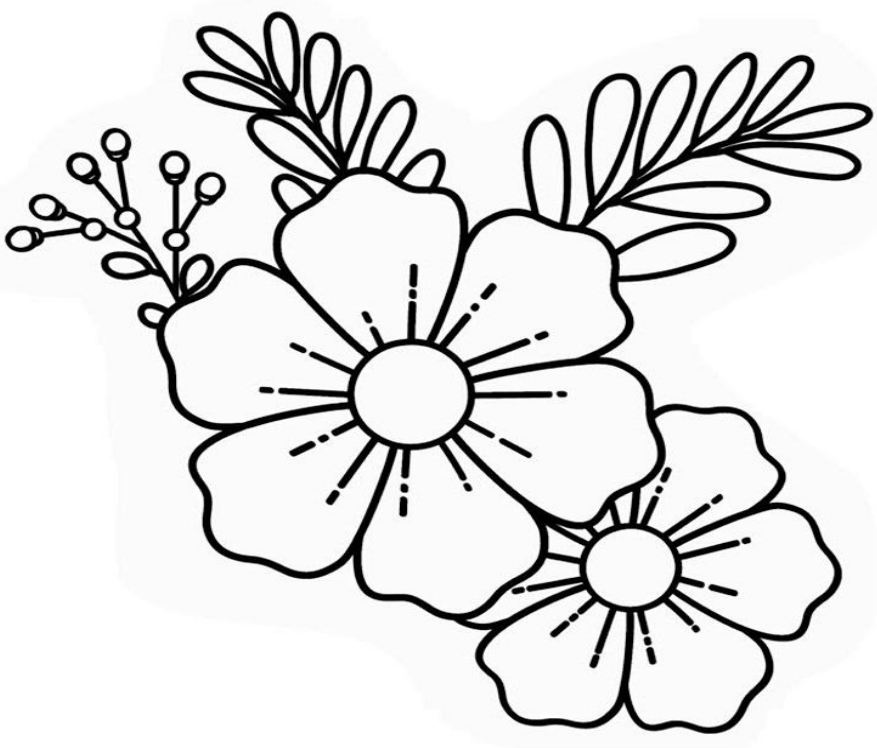

हिन्दी विभाग

कला अध्ययनशाला

गुरु घासीदास विश्वविद्यालय

बिलासपुर (छ.ग.)